प्रथम संस्करण, १९४९

अनुवादक

शिवचन्द्र नागर

संशोधक

सत्यनारायण व्यास

प्रकाशक

किताब महल

इलाहाबाद तथा बम्बई

मुद्रक

अनन्तराम श्रीवास्तवा

त्रिवेणी प्रेस, दारागंज, प्रयाग

[illegible] रुपया

# भावी समर्थ

१

तीस दिसम्बर सन् १८९८ के दिन लार्ड कर्जन भारतवर्ष का राज्य-प्रतिनिधि नियुक्त हुआ।

भारतवर्ष के इतिहास का एक युग पूरा हुआ और दूसरा आरम्भ। नवभारत की निर्माण-क्रिया समाप्त हुई।

कर्जन ने अंग्रेजो के सद्गुण और दुर्गुण दोनो को पूरी तरह प्रत्यक्ष किया था। वह कार्यदक्ष, योग्य, विद्वान और न्यायी था और स्वाधिकार उन्मत्त था। राज करने के लिये पैदा हुई जाति में स्वय वह भी राज करने के लिये ही पैदा हुआ है, ऐसी अडिग आत्मश्रद्धा उसमे थी। सपूर्ण प्रजा का सुख उसकी दया पर निर्भर है, ऐसा उसका विश्वास था। उसकी इच्छानुकूल ही सब को सुखी रहना चाहिये—इस कर्तव्य की सीमा से वह किसी को भी बाहर नही जाने देता था। स्वयं पाश्चात्य—चाहे जैसे भी हो पर दैवी, भारतवासी पौर्वात्य—चाहे जैसे भी हो पर मानुषी, इस अपवाद के साथ समानता का सिद्धांत स्वीकार करने में उसे कोई आपत्ति नही थी।

१९०३ ई० मे उसने तीन करोड़ रुपये खर्च कर, सम्राट् के प्रतिनिधि की हैसियत से अपनी ताजपोशी की तैयारी की और भारतवासियो की कल्पनाओ को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया। इसके प्रशसक ने लिखा, "और सपूर्ण दृश्य के बीचोबीच,

झिलमिलाते हुए हौदे पर, ऊपर, दायाँ हाथ ऊँचा कर अपने राजराजेश्वर स्वामी की ओर से सबकी सलाम कबूल करता हुआ राज-प्रतिनिधि सत्ता का छत्रधारी बैठा था, शांत और गौरवशील, शांत और संयमी। जिन विख्यात वीरो ने अँग्रेजो के लिये भारत को जीता और प्रबन्ध किया उनका वह एक योग्य प्रतिनिधि लगता था। उसके मुख पर मुस्कराहट थी, उसके होठ दृढता से बन्द थे, उसका मस्तक सलामों की स्वीकृति मे झुका हुआ था। उसका यह एक शान्त और स्वस्थ अभिनय था। इस दृश्य के देखने के लिए एक पल के लिये भी जीवित रहना सार्थक था।"*

यह दृश्य जितना अच्छा फ्रेजर की पुस्तक में चित्रित है उतना शोभाप्रद दर्शको को नही लगा। भारतवर्ष के वास्तविक प्रतिनिधि लालमोहन घोष ने मद्रास कांग्रेस के अध्यक्ष पद से उसे Pompous pageant to a perishing people—एक मरती हुई प्रजा के लिये भड़कीले तमाशे का नाम दिया।

सन् १९०५ के अगस्त महीने मे उसने त्यागपत्र दे दिया।

पहली सितम्बर सन् १९०५ में उसने बंगाल विभाजन की सूचना प्रकाशित की। संस्कृति और इतिहास ने जिस बंगाल को एक बनाया था, उसने बिना सोचे-समझे उसके दो टुकड़े कर दिये।

सन् १९०५ के अत मे वह भारतवर्ष से विदा हुआ। "अपने शासन-प्रबन्ध के विषय में कुछ न कहना ही कार्यदक्षता है"—इस प्रकार उसने अपने कारनामो पर स्वयं ही मृत्यु-लेख लिखा।

लार्ड कर्जन के स्थान पर लार्ड मिन्टो राज्य-प्रतिनिधि नियुक्त हुआ। दिसम्बर १९०५ मे बर्क के अभ्यासी और ग्लेडस्टन के शिष्य, उदार राजकीय भावनाओ के प्रतिनिधि जान मार्ले भारत-मन्त्री नियुक्त हुए।

---

*Lovat Fraser, At Delhi.

घाटी इन दोनो को नई बोर्डिंग की पहली मजिल मे ले गया और बीस नम्बर का रूम बताया। आगे छज्जे मे आठ लोहे की खाटें पड़ी थी और प्रत्येक रूम के सामने एक एक हाथ मुँह धोने का बेसेल लगा हुआ था। रूम खोजने मे कोई भी कष्ट न हुआ और वे बीस नम्बर के रूम में गये। एक स्टव, दो टेबिल, दो ट्रंक, दो दीपक और दीवाल पर प्रोफेसर शाह का और दूसरा प्रोफेसर घोष का चित्र, इतना सामान इस रूप मे था; पर सब से अधिक ध्यान आकर्षित करनेवाला तो टेबिल पर पड़ा हुआ पुस्तको का ढेर था। तत्वज्ञान, संस्कृत इतिहास तथा साहित्य की पुस्तकों का बेतरतीब ढेर लगा हुआ था। एक कोने में मेज़ीनी की कृतियाँ छितरी हुई पड़ी थी, खाट पर मिकेलेट का 'फ्रेंच विप्लव' और बेंक्रोफ्ट का 'युनाइटेड स्टेट्स का इतिहास' पड़ा था; गीज़ो का 'इंगलिश विप्लव' खाट के पावे के पास ज़मीन पर पडा था।

"सुदर्शन के सिवाय और किसी दूसरे की यह टेबल नही हो सकती।" प्रमोदराय ने ज़रा गर्व से कहा।

"यह तो भयंकर पढ़नेवाला मालूम होता है।" जगमोहनलाल ने भी पुस्तको के सग्रह से उसके संग्रह करनेवाले की बुद्धि का अनुमान लगाते हुए कहा, "रावबहादुर! तब राजाभाई के यहाँ चलो।"

"भाई, मै तो यही बैठूंगा रात को ही मुझे लौट जाना है।"

"जाना तो मुझे भी है। अच्छा, एक काम करो। मै राजाभाई के घर जाऊँ और तुम सुदर्शन को लेकर वहाँ आ जाना। हम सब लोग फिर वहाँ इकट्ठे भोजन करेंगे, और इस बहाने से सुदर्शन सुलोचना को देख लेगा। सुलोचना की माँ को भी सुदर्शन को देखना है।"

"हाँ", प्रमोदराय ने सहर्ष स्वीकार कर लिया, "इससे अच्छा और क्या होगा।"

"लडका तो brainy लगता है।" नामदार बोले, "यदि तुम इसे न समझा सको तो मुझे सौप दो।"

"अरे, नही क्या समझेगा ?" प्रमोदराय ने आँखे निकाल कर कहा।

जगमोहनलाल हँसे, "लोगो को समझाने के लिए बैरिस्टर की जरूरत पड़ती।" प्रमोदराय भी हँसे और जगमोहनलाल चल दिये।

प्रमोदराय ने रूम मे चारो तरफ देखना आरम्भ किया। एक कोने मे भारतवर्ष का नक्शा पड़ा था, एक दराज मे सुपारी और सरौता और लिखे हुए कागजों के बंडल पड़े थे। इन कागजों को निकाल कर प्रमोदराय ने देखना आरम्भ किया। प्रत्येक बंडल पर सुदर्शन ने पतले-पतले अक्षरो मे विषय लिख दिया था। विषय पढ-पढ़ कर रावबहादुर की छाती बैठने लगी।

एक—राष्ट्रभाषा का प्रश्न।

सर्वव्यापी बॉयकॉट।

बॉयकॉट प्रवृत्ति के प्रसार करने की योजना।

शारीरिक विकास।

परदेशियो पर कड़ी दृष्टि.................

रेवेन्यु विभाग मे ही जीवन व्यतीत करने के कारण ये विषय पढते ही रावबहादुर को पसीना आ गया। उन्होने कागजो मे देखा तो उनमें न तो निबन्ध थे और न भाषण, पर इन योजनाओ को पूरा करने के लिये क्या-क्या करना चाहिये यह लिखा हुआ था। उन्होने आखिरी बंडल उठा कर पढ़ना आरम्भ किया। भारतवर्ष मे विदेशी कितने है, वे क्या करते है, उन पर चौकसी रखने के लिये कितने मनुष्य चाहिये, इन चौकसी रखनेवाले मनुष्यो की कैसी व्यवस्था होनी चाहिये, परदेशियो की परराष्ट्रीय प्रवृत्ति को कैसे रोका जाय, आदि उसमें लिखी हुई थी। उन्होने एक बार चारों ओर

देखा। स्वय ब्रिटिश साम्राज्य का नमकहलाल नौकर और यह उसका विद्रोही बेटा! इसका क्या परिणाम होगा? क्या बुढापे में बेटा बाप की सफेदी-पर धूल डालेगा? उनके मस्तिष्क मे पिनल कोड की भिन्न-भिन्न धाराएँ तैरने लगी।

इतने-मे दूर से आते हुए लड़को की आवाज सुनाई दी, अत उन्होंने कागज ठिकाने से रख दिये और बाहर छज्जे में आ बैठे। आज -वह अपने प्रभाव से तथा अपने वात्सल्य से बेटे को सुधारने के लिये आये थे। पर पुत्र के लेख पढ़ कर उनको वह पहचान नही सके,। ऐसा भयंकर लड़का अब आ ही रहा है यह भान होते ही उन्हे कँपकपी छूटने लगी, पसीना बहने लगा, उसे पोछते विचार करने लगे, क्या उनका इकलौता बेटा ऐसा भयकर, विकराल, खूनी और क्रूर हो गया! क्या वह विप्लवी हो गया? क्या वह बम बनाता होगा? 'शिव शिव!' उनके मुँह से निकल पड़ा।

दो-तीन लड़के ऊपर आये। रावबहादुर को खड़ा हुआ देख कर पूछा, "किससे काम है?"

"सुदर्शन से।"

"सदुभाई आ रहे है।" कह कर लडके अपने-अपने कमरो की ओर चले गये।

दूसरे दो लडके आ रहे थे-। एक ऊँचा और मजबूत दीखता था, उसका मुँह तेजस्वी तथा प्रतापी था। दूसरा छोटा और सुदर दिखाई देता था। रावबहादुर की दृष्टि इस छोटे लड़के पर पड़ी और पल भर के लिये वात्सल्य ने उन्हे पागल बना दिया।

७

सुदर्शन छोटे पर सुघड़ डीलडौल का, जिसे स्वरूपवान कह सके

ऐंसा युवक था। रग ज़रा गोरा, सिर पर बिना कघी किये हुए बालो के गुच्छे झूल रहे थे, इसलिए देखनेवाले को वुद्धि की तेजस्विता परखने जाते हुए विलास के दर्शन होने लगते थे। उसके व्यक्तित्व पर लज्जा और संकोच की स्वाभाविक छाप थी। उसकी चंचल और कटीली आँखे ग्लानि-दर्शक मुख की रेखाओ को लगभग भुला सी देती थी। उसके चलने का ढंग बडा आकर्षक था। बडे लडको को तो इसे पहली बार दूर से देखने पर 'लड़की' का उपनाम देने का मन होता था, पर पास आते ही एक प्रकार की अडिगता और सचाटता दृष्टिगत होती थी और उपनाम देने की इच्छा पैदा हुए विना ही मर जाती थी।

उसका सिर नगा, कोट के बटन खुले हुए, धोती का छोर लटकता हुआ और मैला-कुचैला दक्षिणी ढग का जूता जैसे तैसे उसने पहन रक्खा था। उसकी वेशभूषा से अत्यंत लापरवाही झलक रही थी।

उसने अपने बाप को देखा और शीघ्र ही वहाँ आया, "बापूजी, तुम कहाँ से ?"

"मै अभी-अभी आया हूँ; तू कहाँ गया था ?"

सुदर्शन ने बाप की ओर देखा, "आज प्रोफेसर घोष का अतिम भाषण था। कल वह बड़ौदा छोड़ कर जानेवाले है।"

"उन्होने तो इस्तीफा दे दिया है न ?"

"हाँ, राष्ट्रीय पाठशाला मे अध्यापक होकर जा रहे है।"

"अच्छा! ठीक है, मुझे जरा तुझसे काम है इसलिये आया हूँ।"

सुदर्शन के मुख पर चिंता के भाव दिखाई दिये, "क्या काम है ?"

"चल, बाहर चले, तब बताऊँगा।"

एक पल भर के लिये सुदर्शन असमजस्य मे पड गया, पर तुरन्त उसके मुख पर परिवर्तन हुआ। उसकी आँखे ऐसी हो गई जैसे

स्वप्न देख रही हो, उसके मुख की रेखाओं ने म्लान निश्चलता प्राप्त कर ली। जैसे बहुत दूर से बोल रहा हो इस प्रकार उसने कहा, "मैं यह आया।"

वह एकदम अपने कमरे मे गया। "पाठक!" उस कदावर लड़के से उसने कहा, "पिताजी आये है और मुझे बाहर ले जा रहे है। अगर मुझे ज़रा देर हो जाये तो वाट देखना।"

"ये कब जायेंगे?"

"पता नही, पर रात के ग्यारह बजे से पहले तो मैं कही से भी आ ही जाऊँगा।"

"सुदर्शन बाहर आया और प्रमोदराय पगड़ी पहन कर उसके साथ हो लिये। दोनो चुपचाप ज़ीना उतर कर कालेज की तरफ गये। प्रमोदराय क्षोभ का अनुभव कर रहे थे। बात कैसे शुरू की जाय उन्हे कुछ न सूझता था। अत में गला खँखार कर उन्होने कहा, "जगमोहनलाल बैरिस्टर यही हैं।"

"कब आये?"

"मेरे साथ ही। उनकी सुलोचना भी यही है।"

"हाँ, मुझे जमना काकी ने बुलाया भी था।"

"तू हो आया क्या?"

"नही, मुझे समय नही मिला।"

"वाह! कही ऐसा करना चाहिये? देख इस समय राजाभाई के यहाँ जीमने जाना है।"

"इसी समय?" ज़रा चिंताग्रस्त स्वर में सुदर्शन ने पूछा।

"हाँ, तुझे सुलोचना से मिलना है। मै तेरा विवाह इसी से करना चाहता हूँ।" राववहादुर ने प्रयास से क्षोभ को दबा कर कह ही डाला।

सुदर्शन के मुख पर फिर परिवर्तन हुआ। उसकी आँखे गंभीर और मुख की रेखाएँ कठोर हो गईं।

"मुझे अभी विवाह नही करना।" निश्चयात्मक स्वर मे सुदर्शन ने कहा।

"विवाह करने की किसी को जल्दी नही है, पर सगाई कर डालनी है।"

"बापूजी, अभी इसकी भी क्या जल्दी है?"

"मै बूढा होता जा रहा हूँ।"

"पर मैं यह भूत क्यो अपने पीछे लगाऊँ?"

प्रमोदराय जरा अधीर हो गये। "लेकिन जरा सुलोचना को देख तो ले। अभी-अभी फौरन ही तुझे कोई बाँध देगा!"

"यदि ऐसा है तो इससे मुझे कोई एतराज़ नही।" सुदर्शन ने जवाब दिया।

"और तू बी० ए० पास जहाँ हुआ कि तुझे बबई भेजना है—तुझे आई० सी० एस० बनाना है।"

सुदर्शन ने गर्दन हिलाई, "मुझे सरकारी नौकरी नही करनी।"

"तब बैरिस्टर बनेगा?"

"वह भी नही हो सकेगा।"

"तब क्या हज्जामगिरी करनी है?" प्रमोदराय ने चिढ कर कहा। सुदर्शन चुप रहा। अपने बाप की उग्रता से वह दब जाता था, "तुझे करना क्या है?"

"मुझे एम० ए० होकर प्रोफेसर होना है।"

"लड़के जब छोटे होते है, तो सभी का मन प्रोफेसर होने का करता है। तू इस वर्ष बी० ए० तो हो जा फिर बात करना।" रावबहादुर ने इस विषय पर बात करना बंद कर दी। थोड़ी देर

बाद उन्होने दूसरी बात निकाली, "क्यो भाई, कुछ पढ़ाई-लिखाई भी होती है या इसी तरह भाषण सुने जाते है ?"

"पढता तो हूँ। अभी परीक्षा के बहुत दिन है।"

"अब क्या बाकी है ? तीन महीने ही तो है। चल जल्दी पास हो जा और मैं तुझे अपने सामने ही ठिकाने से लगा दूँ।"

सुदर्शन ने जवाब नही दिया। बाप और बेटे कालेज के सेंट्रल हॉल के सामने आ गये।

"चल, तब राजाभाई के यहाँ चलें।"

"हाँ तुम रात को कहाँ रहोगे ?"

"मैं रात की गाड़ी से चला जाऊँगा।"

"जी।" कह कर सुदर्शन ने शांति की श्वास छोड़ी।

दोनो किराये की गाड़ी मे बैठ कर राजाभाई के घर जाने के लिये रवाना हो गये।

८

गाड़ी मे बाप-बेटे चुपचाप बैठे रहे। बोलना रावबहादुर को सूझता न था और सुदर्शन को अच्छा नही लगता था। प्रमोदराय बहुत देर तक लड़के की तरफ देखते रहे। उन्होंने जो भयंकर लेख पढे थे क्या वह इस सुकुमार बालक के मस्तिष्क की उपज थी ? क्या ये आँखे उनके भावी जीवन को देखने की इरादा रखती थी ? क्या उनका बेटा ऐसा षड्यंत्र रच सकता है ? बिना स्त्री को पीछे लगाये यह कैसे सुधर सकता है ? अंगना के विलासपाश के बिना यह पागल कैसे सीधा हो सकता है ?

परन्तु सुदर्शन के मस्तिष्क मे बाप के लिये, स्त्री के लिये, विलास के लिये कोई स्थान नही था। श्रीयुत घोष के हृदय से निकले हुए शब्दो की स्मृति पर क्रीड़ा करती हुई उसकी कल्पना राष्ट्रीय पराधीनता की समस्या सुलझा रही थी और उसके हृदय मे विप्लव के पीर पैगवरो के हृदय मे जलती हुई होली सुलग रही थी।

---

# भावी वर-वधू

१

राजाभाई बड़ौदा राज्य में ओहदेदार थे और इनका मकान रावपुरा टॉवर के पास ही था। आज-कल सड़को पर जो नाटक की सीनरी जैसे सुन्दर, सस्ते और नाजुक मकान दिखाई देते है, यह मकान ऐसा न था, पर पुराने जमाने के किसी सरदार की हवेली जैसे वानप्रस्थ ले बैठी हो ऐसा दिखाई देता था। इसके असली बनावट के दीवानखाने में नकली जमाने के फर्नीचर, जैसे कोई वृद्धा बम्बईवाली नई वेशभूषा में निकली हो, ऐसा आभास कराते थे।

एक आराम कुर्सी पर सुलोचना पैर पर पैर रक्खे बैठी थी, जिससे धनी पिता की लाड़ली तथा अहकारी बेटी का ठीक-ठीक पता चलता था। वह ऊँचे कद की और सुन्दर थी, उसका रंग गोरा—बिना अरुणिमा के सफेद था। इस समय वह विचारो मे डूबी होने के कारण सन्ध्या के अंधकार में कांच की पुतली जैसी लगती थी। देखनेवाले को उसके मुख पर पाउडर के आवरण का वहम होता था। उसकी आँखो मे विलासिता, अभिमान और स्वच्छंदता की आभा बारी-बारी से चमक जाती थी। उसके हाथ पैर लम्बे थे जिनसे उसकी गति विशेष मोहक बन जाती थी। उसके शरीर की रेखाओ मे विलास के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। एक हाथ

अपनी ठोड़ी पर रखे खुले सिर बैठी हुई थी और बालो की दो लटे संयम त्याग कर गालो पर लटक रही थी।

वह एक प्रख्यात वैभवशाली पिता की लाड़ली बेटी थी और एल्फीन्स्टन कालिज मे प्रीवियस क्लास की छात्रा। वह अंग्रेजी अच्छी तरह बोल लेती तथा टेनिस खेलने में एक ही थी। वह रूपवती गर्वीली और जिद्दी थी। यह सब उसके व्यक्तित्व पर से स्पष्ट दिखाई देता था और यदि दिखाई न भी देता हो तो जान-बूझ कर दिखाया जाय ऐसा सुलोचना का स्वभाव था।

नामदार जगमोहनलाल ने सुदर्शन जीमने आनेवाला है यह बात उससे कह दी थी। सुदर्शन के साथ उसका विवाह करने को उसके माँ-बाप की योजना थी और इस योजना के लिये सुलोचना को आपत्ति थी। उसे एक ही आपत्ति न थी, बल्कि अनेक थी। उसे बबई ही अच्छी लगती थी और बम्बई के लोग ही पसन्द आते थे, और उनमे भी केवल धनाढ्य ही। बम्बई के अतिरिक्त न तो कही मजा है और न कही पैसा, अतः बम्बई के बाहर रहनेवाले व्यक्तियो के प्रति उसे घृणा थी। बम्बई के बाहर सरकारी नौकरी जैसा अधम धंधा करनेवाले लड़के के प्रति यह तो उसकी पहली आपत्ति थी।

एल्फीन्स्टन कालेज के अतिरिक्त कही दूसरी जगह ज्ञान या सस्कार मिल ही नही सकता यह सिद्धान्त उसने इस कालेज मे फैले हुए वातावरण मे से ग्रहण किया था। बम्बई के बाहर बडौदा जैसे देशी राज्य मे और वहाँ के तुच्छ कालेज में जो लड़का पढता हो, उससे वह विवाह करे इससे भी अधिक हीनता क्या हो सकती है? यह दूसरी आपत्ति थी।

जाति के कितने ही लडको से इसने सुना था कि सुदर्शन गँवार है, वह एकमात्र पढ कर पास होना जानता है, वह न तो क्रिकेट

खेलना जानता है और न टेनिस। यह तो उसे बहुत ही बड़ी आपत्ति थी।

पर इन आपत्तियो की परपरा का इतने से ही अन्त न था। उसे मित्रो की संगति में आनन्द आता था। फैशन और स्वच्छदता अच्छी लगती थी। विवाह अर्थात् पराधीनता मे फँसना—यह उसकी धारणा थी।

वह जब पति का विचार करती तो केकी रुख या गमन दलाल ही उसके मस्तिष्क मे आते थे।

केकी रूख दो घोडो की गाड़ी मे कालेज आता था। टेनिस मे उसका 'स्मेश' किसी से भी न मिलता था। क्रिकेट मे उसकी बॉल किसी से भी न रुकती थी। वह एक से एक भड़कीले कपड़े पहनता और उसके घुंघराले वाल छटा से उसके सिर पर वने रहते थे। वह घोड़े पर भी बैठता था और सुलोचना के मन मे यही आता था कि उसे यदि इस जैसा पति मिले तो उसका सारा जीवन घोडे पर कुदकियाँ मारते हुए ही बीत जाय।

गमन दलाल दूसरी जाति का था। वह काला, पर ऊँचा, पतला-दुवला तथा सुन्दर था। वह क्रिकेट नही खेलता केवल टेनिस खेलता है, पर उसकी जवान मे जादू था। वह यदि हँसता या वोलता तो सब के सब आनन्द से प्रफुल्लित हो उठते थे। वह छैले की तरह टेढी टोपी लगाता था। उसकी सँवारी और कलपदार धोती ही उसकी खूवी का प्रदर्शन करती थी। वह कालेज के प्रत्येक आन्दोलन मे आगे रहता और वम्बई की प्रत्येक नाटक कम्पनी का वह शुभेच्छु ही था। उसके साथ तो जीवन एक अनन्त हास्य-कोष ही हो जायेगा।

सच वात तो यह थी कि ऐसे महान् व्यक्तियो को छोड कर इस देहाती गँवार के साथ विवाह करे! वह अँधेरे मे ही हँसी। एक

मजा आयेगा। इस असभ्य के साथ की हुई बातचीत से पूरे टर्म भर मजाक का सामान मिल जायगा।

'पापा' जिद करके शादी कर दें तो? पर यह हो ही कैसे सकता है। बिना प्रेम के वह विवाह नही करेगी। गाय जैसी भोली लड़कियाँ भले ही करें; पर वह वैसी होनेवाली नही। वह अपने 'पापा' को पहचानती थी वह उसकी इच्छा विरुद्ध कभी कुछ नही करेंगे।

नीचे किराये की गाड़ी खडी हुई। वह सुदर्शन—सदुभाई आयें! उसके मुख पर तिरस्कार के भाव थे। फिर भी अपरिचित युवक को—जिसे सब उसका पति बनाना चाहते थे—उससे सुलोचना को मिलते हुए जरा क्षोभ हुआ।

जीने पर पैरो की आवाज सुनाई दी। उसने सिर पर आँचल सरका लिया। कमरे मे एक मोटा सज्जन, आनंद-विभोर झपाटे से आया और हाथ फैलाया, "क्यो बहिन सुलोचना!"

सुलोचना जरा गर्व से खड़ी हुई, "कौन प्रमोद काका?"

सुलोचना क्षण भर के लिये विचारों मे डूब गई: कमरे के द्वार पर खड़ा हुआ लडका, सुदर्शन! इतने मे जगमोहनलाल तथा राजा-भाई आ पहुँचे, "हलो सदुभाई!" नामदार ने हाथ मिलाया। सुदर्शन ने जरा सकुचाते हुए हाथ मिलाया। 'अंदर आओ न' क्यो रावबहादुर—और बडे लोग बातो मे लगे।

"रावबहादुर, आओ न अंदर बैठो, मुझे जरा बात करनी है।" नामदार ने कहा, लड़को! तुम यही बैठो। याद है सुलोचना? सदुभाई तू माथेरान में मिली थी—प्रमोद काका आये थे तब?"

जरा मिजाज से सुलोचना ने ऊपर देखा और हँसी, "मैं तो उस समय चारेक वर्ष की हूँगी।"

"तब पुरानी जान-पहचान आज फिर ताजी कर लो।" राव-बहादुर ने भावी पुत्र-वधू की ओर प्रसन्न मुख से देख कर कहा।

जब रावसाहब अंदर चले गये तो सुलोचना ने सुदर्शन की तरफ नज़र फेंकी।

पहले उसकी हास्यवृत्ति उत्तेजित हुई, यह सुदर्शन! यह लड़का—जिसकी तारीफ उसके माँ-बाप किया करते थे वह! यह उसका स्वामी बनने की इच्छा रखनेवाला वर!

इस अभिमान भरी दृष्टि से उसने सुदर्शन को देख लिया: लापरवाही से ऊपर की ओर रखी हुई पुरानी टोपी, पाँच में से बाकी बचे तीन बटनवाला मैला चैक का कोट; बिना किनारे की मोटी धोती, काले पड़े हुए दक्षिणी जूते! यह लापरवाही, यह गंदगी यदि सुलोचना में भी होती तो वह कदाचित् उसे स्वीकार कर लेती।

सुदर्शन ने हाथ मिलाने के लिये हाथ लंबाया यह ग्राम्यता उसने देखी, उसके मुख की हास्यविहीन जड़ता उसने अपने मन में रख ली। मुँह—सच पूछा जाय तो—स्वरूपवान तो नहीं, 'घोचू' उसे जो उपनाम सूझा था वह सार्थक ही लगा।

सुदर्शन उसकी तरफ निस्तेज तथा नीरस आँखों से देखता रहा। स्त्री के प्रति उसे आकर्षण न था, विवाह को तो वह त्याज्य ही समझता था। जिस रुचि से शुकजी ने रंभा को देखा था, उसी रुचि से वह देखता रहा।

दोनो को थोड़ा सा क्षोभ हुआ। गर्वीली बाला तथा उदासीन युवक, दोनो में से एक को चैन नहीं पड़ी।

"तुम सीनियर बी० ए० में हो?"

"हाँ।"

सुदर्शन बड़ा उकता कर चारो ओर देखता रहा। यह प्रसंग किस लिये खडा किया गया होगा? "तुम प्रीवियस में हो?" उसने पूछ ही लिया।

"हाँ, तुम टेनिस खेलते हो?"

"नाम मात्र के लिये। मुझे कुछ भी खेलना नही आता।"

ऐसे दीन वचन कहनेवाले की तरफ सुलोचना तिरस्कार-पूर्वक देखती रही।

"क्रिकेट ?"

सुदर्शन ने म्लान मुख से गर्दन हिला दी। "तुम्हारी जिदगी किस प्रकार बीतेगी ?" जरा अपमान भरी हँसी से सुलोचना ने पूछा और मन मे फिर 'पोचू' शब्द का स्मरण किया।

सुदर्शन ने इस प्रश्न के पीछे छिपे हुए अपमान को परखा। बड़ौदा कालेज मे रह कर उसने स्त्री-सम्मान के निरर्थक पाठ नही पढ़े थे। उसकी भवे टेढी हो गईं और उसकी निस्तेज दृष्टि मे तेज आ गया।

"मेरे जीवन मे खेल-कूद को स्थान नही।" जरा गुस्से में उसने कहा।

सुलोचना उसकी आवाज मे तथा उसके चेहरे पर हुए परिवर्तन को देख कर पहले तो चकित हुई फिर ऐसे आडम्बर भरे वाक्य पर हँसने लगी।

"तुम बी० ए० होने पर क्या करोगे ?"

"मैं यह विचार ही नही करता।" दृढ विचारवाले सुदर्शन ने कहा।

"तब वह विचार कौन करेगा ?"

"वह—मेरी मेरी माँ—" अकुला कर सुदर्शन ने कहा। वह इस लड़की से ऊब गया था।

"माँ" शब्द सुन कर सुलोचना हँसे बिना न रह सकी। वह मुँह पर हाथ रख कर हँसने लगी। इतना बड़ा लडका बहू लेने आया और माँ की सम्मति बगैर विचार नही कर सकता। हँसी मे तिरस्कार था—निरकुश स्वभाव का अभिमान उसमें दिखाई देता था।

"सुदर्शन के मस्तिष्क मे बादल घिर आये और जैसे घनघोर आकाश मे बिजली चमकती हो इस प्रकार उसकी आँखें चमक उठी।"

"तुम किस लिये ये सब बाते पूछ रही हो ?" उसने तिरस्कार-पूर्वक कहा, "तुमको सब बाते हँसी ही लगती है और लगेंगी। ये सब हम दोनो को यहाँ क्यो छोड़ गये है जानती हो ?"

यह प्रश्न इतना सचोट पूछा गया था कि सुलोचना के मुख की हँसी ज्यो की त्यो रह गई और वह बोली, "नही।"

"मेरे और तुम्हारे पिताजी हम दोनो का विवाह चाहते है।"

"सुलोचना ने जवाब में कधे उचकाये।"

"यह बात ? पर मुझे एक वचन चाहिये।"

"क्या ?"

"वचन का पालन करो तो कहूँ।"

"कहो तो फिर पालन करूँ।"

"बहिन ! मुझे विवाह नही करना तुम मुझे वचन दो कि तुम मुझे स्वीकार नही करोगी।"

एकदम सुलोचना ने ऊपर देखा। 'घोचू' की कल्पना वह पल भर के लिये भूल गई। प्रत्येक रोम-रोम मे शक्ति का सचार हुआ; आँखो मे आवेश की ज्योति भभकती हुई दिखाई दी, मुख पर जिसको उसने जडता समझ रखा था वह गभीरता मे बदल गई। सहसा उसे होश आया कि जितने तिरस्कार से वह उसकी तरफ देख रही थी उतने ही तिरस्कार से सुदर्शन भी उसकी तरफ देख रहा था।

"क्यो ?" आश्चर्यान्वित सुलोचना के मुख से एकदम निकल ही गया।

"मुझे विवाह ही नही करना।"

सुलोचना को फिर हँसी आ गई। यह लड़का उसे जरा सनकी सा लगा। उसने हँसते-हँसते पूछा, "क्यो ?"

"माँ की आज्ञा नही।" सुदर्शन ने सम्मान-पूर्वक धीमे स्वर मे कहा।

"माँ—तुम्हारी माँ तुमको विवाहित देखना नही चाहती ?"

"हाँ, मेरी माँ—मेरी अम्माँ नही।" सुदर्शन के मुख पर ग्लानि दौड़ गई और उसकी आँखे दूर पर किसी को देख रही हों इस प्रकार अंधकार मे ठहर गईं। "मेरी भारत माता !" सुदर्शन की आवाज मे पूज्यभाव था, पर सुलोचना की निर्लज्ज हँसी से इस पूज्यभाव की प्रतिध्वनि कलंकित हो गई।

"तुम देशभक्त हो ?" सुलोचना ने जीभ निकाल कर मजाक करते हुए पूछा।

"नही, मै अपनी माँ के चरणो की रज हूँ।"

"तुम इंडिया को माँ कहते हो ?"

"हाँ, तुम्हारे लिए जो इंडिया है वह मेरे लिए माँ है। मुझे एक वचन दोगी क्या ?"

जरा तिरस्कार से सुलोचना ने एकदम पूछा, "क्या ?"

"चाहे कुछ भी हो तुम मुझे स्वीकार मत करना।"

"हाँ, यह वचन दिया।"

सुदर्शन ने कहा, "हम दोनो विवाह के लिये पैदा ही नही हुए।"

"यह क्यो ?"

"मै देख रहा हूँ कि तुम वाचाल और शौकीन हो। मै अल्प-बुद्धि का रागरहित पुरुष हूँ। तुम्हारे अंतर मे मेरे लिये जगह नही, हम दोनों का मेल नही खा सकता।"

"थैंक यू !" जभाई लेकर सुलोचना ने कहा और हँसी।

"अब हमें दूसरी बात करनी चाहिये।"

## २

राजाभाई ने तो बड़ी कठिनता से मिलने वाले बहनोई के स्वागत में अतिथि-सत्कार की हद ही कर दी थी। उसने रांगोली चित्रित की, पटला बिछवाया। अगरबत्ती की सुवास से वातावरण में एक प्रकार की मादकता छा गई। पीतल के चमकते हुए वॉलसीट स्थान-स्थान पर उजाला कर रहे थे।

नामदार जगमोहनलाल प्रसंग मे अच्छी लगे इस छटा से घर की, जाति की, गाँव की और देश की बात करते जाते थे और तीक्ष्ण दृष्टि से सुदर्शन के चाल-ढाल भी देखते जा रहे थे। थोड़ी-थोडी देर में उसे बीच में बोलने के लिये निमंत्रित भी करते जाते थे।

जगमोहनलाल मनुष्य के स्वभाव और शक्ति के गभीर अभ्यासी तथा परीक्षक थे। उन्हे सुदर्शन की अनुचित वेश-भूषा मे केवल लापर्वाही दिखाई दी, गदापन नही। यह सुकुमार दिखाई देने वाला बुद्धिशाली, सकोची और कम बोलने वाला लड़का उन्हे अच्छा लगा। थोड़ा प्रोत्साहन, थोडी पालिश और अच्छी सोहबत मिल जाये तो यह हीरा चमक उठे, यह उनको विश्वास हो गया। सुदर्शन के साथ और अधिक बातचीत कर उसके स्वभाव तथा अभिप्राय से और अधिक परिचित होने की उन्हे इच्छा हुई।

"आजकल गभीर अध्ययन करने की किसे फुरसत है? देखो न, दीनशा वाच्छा और गोखले कितने अध्ययन के बाद आगे आये? और आज तो हमारा सदुभाई भी राजनीतिज्ञ बन गया!" मुसकरा कर सुदर्शन से कहा, "क्यो सदुभाई ठीक है न?"

नीचा मुंह कर खाता हुआ सुदर्शन इस सबोधन से जरा घबराया और शरमाया; पर बड़ी मुश्किल से उसने तुरन्त क्षोभ को दूर कर जवाब दिया, "देश-भक्त भक्ति से होता है—ज्ञान से नही।"

"इसका मतलब यह कि वाच्छा और गोखले देशभक्त नही ?" ज़ोर से हँस कर नामदार ने पूछा।

"ज्ञानमार्ग से मनुष्य योगी हो सकता है। यह बात ठीक, पर भक्त भक्ति से ही होता है।"

"तो इसका मतलब यह कि मंजीरे लेकर 'वंदेमातरम्' गाने से ही देश का उद्धार हो जायगा ?" नामदार प्रमोदराय की तरफ मुड़े, "यह देखो आज-कल के देशोद्धारक !" वह खिलखिला कर हँसे।

"अजी ! ये तो सब यह समझते है कि 'वंदेमातरम्' गाया कि अंग्रेज भारत से भागे।" रावबहादुर ने कहा।

"It is stupid (मूर्खता की बात है)" नामदार ने कहा, "ब्रिटिश सरकार की मदद बिना तुम क्या कर सकते थे ? सदुभाई ज़रा विचार करो: तुम्हे और मुझे शिक्षा किसने दी ? देश मे शांति किसने स्थापित की ? यह नवीन स्वदेश-भक्ति किसने जागृत की ? बोलो सदुभाई !"

सुदर्शन को यह विवाद करना अच्छा नही लगा, पर फ़िर भी जवाब तो देना ही पड़ा, "यह बात कहते है तो काका, मैं पूछता हूँ, देश को दरिद्र किसने बनाया ? मुसलमानो के समय की खुशहाली किसने छीन ली ? अपने ही देश मे हमको किसने असहाय और पराधीन कर डाला ?"

"तुमने किस लिये अंग्रेज़ों को आने दिया ?" प्रमोदराय बीच में बोल उठे।

"सदुभाई !" नामदार ने हँसकर कहा, "That is not the point. (बात का यह मुद्दा नही) पर अंग्रेज़ों को निकाल देने से फ़ायदा क्या ? और फ़ायदा भी हो तो ये कही निकलने वाले है ? तुम सब मे व्यवहार-बुद्धि बिल्कुल नहीं। राजनीति का पहला सूत्र व्यावहारिकता है। ऐसे समय मे हम कर ही क्या सकते है ? और

कुछ कर भी सके तो भी जब तक हम स्वय ही पराधीन है तब तक फायदा क्या ?"

"जगमोहनभाई ! साहब ! श्रीखंड मँगाऊँ !" राजाभाई के यह पूछने पर बात का क्रम टूट गया। सुदर्शन चुपचाप खाता रहा। सुलोचना राजनीति की बातो से उदासीन थी इसलिये वह आगामी टेनिस टूर्नामेंट का विचार करती रही।

सब जीम कर उठे। नामदार जगमोहनलाल की पत्नी गौरी बहिन तो राजाभाई की बहू के साथ बातों में लग गई, सुलोचना सामान बँधवाने मे घिर गई, और पुरुष वर्ग दीवानखाने मे जा बैठा। सुदर्शन एक कोने में बैठा हुआ विचार करता रहा।

"सदुभाई !" नामदार ने कहा। सुदर्शन ने चौंक कर ऊपर देखा। "बी० ए० के बाद तुम्हें क्या करना है ?"

"अभी कुछ निश्चय नही।"

"मुझे तो इसे सिविल सर्विस के लिए भेजना है।" प्रमोदराय ने कहा।

"पर तुम्हारी क्या इच्छा है ?" नामदार ने पूछा।

"मैंने कुछ निश्चय किया नही।"

"तुम सिविल सर्विस में जाओगे तो फिर यह तुम्हारा देश का उद्धार कैसे होगा ?" जगमोहनलाल ने कटाक्ष किया।

"सरकारी नौकर ही तो वास्तव मे देश की भलाई करते है।" बेटे को कलेक्टर बनाने की इच्छा रखने वाले प्रमोदराय ने कहा।

"पर सदुभाई का तो कुछ जुदा ही विचार है।"

"क्या ?" प्रमोदराय ने पूछा।

"बोलो, सदुभाई ! क्या सोचा ?"

"अभी तो मैंने केवल एक ही बात सोची है, भारत माता की सेवा के अतिरिक्त मुझे और कुछ नही करना।"

जगमोहनलाल हँस पड़े । प्रमोदराय के मुँह पर ज़रा क्रोध दिखाई दिया ।

"सब लड़के बचपन मे ऐसी ही बातें कहा करते है ।" नामदार ने हँसना समाप्त करते हुए कहा, "पर सदुभाई ! शैशव के स्वप्न और जवानी के अनुभवों मे ज़मीन आसमान का अंतर होता है । पाँच वर्ष बाद तुम्ही अपने इन विचारो की हँसी उड़ाने लगोगे । पहले अपना कल्याण करो और फिर देश का । बचपन के सपनो को पालने मे किसी का कल्याण नही हुआ ।"

सुदर्शन चुप रहा । उसे नामदार जगमोहनलाल का दृष्टिकोण विषैली हवा की तरह घुटन पैदा कर रहा था ।

और नामदार की पतवार के साथ-साथ वार्तालाप की नौका ने अपनी दिशा बदल दी ।

३

बंबई की ट्रेन छूटने वाली थी ।

"सुलोचना, सदुभाई से बंबई आने के लिए तो कह ।" नामदार ने लड़की को शिष्टाचार की सीख दी ।

"सदुभाई ! Do come positively जरूर आना ।" तिरस्कार भरी उदासीनता से सुलोचना ने कहा ।

"परीक्षा के लिये आओ तब हमारे यहाँ ही ठहरना ।" गौरी बहिन ने अपनी ओर से शिष्टाचार-प्रदर्शन किया ।

"और, रावबहादुर, हो सके तो तुम भी अवश्य आना ।"

"अजी मुझे तो 'केजुअल लीव' मिल नही सकती, फिर भी देखूंगा ।"

"चलो, सीटी हो गई ।"

"आना, जरूर आना, साहेबजी" और गाड़ी चल दी—और सुदर्शन को ऐसा लगा कि जैसे नामदार जगमोहनलाल द्वारा रचित वातावरण के एक बुरे स्वप्न का अंत हुआ हो।

ट्रेन चल दी थी, अतः प्रमोदराय ने सुदर्शन की तरफ देखा। "सुदर्शन, मैं जाता हूँ, पर जगमोहन ने जो कहा है उस पर विचार करना और कुछ बेकार का पागलपन हो तो दूर कर देना।"

सुदर्शन ने जवाब नही दिया।

"सुलोचना के साथ तेरा अब विवाह कर दूँगा।"

जैसे स्वप्न से जगा हो इस प्रकार सुदर्शन बाप की तरफ देखता रहा।

"मुझे विवाह नहीं करना।" उसने कहा।

"बिना विवाह के किसी का काम चला है, जो तेरा चलेगा?" प्रमोदराय ने जरा आँखें निकाल कर कहा, "खबरदार जो सामना किया!"

"मुझसे विवाह नहीं होगा।"

"क्यो?" रावबहादुर ने अधीरता से पूछा।

"मुझे अपनी माँ की सेवा करनी है।"

"सद्दु! यह तेरा पागलपन मै जानता हूँ। यह मेरे आगे नही चल सकता।" प्रमोदराय ने गुस्से में जल कर कहा, "ज्यादा गड़बड़ की तो पैर पकडकर घर से बाहर निकाल दूँगा।"

सुदर्शन जरा हँसा, "बापूजी, बहुत सी चीजें घर से बाहर और अधिक मूल्यवान हो जाती है।"

"क्या तेरी देश-भक्ति?"

"नही मेरी माँ की सेवा।"

"मूर्ख! इसके सिवाय और भी कुछ बोलना आता है? कहाँ तो मै सरकारी नौकर और कहाँ तू मेरा लडका।"

"तुम सरकार के नौकर हो ऐसा मानते हो पर वास्तव मे देखा जाय तो तुम माँ के नौकर हो ।"

"मेरे यहाँ यह आंदोलन नही चल सकता । मै सरकार का नमक खाता हूँ ।" उग्रता से रावबहादुर ने कहा ।

"बापूजी सरकार नमक विलायत से नही लाती । माँ का नमक ही तो माँ के बेटे खाते है ।"

"चल बहुत हुआ !"

सुदर्शन चुप रहा और थोडी देर में रावबहादुर अपनी गाडी मे बैठ कर चले गये ।

बंबई जाने वाली ट्रेन मे नामदार जगमोहनलाल ने सुलोचना के साथ बातचीत शुरू की—

"क्यो बेटा, सदुभाई पसंद आया न ?"

"हाँ ठीक है ।" नाक चढ़ा कर सुलोचना ने कहा । उसकी आवाज़ की कठोरता सुनकर नामदार ने ऊपर देखा और लड़की के मुख पर विरोध के भाव पढे । इ"सके साथ तेरा विवाह करना है ।" उन्होने कहा ।

"Nothing of the kind" ( ऐसा कुछ नही )" बडा ही जोर देखकर नामदार की लड़की ने जवाब दिया, "गँवार से मै शादी करूँ ?" सुलोचना ने कन्धे उचकाकर कहा ।

"क्या बुराई है ?" गौरी बहिन ने पूछा, "तुझे तो बंबई की तड़क-भड़क ने चकाचौंध कर दिया है ।"

"यह लड़का क्या पढता है , यह मैने देख लिया है । होशियार है, मेहनती है, सीधा है, आँख-नाक का अच्छा है, फिर तुझे क्या चाहिये ?"

"तुम जब इतने खुश हो गये हो तो फिर मुझे क्या कहना ?" तिरस्कार से लाड़ली बेटी ने पूछा ।

"कुछ भी नही , सिर्फ उसके साथ विवाह कर लेना है ।

"मुझे नही करना।"

"It's idiotic. (मूर्खता है) अपनी जाति में ऐसा लड़का है कहाँ ?"

"मुझे विवाह की जरा भी हौंस नही।" सुलोचना ने हँस कर कहा।

"मुझे तो विवाह कर देने की हौंस है, फिर कुछ ?"

"पर इसका करूँ क्या ? जरा सी भी कोई बात हो तो माँ को पूछता है।"

"यह तो पगली, पल भर की देश-भक्ति की हवा है। कल चली जायेगी। जो लड़का बचपन में ऐसा हो वही बड़ा होने पर हाथ मारता है।"

"पापा ! मुझे तो वह बिल्कुल पागल-सा लगा।"

"तुझे तो अल्फीन्स्टन कालेज ने बिगाड़ दिया है।" गौरी बहिन ने कहा।

"मुझे पढ़ाया, क्यो ?" लड़की ने लाड़ में जवाब दिया।

"सुलोचना, अब बहुत बात हो चुकी।" निश्चयात्मक बुद्धि से मुट्ठी हिलाते हुए जगमोहनलाल ने कहा, "चाहे इस कान से सुन या उस कान से, पर सदुभाई से विवाह करना ही पड़ेगा।"

"यह तो मान जायेगी।" गौरी बहिन ने पति का निश्चय देख कर धीरे से कहा।

"मानना ही पड़ेगा।" नामदार ज़ोर देकर बोले।

सुलोचना चैन से खिड़की से बाहर देखने लगी।

जगमोहनलाल विचार में पड़ गये। सुलोचना का विचार करते हुए सुदर्शन का विचार किया, उसका विचार करते हुए सुदर्शन के सिद्धान्तो का विचार किया।

आज तक वह किसी भी विप्लववादी के संसर्ग मे नही आये थे।

फिरोजशाही राजनीति को प्रजा-जीवन की अंतिम सीमा मानने के कारण विप्लववाद समझने की भी उन्होंने परवाह नही की थी। हरामखोर और बदमाश लोग ऐसे पागल नासमझ लड़को को उत्तेजित कर बलिवेदी पर होली के नारियल की तरह चढा देते हैं यही रहस्य उन्हे आजकल के नवीन राष्ट्रवाद में दिखाई देता था।

पर सुदर्शन मे उन्होने विप्लववाद साक्षात् देखा। इस शर्मीले लड़के की मनोदशा मे भयंकर वस्तुओं को छिपे हुए देखा। ऐसे लड़के यदि पक्के हो गये तो सदियो की बरबादी के बाद जो व्यवस्था और शांति देश में आई थी उसका क्या होगा? क्या संपूर्ण देश और समाज मे विप्लव की चिनगारी दहक उठेगी? क्या ब्रिटिश साम्राज्य की नीव हिल जायेगी?

ब्रिटिश साम्राज्य क्रूर था—काले-गोरे का भेद गिनता था, पर बिना उस शासन के व्यवस्थित प्रगति भी नही हो सकती थी, और उस शासन के जिम्मेदार उदार, न्यायी और लोकशासन के शौकीन अंग्रेज थे। उस शासन के संरक्षण के बिना सुख या शान्ति, प्रगति या प्रभाव कुछ भी नही मिल सकता था। इसके बिना विभिन्न जातियाँ एक साथ मिल कर कैसे रह सकती थी—धार्मिक झगड़ो का अंत कैसे हो सकता था और लोकशासन की भावना किस प्रकार पैदा हो सकती थी? इसके बिना अफगान आ सकते थे, रशियन आ सकते थे और अहमदशाह अब्दाली तथा नादिरशाही जुल्म का फिर दौरदौरा हो सकता था।

और समाज की प्रगति हो कैसे? अंग्रेजी शिक्षा ने ज्ञान-चक्षु खोले, अंग्रेजी संस्कार ने समानता और स्त्री-स्वातंत्र्य सिखाया। इन संस्कारो के बिना भारतवर्ष अधोगति से किस प्रकार बच सकता था?

ऐसे उदार भाव जैसे-तैसे हृदय मे दबाये नामदार जगमोहनलाल ऊँघते ऊँघते सो गये।

४

चिंताभिभूत अस्वस्थ सुदर्शन स्टेशन से वापिस आया। उसके स्वप्नो मे जगमोहनलाल ने खलबली पैदा कर दी थी। जिस सृष्टि का उसने निर्माण किया था उसमे एक महान् विनाशक भूकम्प हो रहा था।

उसने अपनी सृष्टि की नीव भारतवासियो की देश-भक्ति तथा परदेशियो के प्रति क्रोध पर रखी थी। प्रत्येक हिन्दुस्तानी भारत माता का भक्त था या होने वाला था और प्रत्येक भक्त माँ की स्वतंत्रता की रक्षा के लिये विदेशी सस्कार और सत्ता का विरोधी था। इन निश्चल सिद्धान्तो का विरोध रूप नामदार उसको दिखाई दिया। अपने पिता की राज-भक्ति को तो वह पुराने जमाने की अवशेष मनोदशा मानता था, अत उनकी उसे कुछ भी परवाह न थी, पर फीरोजशाह और उसके अनुयायियो के सिद्धान्त को वह द्रोह-रूप समझता था। उसका दृढ़ निश्चय था कि बड़े होने पर और हाथ मे प्रजा-जीवन की बागडोर लेकर वह इन कहे जाने वाले राष्ट्र-वादियो का विरोध करेगा। पर फिरोजशाही संप्रदाय का प्रतिनिधि उसने जो अभी तक नही देखा था वह आज देख लिया। अग्रेजी वेश-भूषा, अंग्रेजी चाल-ढाल, अग्रेजी भाषा की गुलामी, ब्रिटिश शासन के प्रति प्रेम, भारत माता से अश्रद्धा—पराधीन की वृत्ति के सब अंग जगमोहनलाल मे साक्षात् मूर्तिमान देखे; और उनकी आत्मश्रद्धा देख कर उसकी अपनी श्रद्धा डगमगाने लगी। इससे सुदर्शन के हृदय मे क्रोध और द्वेष की आग सुलगने लगी।

"क्या ऐसे लोग अग्रेजो का साथ देंगे ? क्या वे विप्लववादियों के प्रयत्न निष्फल कर देंगे ?" उसने घबरा कर ऊपर देखा चाँद की दुग्धधवल ज्योत्स्ना में कालेज के गुबजो पर चारो ओर के वाता-

चरण का जो संस्कार पड़ रहा था उसका भयंकर प्रभाव उसके हृदय पर भी हुआ। वह आगे न बढ़ सका।

उसे याद आया कि आधी रात को भीमनाथ के तालाब पर उसके सहयोगी मिलने वाले थे और उसे भी वहाँ जाना था। पर इस समय उसके हृदय में अश्रद्धा का संचार हो गया था; उसकी निर्मित सृष्टि मे नामदार जगमोहनलाल ने फूट डाल दी थी। उसे लगा कि इस समय उसके मित्र जो देश-भक्ति के आवेश मे सराबोर हो बड़ौदा आये थे उनसे मिलने योग्य वह नही था। उसकी सब योजना व्यर्थ थी; उसके स्वदेश-बंधु कायर थे; उसके देश का भाग्य फूटा हुआ था...वह नीचा सिर कर सीधा ही चल दिया। उसे रोने का मन हुआ पर वह रो न सका।

अपनी निर्बलता का भान आते ही काँप उठा। बचपन से ही उसे देश-प्रेम था असाधारण आकांक्षा थी, और किसी को भी न सूझने वाले विचार सूझते थे। बहुत समय से वह राष्ट्रनेताओं की भूल देख सकता था और बड़े-बड़े प्रश्नों का हल आसानी से निकाल सकता था और धीरे-धीरे डरते-डरते उसे विश्वास होने लगा था कि महामाया ने उसे भारतमाता को स्वतंत्र करने के लिये ही पैदा किया है।

इस समय अश्रद्धा के बादलों मे यह विश्वास ढक गया और उसको अपने जीवन का निर्झर सूखता-सा लगा।

"माँ—माँ! क्या इतना समय मैं मूर्खता मे ही बरबाद करता था? माँ! अपनी सेवा मुझे नही करने दोगी क्या?"

एकदम अपनी दुर्बलता के प्रति उसे क्रोध आया। वह पराधीन मनुष्य पशु की तरह पराजीत हो रहा था।

"क्या मेरा पुण्य समाप्त हो गया? मेरी माँ—आर्यों की देवी—जगज्जननी—पराधीनता में, दुःख में, इस प्रकार पड़ी रहे—फिर भी

मै ज़ीवित रहूँ ?" उसकी धारणा थी कि भारतमाता उसकी सेवा के लिये प्रतिक्षा मे बैठी थी। उसकी अश्रद्धा और द्रोह से उसे कितनी वेदना होती होगी ?

"माँ। माँ। तेरा क्या होगा ?" कह कर वह कालेज हाल की सीढियो पर बैठ गया। "माँ ! माँ !" उसने पुकारा—उसकी आँखे निस्तेज सी हो गई—और पल भर मे मान और भय से व्याकुल हो उठी।...

जिस सीढी पर वह बैठा हुआ था, उसके सामने एक छोटे से खम्भे पर सूर्य की धूप-छाँह से समय नापने का यत्र था। उस स्तंभ के आगे कोई हिला...सुदर्शन का श्वास रुक गया......

वहाँ फैली हुई चाँदनी के मोहक प्रकाश में—कालेज की बड़ी छोटी छाया से रची हुई धूप-छाँह की अद्भुत मोहमाया मे,-एक स्वरूप —चंद्रकिरणो का बना हुआ सा प्रकाशमान होने पर भी जैसे इसी पृथ्वी का हो ऐसा—वहाँ से आगे आया। उसकी तेजस्वी रेखाओ में देवी या देवता के शरीर में ही मिलने वाली दिव्य तथा मोहक अस्पष्टता थी।

सुदर्शन उसकी तरफ पागल की तरह देखता रहा, उसका हृदय घबराहट से धड़क रहा था।

ज्योत्स्ना के जलधि में सागर की सुपुत्री लक्ष्मी प्रकट हुई हो इस प्रकार एक स्त्री उसकी तरफ आई। उसकी देह सुन्दर थी, पर फिर भी दीन मानवता की विस्तृत सीमा से परे हो ऐसा दिखाई दिया। उसके वस्त्रो की छटादार सिकुड़न, चंद्रिका की रजत-तरंगो सी दिखाई देती थी; चारो ओर की बिखरी हुई चद्रिका में भी जहाँ वह थी वहाँ कांचन गंगा के हिमशिखरो जैसी निराली और सौम्य तेजोमयता प्रसरित थी।

सुदर्शन ने इस शांत और सौम्य तेजोमूर्ति को देखा, उसके आगे बढके

हुए चरणो का लालित्य निरखा, उसकी अस्पष्ट, पर उभरी हुई रेखायें —परिचित सी—दिखाई दी, उसके सिर को भव्य शोभा देखी; उसकी दृष्टि उसके मुख पर स्थिर हो गई, अखंड यौवन का सनातन सौंदर्य—युग-परंपरा की समृद्धि से दीप्त ज्ञान-गाभीर्य—अनुकपा की अवधि में उत्पन्न परम वात्सल्य—स्रष्टा की सहचारिणी को सुशोभित करने वाला, दुर्जय पर दयासिक्त गौरव उसने देखा।

इन सब वस्तुओं को सुदर्शन ने पहले जागते हुए और सोते हुए, स्वप्नों मे देखी थी और उसकी चिरपरिचित थी; पर आज उन सब का साक्षात्कार होते ही आज उसका भक्ति में डूबा हुआ हृदय पागल हो उठा।

बहुत देर से अकेले पड़े हुए, अधीर और भूखे बालक की तरह वह कुछ बोल नही सका और रो भी न सका मात्र दयनीय बनकर हाथ फैलाता रह गया। उसके होठ खुले नही, फिर भी उसकी प्रत्येक रगरग मे 'माँ' शब्द की प्रतिध्वनि हो रही थी।

वह देखता रहा 'माँ' पास आई और उसके मुख पर दया से भीगी हुई मुस्कराहट फैल गई।

"माँ!" सुदर्शन ने बोलने का प्रयत्न किया और पास आये हुए तेजपुंज को छूने के लिये हाथ फैलाये, उसके चरणो को छूने लगा और 'माँ' कह कर परम स्नेहावेश से सिर चरणों में रख दिया, फिर हँसा। उसी हँसी मे भगीरथ जीवन की प्रेरणा थी, मिट्टी के पुतले में भी वीरता का जोश भर देने का जादू था। उसे आशीर्वाद देने के लिये माँ ने हाथ फैलाये।

सुदर्शन ने नीचे देखा, उसकी आँखो के आगे न सहा जा सके ऐसा तेज नाच रहा था और पूज्यता के भार से दब कर वह औंधे मुंह पृथ्वी पर गिर पड़ा।

और उसके कान में अनेक किन्नर-कंठो से निकल रही हो ऐसी आवाज़ सुनाई दी—

"अमला—कमला सुस्मितां
धरणी—भरणी—मातरम् ।"

५

सुदर्शन ने ऊपर देखा—कितनी ही बार उसकी चेतना आती रही। उसने चारो ओर देखा तो निश्चेतन चंद्रिका, जीवित प्रभा से छिटकी हुई थी। 'धरणी-भरणी-मातरम्, वह बड़बड़ाया और खड़ा हो गया। श्रद्धा और भक्ति की फुहारो से उसकी आत्मा निर्मल हो रही थी।

आत्मश्रद्धा के गर्व से उसने चलना आरंभ किया। भारतमाता ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया था। अपनी बेड़ी काटने का शस्त्र उसे समझा। उसका जन्म सफल हो गया। जगमोहनलाल जैसे द्रोही की, ब्रिटिश साम्राज्य जैसे अत्याचारी की अब उसे तनिक भी परवाह न थी। उसने अपने जीवन का कर्तव्य और भी स्पष्ट रीति से समझा।

जब वह अपने कमरे में गया तो पाठक, केरशास्प और मगन पंड्या उसकी बाट देख रहे थे।

केरशास्प उत्साही तथा बुद्धिशाली पारसी युवक था। वह बड़ौदा का रईस था। बाप के पैसे की गर्मी होने के कारण उसने पढ़ना छोड़ कर परदु:खभंजन प्रवृत्ति आरम्भ की थी। कही भी क्लेश हो तो वह उसे शांत करे, कही भी अन्याय हो तो वह उसे रोके, कही भी दु:ख हो तो वह उसे मिटाये इस आदर्श के लिये जीवन अर्पण करने की उसने एक विस्तृत योजना गढ़ ली थी। अपने को वैद्यक शास्त्र का अभ्यासी समझ कर घर बैठे मरीजो को रोज मुफ्त दवा देता; हफ्ते में एक बार गरीबों को कपड़ा देता और

परिचितो में किसी को भी विपत्ति मे पड़ा देखता कि तुरन्त उसकी सहायता के लिये दौड़ पडता।

वह ऊँचा और विशालकाय था। उसमे पहलवान का-सा वल था, उसका वडा सिर, छोटी सी नाक और बड़ी-वडी आँखो मे ईरान के वास्तविक वीरो का सौन्दर्य था।

वह गुजराती और अंग्रेजी खूब बोल लेता था। प्रत्येक विषय पर अपना अभिप्राय निर्विवाद है ऐसा वह मानता और दूसरो को भी मनवाने का प्रयत्न करता था। जब वह अग्रेजी सत्ता के विरुद्ध वोलता तो उसे प्रतीत होता कि अब इस सत्ता की अवश्य धज्जियाँ उड़ जायेगी।

जब वह भारतवासियो की निर्बलता का विवेचन करता तो ऐसा डर लगने लगता कि कल सारे भारतवासी मर जायँगे और हिन्दुस्तान उजाड़ हो जाएगा।

पाठक, सुदर्शन और मगन पंड्या उसके परम मित्र थे। प्रतिदिन वह वोर्डिंग मे आता और घटो तक दुनिया के सब प्रश्नो को सुलझाने वैठ जाता। इस छोटे से समूह का केरशास्प नायक था।

मगन पंड्या कालेज का विद्यार्थी था और विद्यार्थी आश्रम में ही जीवन पूरा करने की इच्छा हो, इस प्रकार उसे परीक्षा मे पास होना नही अच्छा लगता था। आठ वर्ष परिश्रम के बाद बी० एस-सी० के अंतिम वर्ष तक आ लगा था। और इस चिरायु परिश्रम के कारण सर्वसम्मति से उसे पंड्या काका का उपनाम दिया गया था। प्रोफेसरो की तरह ही वह भी विद्यार्थियो का प्रेमपात्र था।

पंड्या काका पढने की अपेक्षा खेलने पर विशेष ध्यान देता था और खेलने की अपेक्षा खाने पर और अधिक देता था। एक दो परीक्षा उसने सुदर्शन की मदद से पास की थी, पर क्रिकेट, टेनिस, सोशल

गैदरिंग, रीडिंगरूम इत्यादि का मन्त्रित्व उसे अपनी योग्यता से प्रति-वर्ष मिल ही जाता था और जब भी छात्रगृह मे दावत होती तब दूसरे लड़के स्वय क्या खायेंगे, उस पर ध्यान न देकर पंड्या काका क्या क्या बहादुरी दिखायेंगे उस विचार मे उलझ जाते थे। एक टंक में छप्पन रोटी या चौरासी पूरियाँ खाने वाले पंड्या की ख्याति सुन कर बडौदा के वैसे ही दूसरे कालेज के विद्यार्थियो के हृदय भी ईर्ष्या से आकुल हो उठते थे। और "पंड्या के पेट मे पच्चासी पूरियाँ" की प्रचलित कहावत के बारे में इस महारथी की अमर कीर्ति का गान करते हुए अपनी निर्बलता स्वीकार करते थे।

पाठक, सुदर्शन और केरशास्प की मित्रता के लिये सरल और स्नेहशील पंड्या ने राजकीय आदर्श स्वीकार कर लिये थे। अंग्रेजो को समुद्रपार भगा देना उसे लगभग इतना ही सरल लगता था जितना 'ओवर बाउडरी' मारना। केरशास्प का प्रभाव, पाठक की उस्तादी और सुदर्शन की बुद्धि—इन तीन वस्तुओ की मदद से तो 'ओवर बाउंड' मारने जितनी भी मेहनत नही पड़े, ऐसा उसे कितनी ही बार लगा था। वह स्वयं महत्वाकाक्षी नही था, पर उसके तीन मित्र उसे जो भी काम कहते वही करने को तैयार रहता था।

केरशास्प, पाठक और पंड्या तीनो सुदर्शन को आशास्पद तथा प्रिय छोटा भाई समझते थे।

"सदुभाई, कहाँ थे ?" पाठक ने पूछा।

"स्टेशन पर, बापूजी को बिदा कर आया।"

"चलो देर हो रही है, आधी रात होने वाली है।" पैर पर हाथ मार कर केरशास्प खड़ा हो गया।

"चलो, मैं पानी पी लूं।" सुदर्शन ने पानी के घड़े की तरफ जाते हुए कहा।

"थैंक्यू-थैंक्यू-थैंक्यू—" तीनों आदमियों ने कहा। इस "थैंक्यू" के जवाब में उसके कहने वाले को, पानी पीने जाने वाले को अपना भरा हुआ प्याला दे ही देना चाहिये। सुदर्शन ने चुपचाप पानी पिया और चारों प्राणी वहाँ से भीमनाथ के तालाव के लिये रवाना हो गये।

---

# संस्कार-जागृति

## १

सुदर्शन की मानसिक स्थिति समझने के लिये लगभग बीस वर्ष पीछे जाना चाहिये।

जब प्रमोदराय के घर सुदर्शन पैदा हुआ, तब पिता और पुत्र दोनों के भाग्य खुल गये ऐसा समझा जाता था। प्रमोदराय के सद्भाग्य का घड़ा अधूरा था, वह पुत्र-प्राप्ति से भर गया, और सुदर्शन को प्रमोदराय जैसे प्रतिष्ठित, उपाधिकारी का पुत्रत्व प्राप्त हुआ।

इस सद्भाग्य से पिता तो फूला न समाया, पर पुत्र को अधिक खुशी हुई हो ऐसा नही लगा। साधारण बच्चे जितना रोते है, वह भी रोया, चिंता उत्पन्न करते हैं वह भी की, दुख देते है वह भी दिया और ससार-यात्रा की पहली मजिल पूरी करने लगा। पिता, माता, बहिन और सगे-संबधियो के भाँति-भाँति के लाड़-प्यार की अधिकता होने के कारण, उसने साधारण बालको के जीवन की प्रणाली किसी भी तरह नही तोड़ी। और फिर भी इन सब लाड़ करने वालो की दृष्टि में इस विरल बालक मे एक दिव्य शक्ति के दर्शन होते थे।

जब वह चार वर्ष का हुआ तब सब को ऐसा लगने लगा कि उसमें

एक प्रकार का विशेष गुण गांभीर्य है, रोने और तूफ़ान मचाने के बदले जहाँ भी कोई बैठा दे वही बैठा रहता था, और चारो ओर आँखें फाड़-फाड़ कर देखने मे ही उसे जीवन की सार्थकता लगती थी। हाई-कोर्ट के जज को शोभा दे, ऐसा गांभीर्य उसके कोमल मुख पर देखकर सगे-सबंधियो को विश्वास हो गया कि यह कोई पुण्यशाली आत्मा स्वर्ग से इस मर्त्यलोक का अवलोकन करने के लिये उतर आई है।

कुछ वर्षों मे वह घुटनिया चलने लगा, कुछ वर्षो मे बिना गिरे-पड़े चलने लगा। कुछ वर्षों मे वह बोलना भी सीख गया। इन सब क्रीड़ाओ के प्रति संबधियो के हृदय मे---या तो स्नेह के कारण या बड़े आदमी का इकलौता बेटा था इसलिए---एक प्रकार की ममता-सी हो गई थी। वह कितना खाता, कितना पीता, कितना सोता इत्यादि छोटी छोटी शारीरिक सूचनाये अस्पताल की नर्स की तरह अत्यधिक साव-धानी से वे इकट्ठा किया करते थे और जिस प्रकार महादेव देसाई महात्मा गांधी की बीमारी के समय उसका विस्तृत ब्योरा देश में फैलाते है उसी विस्तार से जाति मे तथा सगे-सबधियों मे फैलाते थे।

बालक बढने लगा और बहुत छोटी उम्र में ही उसकी बुद्धि की तीक्ष्णता पर विश्वास हो गया। बाप ने उसको भानुशंकर मेहता की गाँव की पाठशाला मे तख्ती पर खड़िया पोतने के लिये बिठा दिया। भानुशंकर मेहता का प्रेम शिष्य पर उमड़ आया और उन्होंने अपने इस आशास्पद शिष्य को घर से साथ लाने और ले जाने का काम भी अपने ही सिर पर लिया। मेहताजी का दूसरा शिष्य इस नये शिष्य को दिये हुए मान को ईर्ष्या से देखता रहा और मन ही मन द्वेष से बडबडाने लगा कि सुदर्शन के घर से एक मुट्ठी के बदले दो मुट्ठी चावल मिले, इस लालसा से मेहताजी यह सम्मान प्रदर्शन करते है। भानुशंकर मेहता ने साठ वर्ष के जीवन मे सारे गाँव के लड़को के हाथ पर जो निष्पक्षता से किमचियाँ मारी

थी और न्यायवृत्ति का प्रमाण दिया था उसे देखते हुए तो यह बड़बड़ाहट एकमात्र द्वेष से ही प्रेरित थी, इसमें कुछ भी सदेह नहीं।

पर बालक ने अपनी हमेशा की तटस्थता से कुछ भी पक्षपात नही दिखाया। मेहताजी की पाठशाला मे जो अक्षर पढता उन्हें भुला कर, घर आने पर पढना सीखने का शौक उसे शिक्षित करने लगा। थोडे ही समय में उसका शौक इतना बढ गया कि प्रमोदराय ने उसको मेहताजी की पाठशाला से उठा लिया और घर पर मास्टर रख कर पढ़ाना आरम्भ किया। इस समय सुदर्शन के मस्तिष्क में उपजी तरंगे, उसे दी हुई आशाओ को और भी सुशोभित करनेवाली थी।

जब प्रमोदराय घर से आफिस जाते तब वह चुपचाप दीवानखाने में पिता की कुर्सी पर आकर बैठ जाता। पलभर मे वह कुर्सी एक प्रकार की सत्ता का स्थान बन जाती। टेबल पर पड़े हुए रेवेन्यु खाते के पत्र-व्यवहार मे राज्यो को उथल-पुथल करने के रहस्य आ बनते। वहाँ पड़ी हुई सात-आठ कुर्सियों पर वृद्ध और चतुर सलाहकार आकर बैठ जाते और उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा करते। जमीन पर पड़े हुए दो गद्दी-तकियो पर अगणित मुनीम अपनी नीद खोकर बहुत ही जरूरी चीजे लिखते हुए दिखाई देते थे, दरवाजे के आगे एक लाइन में गडी हुई लकड़ियाँ चौकीदार की तरह उसके हुक्म की बाट देखती थी। इन सब का आधार उसी पर था, कभी-कभी अवसर इन सब को चमकाने के लिये अपनी कुर्सी पर कूदता और सब भयभीत होकर उसे देखते रहते। तुरन्त ही वह जोर से अपनी मुट्ठी कुर्सी पर ठोकता और फिर सब पहले की तरह कार्य-निमग्न हो जाते।

वह सन्ध्या को 'सिपाही' के साथ सरकारी बाग मे घूमने जाता।

वहाँ जाकर और सिपाही को एक कोने में बैठने के लिये कह कर, बेंत की छोटी सी छड़ी लेकर अकेला एक निर्जन स्थान में जाता, चारो ओर गर्व से देखता। छटी हुई घास मे अगणित पैदल दिखाई देते, फूलो के पेड घोडो की पल्टन हो जाते और उसके स्वागत में चचल घोडो की गर्दन ऊँची-नीची होती और बडे वृक्ष जिन्हे वह साथियो का समूह समझता था उसके सम्मान-प्रदर्शन मे सूंड हिलाते। कठोर और सत्ताशील दृष्टि से वह सब की तरफ देखता। इतने मे दुश्मन के आक्रमण का संदेशा आ पहुँचता, बाये हाथ की उँगलियो के म्यान मे से, दाये हाथ मे वह अपना खड्ग—बेत की छडी निकालता और उसकी सब सेना दुश्मन की फौज को दलने लगती।

वह खड्ग लिये हुये घूमता, चारो तरफ से दुश्मन घेर लेते। वह अपूर्व बहादुरी दिखाता-दूश्मन के व्यूह को चकनाचूर कर डालता। उसे घाव लगते, उनसे खून निकलता। एक कनेर के पेड़ पर लगा हुआ फूल —हाथी पर बैठा हुआ दुश्मन राजा उसकी नजर पड़ता। वह एक छलांग मार कर उसकी तरफ कूदता और तलवार के एक ही झटके मे इस पापी राजा को धराशायी कर डालता। उसकी विजय होती और सध्या की मन्द पवन में नीचे झुके हुए पेड़—हारे हुए दुश्मन—प्रणाम करते। बहुत बार हवा न चले तो हठीले दुश्मन झुकने से इन्कार कर देते। वह थोड़ी देर प्रतीक्षा करता। यदि इतने में पवन चल पड़े तो—कुछ निराधार दुश्मनो को अपने सामने झुकाना ठीक समझता नही तो मरते हुए वैरी को मारना नही चाहिये यह सूत्र याद कर "गर्विष्ठ शत्रु हो न तुम!" यह कह कर वह एक विजयी की तरह उदारता दिखाता।

नदी किनारे खड़े रहना उसे बहुत अच्छा लगता। वह अकेला शांत और दुर्जय खडा रहता। अनेक-एक के बाद एक उठने वाली तरंगो की दूसरी सेना उस पर आक्रमण करती फिर भी वह उसको स्पर्श

नही कर सकते थे। उसकी अद्‌भुत शक्ति उनसे अस्पर्श्य थी। लहरो के निष्फल आक्रमण पर वह तिरस्कार से हँसता।

कभी-कभी दसो दिशा के राजा उसके पास सुलह का संदेशा भेजते और वह दया का परिचय देकर उन्हे स्वीकार करता।

इस प्रकार प्रतिदिन घंटो बीत जाते। इस सत्ता का वह अकेला स्वामी था फिर भी उसके विषय मे कोई कुछ न जानता था, यह जान कर तो उसे बहुत ही आनन्द मिलता था। वह सब की ओर से विशेषकर अपनी उम्र के लडको की ओर से बिल्कुल उदासीन था। वे सब इनमे से कुछ भी न जानते थे।

धीरे-धीरे इस सपूर्ण स्वप्न-सृष्टि का प्राबल्य बढता गया। उस का बाप चपरासी के साथ ही आता, गाँव के लोग उसको भेंट देने आते, वह रोज अनेक पत्रो पर हस्ताक्षर कर इधर-उधर भेजता। उस पर तथा उसके बाप पर ही सारी दुनिया का काम चलता है यह उसके मन में स्पष्ट होता गया।

## २

अहमदाबाद में भी जहाँ प्रमोदराय की नौकरी थी वहाँ सुदर्शन का घर एक छोटे से बाजार के आगे था। अत दोनो जगह से वह खिडकी में बैठ कर कथा-भट्ट की कथा सुन सकता था।

यह ब्राह्मण सुदर्शन की कुछ भी समझ मे न आने वाला व्यक्ति था। उसे क्या पता कि वह एक गरीब देहाती ब्राह्मण है। उसे क्या पता कि वह एक पैसा, मुट्ठी भर चावल या लड्डू के लिये कथा कहता था। दोनो मे से एक को भी यह तो खबर कहाँ से हो कि यह कथा और यह ब्राह्मण गत गुजरात में विनोद और लोक-कथा, पौरा-णिक ज्ञान और राष्ट्रीय एव सास्कारिक विचारो का प्रसार करने और उनका संरक्षण करने के महान् साधन थे और आज उपन्यास,

पौराणिक साहित्य और प्रारम्भिक शिक्षा अपने अतीत के साथ जो सामंजस्य नही साध सकती वह एक पैसा और मुट्ठी भर चावल के लिये एक कथाकार साध सकता था। सुदर्शन तो उसको दैवी मानता था। जिस देव और दानव की वह बात करता था उन सब के साथ उसकी गहरी मित्रता थी यह तो उसे बिल्कुल स्पष्ट लगता था और कभी यह महान् पुरुष मिले तो इसकी कृपा से कितने ही देव, वीर और रावण जैसे दानव के साथ दोस्ती पैदा करने का सुअवसर उसे भी मिले ऐसी उसकी आशा थी।

प्रतिदिन रात को, जब तक पूरी तरह से भट्टजी का लड्डू निश्चित हो तथा अंतिम आरती हो तब तक सुदर्शन कथा सुना करता। सुनते-सुनते भट्टजी की आवाज सृजन-शक्ति के अनंत प्रवाह सी लगती। ध्रुव, प्रह्लाद और परशुराम, और्व, सगर और भगीरथ, विश्वामित्र, राम और रावण, भीष्म, द्रोण और कर्ण; कृष्ण, भीम और अर्जुन—नि:सीम और त्रासदायक महत्ता वाले जीवित महात्मा—निर्जीव पृथ्वी सजीव करने के लिये आ जाते और उनके विजयी पराक्रमो से, उस भट्ट की वाणी से कपायमान-सी सृष्टि वीरो के योग्य बन जाती। यह सृष्टि कथा समाप्त होने पर भी पूरी नही होती थी। रात को जब सब सो जाते, तब ये सब केवल सुदर्शन की ही समझ मे आये इस प्रकार अपने साहसो को सजीव रखते थे और प्रभात में सूर्य का प्रकाश जब सृष्टि का जीवन आरम्भ करता तब भी ये सब पराक्रम—सुदर्शन ही देखे और सुने इस प्रकार—अपना अस्तित्व बनाये रहते थे।

कभी-कभी तो ये अपने समय, स्थल तथा ऐतिहासिक पृष्टभूमि छोड कर एक साथ इकट्ठे आ जाते और सुदर्शन को अपने प्रेम और विश्वास का पात्र बना कर उसके आगे अपने हृदय खोल देते थे। ध्रुव तो इसका मित्र था, प्रह्लाद तप्त अग्नि-स्तंभ से भेट करने

के पहले सुदर्शन से प्रेरणा माँगता था। परशुराम सहस्रार्जुन को विनाश करने से पहले उसके साथ मंत्रणा करता था। स्रष्टा की समता करने वाले विश्वामित्र उनके प्रति अधिक ममता का परिचय देते और नवनिर्मित सृष्टि की योजना बनाने का रहस्य अधिकतर कह दिया करते थे। वैर की आग में जलता हुआ ग्रौर्व अपने क्रूर एवं कठोर आवेश से विनाश की सृष्टि करता पर उसमें कुछ पहले पूछ जाता। युगों तक वह भीष्म के साथ विचरण करता और पिता की आकांक्षा के लिये भीषण प्रतिज्ञा से जीवन को भावनामय बनाने वाले पितामह तो उसे अपने परम मित्र से लगते। कृष्ण कालयवन से भागते समय, भीम दुर्योधन को कुचल डालते समय, बिना उसकी सलाह लिये न रहते थे।

बड़े-बड़े पराक्रम होते, बड़ी-बड़ी समस्याएँ सुलझाई जाती, बड़े-बड़े राष्ट्रों का स्थापन और विनाश होता। जीवन व्यर्थ हो जाता, एकमात्र महान् उद्देश और भगीरथ भावनाएँ विश्व में विचरण करती और इन सब के सहभोगी सुदर्शन के दिन और रात जल्दी-जल्दी बीतते जाते।

उसे यही लगा करता कि वह बहुत बड़ा विकराल और क्रोधी है, आर्यावर्त की महत्ता और कीर्ति उसके हाथ में सौंपी गई थी, और संपूर्ण सृष्टि उसके सामने संरक्षण की याचना करती उसके द्वार पर खड़ी रहती थी। जब उसे शीशे में एक छोटा-सा सुकुमार बालक दिखाई देता तो वह सहम जाता, पर कृष्ण की तरह लोगों को रिझाने के लिये उसने ऐसा छोटा-सा स्वरूप लिया है और वह यदि चाहे तो बहुत प्रचंड भी हो सकता है ऐसा उसे विश्वास होता और शांति मिलती और नहीं तो उसके परम मित्र ध्रुव उसे हिम्मत दिलाते कि शैशव के पराक्रम भी जवानी के से ही ज्वलंत और फलदायी होते हैं।

आठ वर्ष का होने पर उसका यज्ञोपवीत हुआ। प्रमोदराय ने इस अवसर पर हाथ खोल दिया। घर पुतवाया, झाड़-फानूस जलायें गये, बाजे बजे, गीत गवाये और वेश्या का नाच भी हुआ। प्रमोदराय ने ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा सुरक्षित रखने के लिए समारभ रचा। उनकी स्त्री गगा भाभी ने आनन्द महोत्सव मनाया। लोगो ने वाह-वाह की और सुदर्शन के समवयस्को ने, विवाह की प्रस्तावना-स्वरूप इस प्रसग का सुअवसर पाकर उसे अभिनन्दन दिया।

पर सुदर्शन की स्वप्न-सृष्टि में इस प्रसग से एक खलबली मच गई। यज्ञोपवीत पहनने से वह ब्राह्मण हो जायगा। गौतम, अत्रि, वशिष्ठ इत्यादि उसे अपनी पक्ति मे बिठायेगे। आज से वह केवल बहादुर ही नही पर ऋषि हो जायेगा, और गायत्री पढनी पडेगी, ब्रह्मचर्य पालन करना पड़ेगा, तीन बार संध्या करनी पडेगी और ब्राह्मणत्व का प्रताप जैसा था वैसा ही दुर्जय रखना पडेगा।

यज्ञोपवीत पहनने की क्रिया के अवसर पर उसका हृदय धड़क रहा था। वेदी मे से निकलते हुए धुएँ के समूह से उसकी आँखो में आँसू भर आये थे और कुछ-कुछ ऐसा लग रहा था जैसे वह एक सूक्ष्म अपार्थिव और अनिश्चित वातावरण मे विचरण कर रहा हो।

अंतरिक्ष में ऋषी और महारथी अस्पष्ट वातावरण मे किसी से पहचाने न जा सके इस प्रकार आ पहुँचे। प्रतापी नयन, फर-फराती दाढियाँ और तेजस्वी मुख चारो तरफ आ जटे। गदा और धनुप, परशु और त्रिशूल का समूह, भव्यता और भयानकता प्रसरित हो उठी। प्रचंड और भव्य आर्य उसे आदर से निमंत्रित कर रहे थे... उसने जनेऊ पहना......और वह इन सब में मिल गया। वह छोटा-सा बालक न था, बीसवी सदी का प्राणी न था, बल्कि कृतयुग का कर्मवीर हो गया था। सतयुग के देव सदृश नरपुगवो ने उसे अपने साथी की तरह मान लिया था।

वेदी के गाढ धूमिल वातावरण में उसने एक वृद्ध का—परिचित पर स्पष्ट न दिखाई देने वाला—मुख देखा। उसकी रेखाएँ तेजस्वी थी, उसका तेज अपार था। सुदर्शन भयभीत हो कांप उठा। उसे पल भर के लिये कुछ भी समझ में नहीं आया.....

धुएँ के दूसरी ओर से आवाज आई: 'कौशिकगोत्रोत्पन्नोऽहम्' वह भी बोला, 'कौशिकगोत्रोत्पन्नोऽहम्' और उसे ज्ञान हुआ कि वह कौशिक जैसे प्रतापी गोत्र का है।

उसका हृदय एकदम उछल पड़ा, उसे पहचान हुई। वह परिचित मुख—वह आभासित तेजस्विता—वह अवर्णनीय भव्यता—आर्यों का श्रेष्ठ वीर और द्रष्टा, स्रष्टा के प्रतिस्पर्धी जैसे गाधीराज का महाप्रतापी पुत्र और अपने आद्य पितामह कौशिक का......

और चारो ओर उछलते हुए अनन्त और अपार धूमिल सागर के उस पार से ध्वनि गूँज उठी :

विश्वामित्र ऋषिः। सविता देवता। गायत्री छंद.॥ ॐ भूर्भुवः स्वः। ॐ तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धीयो यो न प्रचोदयात् ॐ॥ और यह गूँजती हुई ध्वनि धीरे धीरे चारो ओर फैल गई।

ये उसके पूर्वजो के उच्चारित किये हुए सनातन शब्द! युगों की परंपरा को पार कर उसके पूज्य पिता उससे भेंट करने के लिए आ रहे थे। उसकी धमनियो में राजर्षि भगवान् कौशिक का उत्साह-प्रेरक रक्त लहरें मारने लगा। समय और स्थान का लोप हो गया। वैदिक काल के विप्र-श्रेष्ठ के साथ उसने तादात्म्य स्थापित किया। काल के दो छोरो पर खडे हुए पिता-पुत्र की एकता प्रतिष्ठित हुई। ज्ञान के भार से दब कर सुदर्शन ने आँखें मीच ली।......

प्रमोदराय ने उसे सिर पकड़कर हिलाया। उसने आँखे खोली। स्नेहीजन आनन्द से उसे देख रहे थे। उसका पुरोहित अपने घर ले जाने के लिये धोती में चावल और सुपारियाँ समेट रहा था।

सुदर्शन ब्रह्मचारी बना। उसका माथा मुँडाया गया था। छोटी लँगोटी पहन कर वह घूम रहा था और सब हँस-हँसकर उसे "भैंसचारी" कहते थे, उससे वह बहुत चिढता था। उसे इस शब्द मे अपमान का अनुभव होता पर वह चुपचाप अपना काम किये जाता था। केवल वही जानता था कि स्वय पितामह जैसा है और उसमें उसके पितामह की तरह ही सब का उद्धार करने की शक्ति है। इस ज्ञान के गर्व मे वह सब की ओर तिरस्कार से देखता।

लेकिन दिन-रात अपनी नवीन पदवी के उत्तरदायित्व से वह दबा रहता। कभी तो क्या-क्या करना है इसी विचार मे उसकी नींद जाती रहती थी। वह जानता था कि उसे वशिष्ठ के साथ लड़ना पड़ेगा, हरिश्चन्द्र को दु:ख देना पड़ेगा, और आवश्यकता पडने पर नवीन स्वर्ग का भी निर्माण करना पड़ेगा। उसे लगता कि जो छोटा सा डंडा उसके पास है उसमें परशुराम के फरसे की तरह पृथ्वी को क्षत्रियो से रहित करने की शक्ति है। आवश्यकता पड़ने पर वह भी उसे करना पडेगा। जब बडी बहिन के यहाँ वह भिक्षा लेने जाता तो जैसे दिग्विजय करने जा रहा हो ऐसा लगता। भवति भिक्षां देहि—वह आज्ञा के स्वर मे बोलता।

उसके दंड मे अद्भुत प्रभाव था। यह बिल्कुल फरसे जैसा लगता। कभी-कभी अधिकतर इस पर बँधा हुआ लाल टुकड़ा फौलाद की तरह चमक उठता। कभी ऐसा दिखाई देता कि वह किसी दैत्य के खून से रँगा हुआ हो। यह प्रभावशाली शस्त्र उसके पास है यह देख कर इंद्र भी भयभीत हो जाये—घबरा कर, संभव है शेषशायी भगवान् के पास भी जाय। इंद्र को अभयदान देने के लिये किसी योद्धा को उसके पास से यह शस्त्र छीनने के लिये भी वे भेजे। तो फिर? वह स्वयं अकेला क्या करेगा? किसी देवता की मदद तो चाहिये। उसके पड़ोस में महादेव का मंदिर था और वहाँ उसका पुरोहित

उसे सध्या सिखाने ले जाता था। महादेव—शंकर ! प्रत्येक वीर को शस्त्र तो वे ही देते है, प्रत्येक महारथी की रक्षा वे ही तो करते हैं और साथ ही भोले, कृपालु उग्र और शस्त्र-कुशल भी है। आवश्यकता पड़े तो नंदी पर विराजमान होकर पल भर में ही सहायता के लिये आ सकते हैं। उनकी मदद के विना कुछ भी नही हो सकता यह उसे विश्वास हो गया था। एक दिन रात को वह चुपचाप दंड लेकर महादेव के मन्दिर में गया। उसने दंड महादेव के पास रख दिया और सब बाते कही; विश्वामित्र का परिचय दिया; इद्र के द्वेष का भय कह सुनाया; विष्णु का भय लगता था वह कहा और हाथ जोड कर क्षमा माँगी, उसने पृथ्वी पर सिर टेक दिया। वह रोया। थोड़ी देर में शंकर प्रसन्न होने लगे। उसको अभय वचन दिया। वह शीघ्र ही खड़ा हो गया और देवो पर साभिमान दृष्टिपात किया। उसे आज से देवाधिदेव शंकर की सहायता मिल गई थी।

उसी रात को एक वडा प्रश्न उठा। यह दड तो है पर इसका उपयोग क्या ? ससार लड़ना भूल गया हो ऐसा लगा। एकमात्र उसके पिता की मोर्चा लगी हुई नगी तलवार शोभा के लिये दीवाल पर टंढी रखी हुई थी। और जिले के दौरे मे जाते तव एक पिस्तौल साथ में रखते थे। इन वस्तुओ का उपयोग तो कभी होता नही। अव क्या होगा ? शस्त्र का क्या उपयोग हो ? देवता दानवो को मारने के लिये शस्त्र रखते थे, परशुराम क्षत्रियो को मारने के लिये फरसा काम मे लाते थे; सगर ने विदेशियो को निकाल वाहर करने के लिये जमदग्नेयास्त्र और्व के पास से लिया था। जव यज्ञो का भंग हो, गौ-ब्राह्मण की हत्या हो, दुखी अवनी "पाहि-माम्" की पुकार करती हुई शरण मे आये तव ऐसे शस्त्र का उपयोग हो, और अव तो यज्ञ भी निर्विघ्न होते थे, ब्राह्मण भी सुख से निश्चिंत फिरते थे, गाय गली-गली मे

मती थी और पृथ्वी को सरक्षण की आवश्यकता हो ऐसा भी दखाई न देता था, परशुराम के समय मे क्षत्रियो ने पृथ्वी पर अत्याचार किया था, सगर के समय मे शक और पह्लव ने अत्याचार किया था पर अब तो मुसलमान भी उसके बाप से मिलने आते थे, साथ बैठते और फलो की डाली भेजते थे; अंग्रेज उसके बाप के साथ अच्छे सबध रखते थे और फलो की डाली—क्रिसमस के समय पर केक—स्वीकार करते थे। अँधेरी रात मे अकेले पडे हुए उसने दाँत पीसे। वह पैदा हुआ तो पृथ्वी को दुखी होने की भी फुरसत या सौजन्य न था, यह उसे बहुत बुरा लगा। उसे लगा कि यह उसके साथ अत्यन्त अन्याय हो रहा है।

दूसरा क्या उपाय? अवनी पर अत्याचार करने वाला कोई। न हो तो भी उसके सरक्षण के लिये तैयार रहने की आवश्यकता उसे प्रतीत हुई। कल कोई असुर पैदा हो जाय तो? उसने सोचा कि उस जैसे ब्राह्मणो को सब कुछ सीख कर तैयार रहना चाहिये ताकि समय आने पर कठिनता का सामना न करना पड़े। तब फिर ब्रह्मचारी वेष मे हाथ मे, शस्त्र ले कर, पैर में खडाऊँ पहन कर, पृथ्वी की और यज्ञ की रक्षा करते हुए और धर्म की विजय-ध्वजा ले कर फहराते हुए ब्राह्मणो के जत्थे के जत्थे की वह खोज करने लगा। यह सब तो थे, पर वे क्यो दिखाई नही देते। वे भी सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे होगे, यह बात उसको निस्सदेह सत्य लगी।

सातवे दिन उसे गृहस्थ बनाकर उसकी घुड़चढ़ी करना था। प्रमोदराय ने वरघोडा निकालने की तैयारी आरंभ की पर ब्रह्मचर्य त्याग करना सुदर्शन को अच्छा नही लगा। जीवन भर नही तो कम से कम चार साल तो ब्रह्मचारी रहने की उसे उत्कट इच्छा थी। उसने यह बात प्रमोदराय के सामने ही छेड़ी पर उन्होने हँसी मे टाल दी। उसे यह बात बहुत विचित्र लगी कि इतनी बुद्धि वाले आदमी भी

इतनी सी बात नही समझते, पर बाप की धाक से वह कुछ बोला नही। रात को असन्तुष्ट हृदय लेकर सो गया। सोने के बाद उसे याद आया कि वह तो विश्वामित्र का लड़का है। भला कही विवाह के बिना लडके होते है।

उसने एकदम उठ कर पूछा, 'बा—बा!' गंगा "भाभी घबराकर उठ बैठी, क्यो भाई ?"

"विश्वामित्र का कोई लड़का था न ?"

माँ ने झुंझलाकर जवाब दिया "हाँ।"

"तब वह ब्रह्मचारी नही थे ?"

"नही।" कह कर माँ ने पीठ फेरकर ऊँघना शुरू किया। सुदर्शन को चैन पड़ी।

वह गृहस्थ हो गया और जनोई के समय की चहल-पहल समाप्त हो गई। पर उसकी धुन ज्यो की त्यो थी। वह शिव-कवच का जाप कर महादेव की आराधना करता था, तीन बार सध्या करता और ब्राह्मणत्व की रक्षा करता; विश्वामित्र, परशुराम, भीष्म, सगर इत्यादि के साथ मैत्री चलती रहती; प्रतिदिन इतनी कठिनाइयाँ और प्रश्न आ उपस्थित होते कि उनका निराकरण करना असभव हो जाता। पर दिन-प्रति-दिन एक ब्राह्मण-सेना तैयार करने की योजना स्पष्ट और सुग्रथित होती गई।

२

सुदर्शन दिन-प्रति-दिन विद्वान् होने लगा। अपनी उम्र के साथ-साथ वह अध्ययन में भी आगे बढ़ा और साल भर में ही गुजराती की चार पुस्तकें समाप्त कर पाँचवी पुस्तक के साथ स्कूल मे भर्ती हुआ। उसके स्वप्न उम्र के साथ-साथ बढते गये।

एक दिन प्रमोदराय उसे नाटक दिखाने ले गये। नाटक श्री बीकानेर आर्यहित-वर्धक नाटक मडली का "शूरवीर शिवाजी"

था। वह आँखे और मुँह फाड़कर उसे देखता रहा। भवानी माता का वरदान, शिवाजी का शौर्य और चालाकी, मुसलमानो के जुल्म, शिवाजी का स्वदेश को स्वतंत्र करने का सकल्प, उनका दिल्ली का ग्रार का प्रयाण; और उनका राज्याभिषेक—यह सब प्रसंग उसके छोटे-से मस्तिष्क को पागल बनाने लगे। 'नाना त्र्यंबक' की आवेशपूर्ण कला शिवाजी को सदैव सजीव करती और उस कला से उत्तेजित हुई कोमल बालक की कल्पना-शक्ति ने नवीन दृश्य और नये दृष्टिकोण उपस्थित कर दिये। यह खेल था, यह भी उसे याद नही रहा। त्र्यबक एकमात्र काल्पनिक शिवाजी की छवि साकार करने का प्रयत्न करता तो इसका भी उसे भान नहीं था। वह गुजराती बोलता हुआ पुरुष उसके लिये साक्षात् शिवाजी था। आज तक तो वह अकेला ही एकान्त कल्पना किया करता था किन्तु आज वही प्रभावशाली पुरुष उसके मुंह के सामने बोल रहा था। नाटक समाप्त हो गया; पर वह फिर भी स्तब्ध होकर देखता रहा। घर आया तो भी शिवाजी की आवाज़ वह सुना करता। दिन-रात उसने मराठी सेना इकट्ठा की। दिल्लीश्वर को धमकी दी और हिन्दू सत्ता की विजय-घोषणा चारो दिशाओ में फैला दी।

शिवाजी के विषय मे उसने अपने मास्टर से पूछा, तो उसने बतलाया कि बहुत वर्ष हुए शिवाजी महाराज स्वर्गवासी हो गये और दिल्ली के बादशाह भी मर खपे! यह सुनकर उसकी निराशा का पार नही रहा।

"पर शिवाजी का राय कहाँ गया?"

"अंगरेजो ने ले लिया।"

---

* स्वर्गीय त्र्यबकलाल रामचन्द्र—शिवाजी, चंद्रभाट, वीरेन्द्र और अत मे नरसिंह मेहता के नाटको का सुविख्यात अभिनेता।

"और बादशाह का ?"

"वह भी अंग्रेजों ने ले लिया।"

"तब अगरेजो का राज्य कोई क्यो नही ले लेता ?"

"क्योकि सरकार का राज्य न्यायी है।" डिप्टी कलक्टर के लड़के को मास्टर ने बताया, "देखा, कवि दलपतराम की कविता पढाता हूँ।" मास्टर ने किताब खोल कर कविता पढ़ाई, सुदर्शन को फॉर्बस-प्रेमी कवि की प्रसादी बहुत अच्छी लगी।

झेर गयाँ ने वेर गया,
वली काला केर गया करनार;
अे उपकार गणी ईश्वर नो,
हरख हवे तू हिन्दुस्तान।*

दिन भर वह इसे ही कहता रहा।

पर मुसलमान अन्यायी है और हिन्दुओ पर जुल्म ढाते है यह विचार उसके मस्तिष्क से दूर नही हुआ और थोडी देर के लिये तो परशुराम और राजा सगर के-से क्रोध से मुसलमानों को देखने लगा। क्या मुसलमान हिन्दुस्तान के दुश्मन है ? क्या उनका विनाश करना पडेगा ? क्या इस्लाम के अनुयायी विदेशी है ?

महीनो तक उसे चैन नही पड़ी। मुसलमान क्या हिंदू हो जायेंगे ? क्या ब्राह्मण सेना उन्हे मार भगा देगी ? क्या वे शिवाजी की तरह उसे भी बाँध कर किसी इस्लामी सत्ताधीश के पास ले जायेंगे ? अंत मे विजय किसकी होगी ? प्रतिदिन रात को सपनो में त्रिपुडधारी ब्राह्मण और लंबी दाढीवाले मुसलमान ही लड़ा

---

*वैर, ईर्ष्या तथा द्वेष का विनाश हो गया, और भारत पर जुल्म ढाने वाले भी मिट गये इसे उस ईश्वर का उपकार समझ कर हे भारत ! अब तू हर्ष मना।

करते। वह एकदम जाग उठता और चिंतित हो विश्वामित्र इत्यादि प्राचीन मित्रो से मदद के लिये प्रार्थना करता। दिन मे वह रास्ते में जाते हुए मुसलमानो को देखा करता, शाम को मुसलमानी मुहल्ले में घूमने जाता। नाटक द्वारा पड़े सस्कारो के कारण मुसलमान शत्रु जान पड़ते लेकिन फिर भी उनका द्वेष दिखाई न देता।

अंग्रेजी शिक्षा और राजनीति, 'पेन इस्लाम' और खिलाफत ने विरोध का बीज बोया, इससे पहले गुजरात मे यह भी पता न था कि हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग है, या एक दूसरे के दुश्मन हैं। और गुजरात में पैदा होने के कारण उसे यह द्वेष दिखाई नही दिया यह भी स्वाभाविक ही था। द्वेष के चिह्न देखने का उसने प्रयत्न किया।

उसके घर दो मुसलमान चपरासी थे। वे रसोई में न आ सकते थे, दाढी रखते, पाजामा पहनते और 'ओ राम' के वदले 'या अल्लाह!' कहते इसके अतिरिक्त उनमे तथा हिन्दू नौकरों में कोई फर्क न था। वे उसको खेलने और घूमने-फिरने ले जाते, दूसरे नौकरो की तरह वे भी बोलते और उसको कहानियाँ सुनाते। कहानियो मे एक मुसलमान सिपाही सदा ही 'इस्तंबूल में एक राजा था' यह कहा करता और दूसरा 'एक राजा था' इस तरह शुरू करता। दोनो वड़े मेहनती, सादे, खुशमिजाज तथा नमक-हलाल थे।

उसके वडे मियाँ काका भी मुसलमान थे। तीन पीढियो से चले आये सम्वन्धी थे। वह उसके वाप के वड़े भाई साहब के दोस्त थे और उनके मर जाने पर प्रमोदराय से अपना सम्वन्ध बना लिया था। वह वूढे, ऊँचे और दुवले-पतले थे, लाल दाढी रखते और सफेद गोल पगड़ी तथा लंवा धुला हुआ अँगरखा पहनते। वे दूसरे तीसरे दिन उसके यहाँ आते और वड़ी ममता भरे स्वर में कहते 'क्यो वे

लड़के ?' और उसे उठा कर प्यार करते। प्रमोदराय न हों तब भी वह आकर घर के सब लोगो को खबर ले जाते थे।

उनके बोलने-बुलाने और सलाम करने के ढंग में एक प्रकार की भव्यता और खूबसूरती थी। सुदर्शन ने ऐसी विशेषता किसी में भी नही देखी थी।

वार-त्योहार को बड़े मियाँ जीमने आते और सब से दूर बैठ कटोरा दोनो हाथो से पकड़ कर दाल या खीर पीते, और लाल दाढी को दाल या खीर में सन जाते देखकर सुदर्शन को बहुत मजा आता था। कभी बड़े मियाँ उसे और उसके बाप को जीमने बुलाते और अपने बाडे मे ब्राह्मण रसोइयो को बुला कर उनके लिये भोजन बनवाते और बाप-बेटे दोनो सोला* पहन कर उनके यहाँ जीमते।

बड़े मियाँ अकेले सुदर्शन को तो अक्सर अपने घर ले जाते थे। कभी-कभी एक मोटी पुरानी मखमल की जिल्द चढी हुई किताब सामने रख कर कुछ समझ में न आने वाली भाषा पढ़ते और फिर इस किताब के अक्षरो में जो सोने के चित्र थे उन्हे दिखाते। ये चित्र इतने सुन्दर थे कि वह किताब सुदर्शन को बहुत ही भा गई थी।

बड़े मियाँ उसे घर ले जा कर एक गद्दी पर बिठाते और हुक्का सुलगा कर गुडगुड़ाते रहते। सुदर्शन के मन में बड़े मियाँ अर्थात् लाल दाढी, सोने-चाँदी से विभूषित हुक्का, मखमल की गद्दी शांति देने वाली हुक्के की गुड़गुडाहट और वृद्ध मुख पर फैली हुई आनंद, मौज और सुखपूर्ण मद हास्य की रेखाएँ। आधी खुली हुई आँखो में से वे उसे देखा करते और कभी 'थू' करके जरा उठकर सुननेवाला चौक जाय

*रेशमी वस्त्र, जिसे पहन कर गुजराती ब्राह्मण भोजन करते है।

ऐसी आवाज मे कहते—'क्यो बे लडके !' सुदर्शन चौक कर ऊपर देखता । सुदर्शन का यह चौंकना देखकर बडे मियाँ खिलखिला कर हँस पडते और सुदर्शन भी धीरे से हँसने लगता ।

बडे मियाँ की लाल दाढी पहले उसकी कुछ समझ मे नही आती थी । उसने ऐसी दाढी किसी की देखी नही थी । पहले वह यह समझता था कि हुक्का पीने से वह लाल हो गई है । पर एक बार बडे मियाँ बीमार पड़ गये तो वह सफेद हो गई । सुदर्शन के विस्मय का पार न रहा । उसने धीमे से पूछा, "बडे मियाँ काका, तुम्हारी दाढी तो सफेद होने लगी ।" अपने स्वभाव के अनुसार काका हँसे, "देख तो सही लड़के ! कल ठीक हो जाऊँगा तो फिर लाल हो जायगी ।" उन्होने कहा । और हुआ भी वैसा ही । वह अच्छे हुए और दाढी जैसी थी वैसी ही लाल हो गई । सुदर्शन को यह बात बडी अद्‌भुत लगी और उसके बाद कभी-कभी उसके स्वप्न-मित्र ऋषिगण भी लाल दाढी के साथ आने लगे ।

बड़े मियाँ हमेशा पहले दो शब्द मुसलमानी बोलते थे और फिर सब सुदर्शन की तरह गुजराती । वह पहले सिपाही थे और नवाबी कुटुम्ब के जमाई । वह हमेशा बचपन मे किये हुए पराक्रमो की बाते किया करते और सुदर्शन उन्हे सुन कर विस्मय मे पड़ जाता ।

बड़े मियाँ की बीवी हमेशा घर के कोने मे ही पड़ी रहती । बडे मियाँ ने एक दिन उसके कान में कहा था कि बीबी काकी के दादा का बाप गाँव का राजा था । सुदर्शन को जब बीबी चाची बुलाती तो उसका हृदय गर्व से फूल उठता । नीली सलवार और लाल ओढनी, नाक में मोटी नथ, पैरो मे मखमल की जूतियाँ, सदा ही हँसता हुआ तथा पान चबाता हुआ विशाल । मुख—उस पर स्थानीय मुसलमान राज्यलक्ष्मी के अवशेष की छाप कुछ अनाकर्षक नही थी । जब वह उसे मिलता तो ऐसा लाड़ करती कि सुदर्शन का दम घुटने लगता, अत: सुदर्शन को

बुरा लगता था, पर राजा की लडकी के स्नेह का अनादर ठीक नहीं यह जान कर वह सब कुछ सहता और अक्सर वह अपने नवाब चाचा को शान-बान की कहानियाँ सुनाया करतो तो उसे बड़ा आनन्द मिलता। बकरा ईद के दिन सुदर्शन को बुला कर एक रेशमी रूमाल मे दो रुपये बाँध कर दे देती।

सुदर्शन की मुसलमानी दुनिया में एक दूसरा महत्वपूर्ण व्यक्ति हकीम अब्दुल हुसैन था। वह एक तवेले जैसे घर मे रहता और दिन भर दवाएँ घोटता रहता। अमादरार के पास वह अक्सर आया करता और ज़रा भी किसी को कुछ होता कि अपनी पुड़िया देता। घर के सभी लोगो को उसकी पुडियो में बहुत ही विश्वास था।

वह छोटे कद का, मोटा, बहुत गोरा तथा बड़ा ही मौजीला आदमी था। वह आँख में काजल डालता और सिर पर होली के जोकरो जैसी मलमल की टोपी पहनता था। सुदर्शन को वह अक्सर अपने घर ले जाता और 'हातिमताई' के पराक्रमो की कहानियाँ कहता। वह उसे 'कादर साहब' में भी ले जाता और वहाँ गड़े हुए पीर की बातें सुनाता।

'कादर साहव' में उसको पीर साहब मिलते। पीर साहब बहुत ही बूढे और नीली पगड़ी पहनते थे। उनकी दाढी बहुत ही लंबी थी। चाहे जो बात करते हो, फिर भी काच के दानो की माला जरूर फेरते रहते थे। वह हमेशा सुदर्शन को प्रेम से बुलाते और सिर पर हाथ फेरते हुए पूछते, 'कादर साहव को सलाम किया?' सुदर्शन को इस बूढे तथा कबर मे सोये हुए उसके पूर्वजो के प्रति बहुत ही सम्मान हो गया था और वह हमेशा कादर साहव को तीन सलाम करता था। पीर साहव जाते वक्त हमेशा हकीम से कहते, 'हकीम साहव! इस लडके के लिये कादर साहव का तावीज ले जाना।'

मुसलमान किसान, दूकानदार तथा मिलने आनेवाले ही सुदर्शन

की मुसलमानी सृष्टि के प्राणी थे। उसे ये सब अच्छे लगते। उसके आस-पास जो सुख और आनंद का वातावरण था वह भी अच्छा लगता था। ये सब उससे किस तरह अलग थे? ये सब इकट्ठे होकर क्या दूसरो को दु:ख देते है? ये खानदानी मुसलमान दोस्त मौजी और स्नेहशील क्या अतर मे द्वेष रखते है? क्या बीबी चाची का बाप नवाब चाचा जीवित होता तो सुदर्शन को मरवा डालता? शिवाजी इन सब को मारने के लिये क्यो तत्पर हुए? उसकी समझ में नही आया।

इन विचारो के वातचक्र मे बालक सुदर्शन को कुछ नही सूझा। उसके ऋषि मित्र, उसकी ब्राह्मण सेना, शिवाजी, बीबी चाची के नवाब चाचा तथा दूसरे का दुख दूर करने वाले हातिमताई ये सब उसे प्रिय थे। और उसकी स्वप्न-सृष्टि मे पचरंगा ताना-वाना बुनने लगे थे।

५

थोड़े दिन बाद ही सुदर्शन अंग्रेजी स्कूल मे भर्ती हुआ और अपनी होशियारी से और बाप की देख-भाल से थोडे ही समय मे वह आगे बढने लगा। प्रमोदराय के मन मे बेटे को कलेक्टर बनाने की आकाक्षा थी और अठारह वर्ष की उम्र में वह बी० ए० पास कर ले इस उद्देश्य से छोटे दर्जों से जल्दी-जल्दी पास करा देने की योजना उन्होने बनायी थी। चुपचाप पढ़ते हुए तथा स्वप्नों को पलको में बसाते हुए सुदर्शन अग्रेजी की पाँचवी कक्षा में आ गया। शांत और सीधे लड़के के जीवन मे कुछ विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

पाँचवी कक्षा में उसने औरंगजेब तक भारतवर्ष का इतिहास

तथा एलिजाबेथ तक अंग्रेजी इतिहास पढा। दोनों विषयो से उसकी स्वप्न-सृष्टि की सीमा बढ गई।

और जो 'भारतवर्ष का इतिहास' पढाया जाता था वह अधकचरा, निर्जीव, उत्साह रहित एक पादरी का लिखा हुआ था। फिर भी सुदर्शन को उसमें आनंद आया और साथ ही हंटर द्वारा प्रणीत इतिहास का गुजराती अनुवाद भी उसने पढ़ लिया। उसने उसे बार-बार पढा और एक महीने के लिये उसने अपना जीवन उसी में लगा दिया।

सुदर्शन को गौतम बुद्ध से शाति नही मिली। तस्वीर में और चारित्र्य मे वह बहुत पूज्य लगते थे, पर उनकी अपूर्वता और निर्विकारता सुदर्शन को हिमवान गौरीशकर की तरह शात और अस्पर्श्य बना डालती थी। उनके साथ किसी प्रकार का भी मानवी संबध स्थापित करना कुछ असभव-सा लगा। प्राय वह दिग्विजय का, क्षत्रियों से रहित पृथ्वी का, ब्राह्मण-सेना का, या शिवाजी का विचार करता तब वे भी एकदम आ पहुँचते। बुद्ध का अडिग आसन भयंकर निश्चलता के जोर से उसके उत्साह को दबा देता था। उनकी पत्थर की सी स्थिर निर्जीव आँखे उसके अंतर को निश्चेतन और क्रूर अनुकंपा से विभोर कर देती थी। वह उसे बहुत अधिक नही भाते थे।

उसका परिचय चद्रगुप्त के मत्री के साथ तुरन्त हो गया। थोड़ी-सी दूसरी पुस्तको में भी वह परिचय और गाढा हो जाय ऐसे सुयोग मिले थे। परिचय बढते ही वह प्रिय लगने लगा। बस तक्षशिला के ब्राह्मण में भीष्म की दृढता और और्व का-सा आवेश था। उसका तेज भगवान कौशिक जैसा दैवी नही था, पर एक बार आँख में बस जाय ऐसा था। वह नवनद का विनाश करने के लिये सदा ही उत्सुक दिखाई देता और अपनी प्रतिज्ञा में आबद्ध अपने सिर की

शिखा खुली रहने देता। शीघ्र ही वह स्वप्न-मित्र हो गया और हमेशा स्वप्नो में आना और बाते करना आरभ कर दिया। सुदर्शन को कभी-कभी ऐसा लगता था कि इस नये मित्र पर उसका बढता हुआ सद्‌भाव देख कर उसके पुराने मित्रो को जरा ईर्ष्या होने लगी थी। पर एक व्यक्ति बहुत पीछे मित्र हो और उसको पुराने मित्रो से ओछा गिना जाय यह उसकी न्याय-वृत्ति को अच्छा नहीं लगा।

इन नवपरिचितो मे उसे मुहम्मद गजनी पर क्रोध आया। उसकी बडी लबी दाढी थी। उसकी आँखे विकराल थी। कौन जाने क्यो उसका एक दाँत बाहर ही दिखाई देता था। वह लूटने और मंदिरो को तोडने का ही काम करता था। सुदर्शन ने उसे स्वप्नो मे न आने का हुक्म दे दिया पर फिर भी वह आया ही करता और किसी महादेव को नष्ट-भ्रष्ट करने का या किसी धन-कोष को लूटने का प्रयत्न करता दिखाई देता। तुरत सुदर्शन गर्जना करता, उसकी सेना आ पहुँचती और घबराया हुआ गजनी अपने पर्वत-प्रदेश में छिप जाता। उसके और, सुदर्शन के बीच एक दारुण वैर हो गया था, जहाँ भी हो वहाँ इस पापी को पराजित करने की उसने दृढ प्रतिज्ञा कर ली थी।

पृथ्वीराज चौहान उसकी स्वप्न-सृष्टि मे एक महान् तथा असहाय प्राणी था। सुदर्शन जानता था कि अकेला वह बराबर लड़ नही सकता था। वह सयोगिता के प्रेम-पाश में पड़ कर शक्ति और समय गँवाता था, अत सुदर्शन को उसके प्रति तिरस्कार हो गया। वह कभी यहाँ तक कह देता था कि यदि इस तरह मेरे सपनो में अपनी स्त्री का प्रेम-दीवाना बनेगा तो मै तेरी मदद नही करूँगा। पर वह चदवरदाई को चाहता था। चंद हमेशा आकर उसे मना जाता और दया के निमित्त वह चौहान की मदद के लिये दौड़ता, दुश्मन का दल पीछे हट जाता। कौन जाने क्यो उसे दुश्मन की

फौज भालुओं के झुंड की तरह लगती और, जैसे कोई मदारी रीछ का तमाशा दिखाने आया हो, उसके शौर्य का क्या मूल्य-? सुदर्शन तलवार लेकर पृथ्वीराज की मदद के लिये जा पहुँचता, दुश्मन की सेना के टुकडे-टुकडे कर डालता और फिर शांति से भारत का शासन-निर्माण करने बैठता। उदारता से वह पृथ्वीराज को चक्रवर्ती के सिंहासन पर प्रतिष्ठित करता और आर्यावर्त में धनधान्य और कीर्ति की रेल-पेल हो जाती।

बाद के पृष्ठ तो भारतवर्ष के इतिहास में है ही नही, वह सोचता और अकबर से फिर उसकी सृष्टि का आरंभ हो जाता।

अकबर को उसके प्रति अत्यंत ममता थी। वह बिना लाल दाढी के बडे मियाँ चाचा जैसा लगता था। वह उसी की तरह आनंद में तथा उन्ही भावो से हँसता। वह हमेशा बूढा और मखमल की गद्दी पर बैठ कर हुक्का गुड़गुडाता और बार-बार देश को जीत कर लौटा देने का काम सुदर्शन को सौंपता। उसकी एक हिंदू स्त्री थी, वह हमेशा सुदर्शन को बुलाती पर उसके पास जाना उसे अच्छा नही लगता। वह प्रतापसिंह का भी मित्र था और इन दोनों के बीच शांति का संदेश ले जाने मे ही उसका अधिक समय बीतता था।

यदि अकबर बड़े मियाँ चाचा जैसा न होता तो वह जरूर प्रताप की मदद करता और बहुधा अकबर को पता न देकर वह मेवाड़ जाता। वह और प्रताप पुराने साथी घोड़े पर चढ कर पर्वतो और खाइयो में फिरते। दोनो मृत्यु-पर्यन्त मित्र रहने की प्रतिज्ञा करते। उसके छोटे से इतिहास मे प्रताप की कहानी विस्तार में न थी, अतः वहाँ का परिचय थोड़ा ही रहा।

पर जहाँगीर नूरजहाँ और शाहजहाँ की शान-शौकत मे उसका भी भाग था। दोनो बादशाहो के साथ वह छुटते हुए फव्वारो से शीतल शीशे के महलो मे घूमता और संपूर्ण सृष्टि की समृद्धि उसकी आँखो

के सामने बिछी रहती। वह मीनार पर से जमुना के जल की लहरें देखता और मदोन्मत्त कुजरो की पंक्ति की पक्ति देख कर गर्व से फूल उठता। यह समृद्धि और वैभव उसका और उसके आर्यावर्त का था।

उसे महलो मे फिरती हुई स्त्रियाँ और सतत संगीत की बैठक अच्छी नही लगती। बची हुई दुनिया को जीतना अभी बाकी था, अत. इस प्रकार ये लोग समय गँवाते है यह भी उसे अच्छा न लगता। कभी गुस्से मे वह इन बादशाहो को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देता और भीष्म की तरह जीवन बिताने का उपदेश देता। यह शिक्षा बादशाह सिर झुका कर ग्रहण करते पर फिर भी रहते ज्यो के त्यो। सुदर्शन को उनकी इस कमजोरी पर तिरस्कार के भाव आ घेरते।

पर नूरजहाँ उसे अच्छी लगती। रागरग मे भी उसकी महत्वाकाक्षा असीम थी। उससे वह बारबार मिलता और जहाँगीर को उत्साहित करने की सूचना देता। वह बेचारी हमेशा उसकी सलाह के अनुसार काम करती पर जहाँगीर को वैभव और विलास इतना अच्छा लगता था कि वह उसकी सलाह को कभी भी अमल मे न ला सका। एक बार सुदर्शन को शंका हुई कि उसकी दृढता तथा अडिग महत्वाकांक्षा देख कर नूरजहाँ ने—परस्त्री को शोभा न दे ऐसी—प्रशसा भरी दृष्टि से उसकी तरफ देखा। भीष्म को भी दुष्प्राप्य, भयंकर और कठोर निर्मलता से सुदर्शन ने उसकी ओर देखा। सम्राज्ञी का दृष्टि-विकार उसी क्षण पैदा होते-होते तुरन्त विलीन हो गया।

और फिर तो उसका पुराना और प्रिय मित्र शिवाजी नाना त्र्यबक की मुखमुद्रा मे आ उपस्थित हुआ। उसने गुजराती में बोलना जारी रक्खा और सुदर्शन को साथ मे रख कर छोटे से इतिहास में दिये हुए पराक्रमो की काल्पनिक रगभूमि पर तबले और हारमोनियम के संगीत के साथ-साथ वे ही दृश्य फिर उपस्थित किये।

और ये सब महान् पुरुष एक साथ मिल कर अनेक प्रकार के पराक्रमो द्वारा सुदर्शन के बालजीवन को आगे खीचते गये।

६

इन सबसे मित्रता होते ही सुदर्शन उनके साथ परिचय बढाने का प्रसंग खोजने लगा। और पादरी का इतिहास छोड़ कर मोरबी और बांकानेर के ऐतिहासिक नाटको के सौंदर्य से परिपूर्ण गुजराती के ग्रंथ तथा नारायण हेमचन्द्र के अनुवादो की विशाल सृष्टि मे इन मित्रों के साथ विहरने लगा। कोलंबस की तरह उसकी विस्मित आँखो के आगे एक नवीन भूखंड की अपरिचित समृद्धि आ उपस्थित हुई; और इस समृद्धि की चमक में पुराने परिचितो के नवीन रूप तथा नवीन संबंध परखे।

उसकी सृष्टि में विप्लव होने लगा। पुरुषो मे, योजनाओ में और भावनाओ में परिवर्तन हुआ। पुराने सोने का नवीन मूल्याकन हुआ। प्राचीन संबधो में एक नवीन स्नेह का संचार हुआ। चारो ओर भय फैल गया। देश और धर्म खतरे में पड गये, भरत-खंड की स्वतन्त्रता जाने लगी। देव-मंदिरो की पवित्रता नष्ट होने लगी। इस्लाम के असंख्य अनुयायी भारतवर्ष पर अपने दाँव लगाने लगे।

सुदर्शन की बेचैनी बहुत बढ गई। उसे खाना अच्छा न लगता, उसे रात को नीद न आती। मध्य कालीन राजपूत शौर्य तथा मुस्लिम क्रूरता ने उसके जीवन में अशांति भर दी। कितने ही प्रश्न निराकरण की प्रतीक्षा कर रहे थे।

सोमनाथ की विशुद्धता की रक्षा उसे करनी थी। मेवाड़ की नष्ट होती स्वतंत्रता की उसे रक्षा करनी थी। अकबर के समय की

राजनीति को पराजित करना था। शिवाजी के प्रयास सफल करने थे। हिंदू और हिन्दुस्तान दोनो का क्या होगा ?

कठिनाई दिन-प्रति-दिन बढती गई। उसे अब खाने में रहने में, या घूमने मे आनद न आता था। वह सोते-जागते यही विचार किया करता था।

परिस्थिति गंभीर थी। राजपूत अपने अभिमान मे एक दूसरे का गला काटने पर उतारू थे। मुसलमानो का समग्र बल उमड़ा पड रहा था। छोटी-छोटी अँधेरी गलियो मे महमूद गजनी आक्रमण करने के लिए उत्सुक दिखाई देता। अँधेरी रात मे, परछाँई मे गोरी और गुलामो की सेना उसकी बाट देखती थी। आधीरात मे अगणित मुसलमान उसके खून के प्यासे बन कर उसकी चारपाई को घेरे रहते। प्रत्येक छप्पर पर मस्जिद की मीनारो का निर्माण करते। अर्धचंद्राकार विजय चिह्न प्रतिदिन आकाश मे चमकते, प्रत्येक ध्वनि मे अल्लाहो अकबर का नारा सुनाई देता। वह जानता था कि उसको पकडने के लिये, मारने के लिये वे सब उत्सुक थे। उसने इस्लामियो का क्रोध अपने सिर पर ले लिया था क्योकि उसने भारत को स्वतत्र रखने की शपथ ली थी।

वह जहाँ जाता पठान उसका पीछा करते, उन्होने भी अपने पैगम्बर की दाढी की कसम खा ली थी कि उसको जरूर पकड़ेगे। उसकी चोटी काटने के लिये वे तलवार पर धार रखते। मौलवी उसको धर्म-भ्रष्ट करना चाहते। वह बहुधा चारो ओर सावधानी से देखता और चिंतित होता और हाँफता हुआ—चारपाई पर बैठा ही बैठा—भागा करता।

प्रत्येक स्त्री उसे राजपूतानी लगती। पठानो के भय से आतकित हो दौडती; वे उनका पीछा करते; उनकी लाज लूटी जाने का समय आ पहुँचता; धर्म का भाई मान कर वे उसे सदेश भेजती। वह जाता और स्कूल जाते समय वही स्त्रियाँ उसे फिर मिलती तो उसे संतोष होता।

प्रत्येक मंदिर को संरक्षण की आवश्यकता थी। प्रत्येक के नीचे तहखानों मे शताब्दियो से रत्न-भडार भरे पडे थे। वह अकेला ही उन सब का संरक्षक था। जब भी वह उनके पास से होकर निकलता तभी उसे दारुण युद्ध करना पड़ता।

पर उसकी विजय विधिनिर्मित थी। कहाँ से और कौन उस पर आक्रमण कर रहा है यह उसे मालूम हो जाता। प्रत्येक घर राजपूत वीर का दुर्ग था। उनमे से अवसर पडने पर दुर्जय योद्धा सहायता के लिये आते। अनंगपाल, भीमदेव और पृथ्वीराज आ पहुँचते। जयचद-से द्रोही डर से छिप जाते। तुमुल युद्ध प्रतिदिन होता, गली-गली मे हल्दीघाटी की रचना होती। घर-घर में स्त्रियाँ जौहर करती। प्रत्येक आवाज से हर-हर महादेव की घोषणा की प्रतिध्वनि निकलती। घर से स्कूल तक या बाग से नदी तक जगह-जगह वीर-रक्त की सरिताएँ लहरें मारती।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, उसने एक युक्ति ढूंढ निकाली। उसने घर से स्कूल तक राजपूत सेना का व्यूह रचा। संयोगिता के प्रेम में पागल पृथ्वीराज को अपनी आँखो के आगे रक्खा। भीमदेव को छोटे से बाजार वाले मदिर की चौकसी में रक्खा। अनगपाल को चौकी म्यूनिसिपैलिटी की बत्ती के पास रखी। रास्ते मे एक मस्जिद पडती थी, वह दुश्मन की सेना का पडाव था। वहाँ उसने राणा साँगा और प्रताप—दोनो को बिठाया था। एक बार इन दोनों ने इस व्यवस्था के विरुद्ध शिकायत की। उन्होने कहा कि उनके बीच कई पीढियाँ और भी गुजर गई है अत' वे दोनो साथ-साथ नही बैठ सकते। सुदर्शन ने क्रोध से पैर पटका—हिंदुस्तान की रक्षा की समस्या के सामने यह बात उसे निर्जीव लगी। अत मे विवश होकर राणा सागा और प्रताप—दोनो को उसकी आज्ञा माननी पड़ी। पर सुदर्शन को संतोष नही हुआ। सामने वाली हवेली की चोटी पर सिहगढ रख कर शिवाजी को

बैठाया और इन दोनो राणाओ को मुस्लिम छावनी से सावधान रहने का फर्मान भेजा। प्रत्येक स्त्री को उसने शस्त्र और सरक्षक दिये और सारी सेना को इस भाव से प्रेरित किया कि संपूर्ण भारतवर्ष की स्वतत्रता स्त्रियो की पवित्रता पर ही अवलवित है।

इस के प्राचीन मित्र तथा ब्राह्मण सेना भी आवश्यक सहायता करने के लिये तैयार थी। परशुराम और सगर जब कभी मुस्लिम आक्रमण अधिक प्रवल होता तो सहायता के लिये आते। विश्वामित्र और चाणक्य भारत की राजनीति का निर्माण करने मे उससे मंत्रणा लेते। उसकी ब्राह्मण सेना इस समस्त व्यूह को व्यवस्थित रखने का काम करती और आवश्यकता पड़ने पर सुदर्शन की हुक्म अदूली करने वाले का दड देती पर अधिकतर वहादुर मराठे और वीर राजपूत विश्वासपात्र ही सिद्ध होते। उनके पराक्रमो से प्रसन्न होकर सुदर्शन उनको ब्राह्मण वना कर अपनी सेना में स्थान देता। कोई भी हिंदू वीर श्रेष्ठ ही था।

इस पूरी योजना के प्रभाव से धीमे-धीमे मुसलमानो की शक्ति कम हुई। भारतवर्ष बच गया। गौ, ब्राह्मण और स्त्रियाँ निर्भय हुई। देव-मदिर की विशुद्धि की रक्षा हुई। चारो ओर यज्ञो का धूम आकाश को आच्छादित करने लगा। वेदोच्चार की प्रतिध्वनि सब जगह सुनाई देने लगी। गीतध्वनि घंटनाद के साथ मिल कर शातिमय वातावरण का प्रसार करने लगी। अपनी प्रतापी सेना का उपयोग करने के लिये—भारत की दिग्विजय करने के लिये—उसने विदेशी राज्यो की ओर दृष्टि-निक्षेप किया।

७

वह अग्रेजी की छठी कक्षा में आया, तब भी उसके भाग्य मे चैन से बैठे रहना न था। उसके हाथ में 'एम्पायर हिस्ट्री' आयी। 'एम्पायर

हिस्ट्री' अर्थात् पादरीकृत पुस्तक नही, वल्कि अंग्रेजो के राष्ट्रीय वैभव से परिपूर्ण—सक्षिप्त पर सजीव—इतिहास। अग्रेजी में स्कॉट के 'आइवेनहो' में से कितने ही भाग भी उसके पढ़ने मे आये।

हिन्दू मुसलमानो से निर्भय हो गया था, अतः उसको दूसरी ओर ध्यान देने का समय मिला। उसने इतिहास और 'आइवेनहो' पढ डाले। उसके पिता ने स्कॉट के उपन्यास उसको उपहार के तौर पर दिये थे; उनको समझे, बिना समझे पढ गया। किंगसले के एक दो उपन्यास भी जैसे-तैसे पढ़ डाले।

महीनो तक, अनवरत रूप से वह इन पुस्तको को दिन-रात पढता रहा। वह अंग्रेजी अच्छी तरह नही समझता था। कितनी ही वातो का आशय समझ में न आता था। इस पर भी स्त्री-पुरुषो की महत्वा-कांक्षाएँ और पराक्रम उसके हृदय मे अपना स्थान वना लेते। वहुधा पुस्तक अधूरी छोड़ कर उसके पात्रो के पराक्रम स्वय अपने आप पूरा करने लगता।

धीरे-धीरे एक नवीन, विचित्र भूगोल और समय-क्रम से परिपूर्ण सृष्टि प्रकट होने लगी।

वेचारे क्रुसेडरो को—पापी सलादीन के हाथ से येरुसलम वचाने के लिये निकली हुई धर्मवीरों की भटकती हुई सेना को—उसकी सहाय्य की आवश्यकता पडी। उसने 'व्लैक नाइट' की तरह काला लोह कवच पहना, सिर पर टोप पहिनकर मुँह ढाँपा और काले घोडे पर चढ कर, हाथ में भाला लेकर सलादीन को पराजित करने के लिये निकल पडा। शहर से थोड़ी दूर पर पडने वाला एक रुद्रालय, येरुशलम वनाया गया, गाँव के वाहर जहाँ खेतो की वाड शुरू होती थी वहाँ से हिंदुकुश के पर्वतो में खुरासान की इस्लामी सत्ता छिपी वैठी थी। और इन शृगो के पीछे जहाँ महमूद गजनी की फौज छिपी हुई थी उसी

तरफ उसके मित्र सलादीन की फौज थी। रुद्रालय—येरुसलम को इन राक्षसो से छीनना था।

अब बहुधा वह 'येरुसलम' की ओर घूमने जाता। काला कोट पहने हुए उसके साथ जाने वाला चपरासी उसका परम मित्र इंग्लैड का शेरदिल, प्रथम रिचार्ड—'ब्लैक नाइट'—काले योद्धा के नाम से सुविख्यात महारथी था। उसके बाईं ओर हमेशा उसके छोटे भाई की तरह आईवेनहो' चलता था और उसकी सेना जनेउ और त्रिपुडधारी दफ्तर मे सजी हुई उसके पीछे-पीछे आती थी। बहुधा सलादीन की विजय होती और वह तथा काला योद्धा' अपना नाम न बता कर, अनेक विपत्तियो का सामना कर स्वदेश लौटते।

अनेक सदियो की घटनाये इकट्ठी कर उनको एक ही स्थल तथा काल मे सजीव करने की उसकी शक्ति दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई और इस बढ़ी हुई शक्ति से इंग्लैड के इतिहास मे रस का अनुभव होने लगा।

जब वह घर से निकलता तो जंगली जैसे इंग्लैड को हाथ में लेकर निकलता। तुरन्त बोआडिशिया रानी अपनी बहादुरी दिखाती हुई उसके साथ हो लेती। वे तीनों बेचारे जैसे-तैसे आगे बढ़ते, और इतने मे नोरमडी का ड्यूक विलियम उनको पकड़ लेता। कुछेक पल बहुत दारुण होते, पर अत में विजयी होकर एक महान् साम्राज्य स्थापित करने का विश्वास हो आता। जो कुछ भी हो उसकी अपनी सेना की तो मदद थी ही।

धीरे-धीरे वह शक्ति इकट्ठी करता। एडवर्ड प्रथम आ पहुँचता। फिर एडवर्ड तृतीय से उसकी भेंट होती, और नगर की सड़को पर पहुँचने से पहले ही स्कॉटलैड जीत लिया जाता। फिर फ्रांस के साथ अनवरत युद्ध करना पडता। उसके हृदय में हमेशा फ्रेंचो के प्रति सम्मान था। उनसे वह विनय-पूर्वक कहता, किस लिये लड़ते हो?

मै तुम्हारी रक्षा करूंगा, मैं तुम्हें सुख दूंगा, लेकिन वे न मानते और हेनरी फिफ्थ को भेज कर उसे जीतना पडता।

फिर वही बालिका जोन ऑफ आर्क आती। वह दुश्मन की सेना को प्रेरित करती पर फिर भी वह उसे बहुत अच्छी लगती। कभी-कभी तो उसे अपनी तरफ मिलाने का मन होता; पर उस जैसे विशुद्ध सयमी को स्त्री का सहवास ज़रा भी न चाहिये, यह सकल्प कर वह अपने मन की भावना को दबा देता। वह बहुत बहादुरी जताती। वह चाहे तो उसको पल भर में हरा दे, पर ऐसी सुकुमार बाला को हताश करने का उसका मन न हुआ। उसने अपने प्रिय मित्र भीष्म की तरह स्त्री से लड़ने के लिये मना कर दिया—स्त्री को जान-बूझ कर विजयी होने दिया।

सात पटरानियो के साथ आता हुआ वह मोटा हेनरी उसे अच्छा नही लगता था, पर एलिज़ाबेथ पर उसने अधिकार कर स्पेन का समुद्री आक्रमण पीछे लौटा दिया। चार्ल्स प्रथम उसे ज़रा ही अच्छा लगता था। वह बडी मुश्किल से उसको डरा-धमका कर सीधा रखता और इतने में तो उसका मित्र ओलीवर क्रॉमवेल आ पहुँचता।

क्रॉमवेल उसका परम मित्र था। वह भी उसकी ही तरह कठोर, सयमी तथा सत्ताशाली था। उसके आते ही सुदर्शन और सब को भूल कर अंग्रेजी सत्ता की नीव जमाता।

इसके बाद उसे कोई भी अच्छा न लगता था, अत. वह क्रॉमवेल को ही साथ रखता और उसके साथ रह कर अंग्रेजी इतिहास की बहुत सी भूलो को सुधारता। परन्तु पीट—चेथाम—के आते ही उसकी आवश्यकता न रही। भारत, कनाडा इत्यादि जल्दी-जल्दी जीत लिये गये।

पर इतने में पानी के रास्ते में नेपोलियन से भेंट हुई। उसके योग्य ही यह प्रतिस्पर्धी लगा। उसकी मदद करने के लिये उसका

मन होता। पर इंगलैंड को कहीं छोड़ा जा सकता है ? उसने तुरन्त ही नेपोलियन को हरा कर एक दूर टोले पर, एक छोटे-से घर में, उसे कैद कर दिया।

इतने में स्कूल आ जाता। उस खुले हुए मैदान में, म्युनिसिपैलिटी, चर्च, सरकारी ऑफिस और स्कूल था। यह अंग्रेजी साम्राज्य था। बड़ी मुश्किल से उसने इसका निर्माण किया था। उसके पिता उस साम्राज्य के स्तंभ थे। उसको बड़ा ही गर्व होता, और इस साम्राज्य को सदा ही सुरक्षित रखने की वह प्रतिज्ञा करता।

"झेर गयां ने वेर गयां,
वली काला केर गया करनार,
ए उपकार गणी ईश्वर नो,
हरख हवे तु हिंदुस्तान।"

वह कहता।

सुदर्शन के मन भारत अंग्रेजी साम्राज्य का एक अंग था और इसलिये अंग्रेजी गौरव से गौरवान्वित था। क्रॉमवेल, चेथाम और नेल्सन उसी के पूर्वज थे। 'ब्रिटेन कभी गुलाम नहीं होगा' इन पंक्तियों का उच्चारण करते समय उसकी छाती फूल उठती थी।

विश्वामित्र, परशुराम तथा सगर का अनुज और राणा साँगा, प्रताप तथा शिवाजी का भक्त ऐसा यह नन्हा सा ब्राह्मण बालक शताब्दियों की अपूर्व संस्कृति के अपने संरक्षकों को अंग्रेजी कीर्ति की आभा से चमका कर साम्राज्य को विश्व-विजयी करने के स्वप्न देखता रहा।

---

# अधमता का आस्वादन

१

एक दिन संध्या को सुदर्शन प्रमोदराय के साथ गाड़ी मे बैठा हुआ आ रहा था उसी समय पीछे से एक अंग्रेजी घुड़सवार आता हुआ दिखाई दिया।

जब सुदर्शन गाड़ी मे बैठता तो उसके स्वप्नो की गति बढ जाती और परिवर्तन जल्दी-जल्दी हुआ करते। वह चुपचाप सब देखा करता। जब उसकी नजर गाडी के आस-पास दौड़ती तो उसे अपनी सेना की टुकड़ी ही दिखाई देती और रास्ते चलते हुए सब उसकी आज्ञा लेकर किसी महाप्रयोजन की पूर्ति के लिये चल देते। सुदर्शन ने इस आने वाले घुड़सवार को कभी का देख लिया था और उसके बाल-मित्र 'आइवेनहो' का संदेशा ले आने वाले सेवक की तरह उसे कभी का पहिचान भी लिया था।

रावबहादुर का एक हाथ पगडी ठीक करने के लिये बढ़ा। दूसरे हाथ से कोट खीच कर सीधा किया। और फिर सुदर्शन का हाथ दाब कर मानयुक्त स्वर में कहा, "कलेक्टर साहब आ रहे हैं, सलाम करना।"

अपने रोबीले बाप को ऐसे स्वर में बोलता देख कर वह चकित रह गया। उसने पिताजी की तरफ देखा। विश्वामित्र से मिलते समय जो नम्रता उसके मुख पर छायी रहती थी वैसी ही प्रमोदराय के मुख पर छा गई थी। एक सम्मानपूर्ण हास्य से, गाडी में भी नीचे झुके और घुड़सवार को सलाम किया। सुदर्शन ने 'आइवेनहो' के

अनुचर की तरफ़ देखा। बाप ने 'सलाम कर' कान में कहा, उसने सुना और यंत्र की तरह हाथ ऊपर उठा दिया। माथा झुका कर घुड़सवार ने सलाम ली और पास आ कर घोड़ा धीमा किया।

"हलो ! प्रमोदराय !" उसने सुदर्शन को बुरा लगने वाले स्वर में कहा, "यह तुम्हारा लड़का है क्या ?"

"जी हाँ ! मेरा इकलौता लड़का है साहब !" प्रमोदराय का मुख हर्ष से चमक उठा।

"प्रमोदराय !" साहब ने कहा, "मिसेज़ स्मिथ का कल जन्म-दिन है; तुम आना, सुबह नौ बजे।"

"जी, बहुत खुशी से।"

"और अपने इस लड़के को भी लाना" कह कर जवाब की प्रतीक्षा किये बगैर ही घोड़े को एड लगा कर कलेक्टर साहब चले गये और लडके को देखते ही साहब ने निमंत्रण दिया यह सोच कर प्रमोदराय गर्व से देखते रहे।

पर उस लड़के के हृदय में आग लग गई थी। उसके पिता के रूप तथा स्वर में हुए परिवर्तन ने, उस अंग्रेज के बोलने और निमंत्रित करने के ढंग ने उसकी स्वप्न-सृष्टि मे भूकंप ला दिया था। समझ मे न आने वाला तथा उसकी शक्ति से बाहर, ऐसा भयंकर क्रोध उसके छोटे से शरीर में व्याप्त हो गया।

अपने पिता की तरफ उसने ध्यान-पूर्वक देखा। वे ऋषियो की महत्ता और अंग्रेजी गौरव के स्तंभ नही, बल्कि अंग्रेज अधिकारियो के एकमात्र नौकर थे। वे प्रतापी और दुर्जेय अधिकारी न थे, बल्कि इस 'आइवेनहो' के अनुचर के आगे क्षीन-हीन, पराधीन और निर्जीव मनुष्य थे। पगड़ी ठीक करने के लिये रखा हुआ हाथ, कोट सीधा करने के लिये बढ़ी हुई उँगलियाँ, सलाम करने के लिये उसे दी हुई आज्ञा, प्रत्येक शब्द के साथ मिली हुई नम्रतापूर्ण हँसी और

मुँह से निकला हुआ 'साहब' शब्द, इन सब को चोट उसके हृदय पर पड़ी। यह उसका पिता—जिसको वह पूजता था वह!

आज तक उसने बहुत बार दूर से अंग्रेजों को देखा था और उनको अपने साम्राज्य का अंग मान कर गर्व का अनुभव किया करता था। पर उनके साथ आज पहले ही परिचय से उसे ऐसा लगा जैसे उसकी आत्मा घायल हो गई हो। साहब तिरस्कार से उनकी तरफ देख कर उदासीन भाव से निमंत्रण दे रहा था। उसकी प्रत्येक चेष्टा में गुलामों को खरीदने वाले की-सी निर्लज्ज लापरवाही थी। उसके लिये अंग्रेज अर्थात् सुशील, स्वातंत्र्यकांक्षी, खुश मिजाज, शिष्टाचार और विश्वास से परिपूर्ण सज्जन! इस अंग्रेज को देख कर उसे क्रूर 'ब्रीग्रा—द—व्वा गीलवेर' साक्षात् आता हुआ लगा। वह चुपचाप क्रोध से जलता रहा।

वह घर आया और प्रमोदराय ने गंगा भाभी को बुलाकर सहर्ष कहा, "यह तेरा लड़का तो बड़ा जबरा है! आज साहब ने इसे देखा, और तुरंत ही कल अपने बँगले पर बुलाया है।"

"अच्छा! यह बात!" गंगा भाभी ने कहा, और पिता-पुत्र में जिसका जीवन समाया हो ऐसी स्त्री के मुख पर ही दिखाई देने वाला गर्व और ममतायुक्त हास्य वह हँसी। "मोर के अंडों को कहीं चित्रित करने की ज़रुरत है?" दोनों हँसे, पर सुदर्शन को मक्खी के अंडे भी अपने से अच्छे लगे।

प्रमोदराय ने उसके लिये अच्छे से अच्छे कपड़े निकालने के लिये अपनी पत्नी से कहा। सुदर्शन को रोमाञ्च हो आया। प्रमोदराय उसको 'रतनबाई' का वेश पहना कर बड़ी शान के साथ लिये जा रहे थे। जब रात के समय उसको प्रमोदराय कैसे बोलना-चालना, कैसे सलाम करना इत्यादि सिखाने लगे तब 'रतनबाई ठुमककर चलो' ऐसी आवाज उसके कान में होने लगी। उसने बाप

की बातो पर ध्यान नही दिया और कलेक्टर के यहाँ जाने की आनाकानी करना आरंभ की। प्रमोदराय ने क्रोधित हो कर उसके कान उमेठे और तैयार होने का हुक्म दिया।

वह अकेला बिस्तरे में बैठ कर रोने लगा। उसका पिता पराधीन नौकर था, स्वयं 'रतनबाई' था, विश्व मे उसके लिये कोई स्थान न था। क्या उसके स्वप्न-मित्र उसको छोड़ गये थे ?

२

दूसरे दिन उसने भड़कीले कपड़े पहने। एक शब्द भी उसके मुँह से नही निकला, पर लज्जा से उसका मुँह लाल हो गया। उसके स्वप्न-मित्र चारो ओर से उसकी हँसी उडा रहे थे। "कैसा सुन्दर लगता है ?" उसकी माँ ने कहा।

'रतनबाई जैसा !' सुदर्शन ने कहा। माँ उसका अर्थ न समझ कर चुप रही। बड़े गर्व के साथ प्रमोदराय अपने लडके को लेकर गाड़ी मे बैठ कर कलेक्टर के बँगले पर गये।

गाँव के बाहर, नदी किनारे, गाँव के राज्यकर्ताओ के लिये सुन्दर और सरस बँगलो से युक्त एक मुहल्ला था। वहाँ रास्तो पर रोलर घूमते, पानी छिडका जाता और दोनो किनारो पर बड़े विचार के साथ सुन्दर-सुन्दर पेड़ लगाये जाते। यह विभाग म्युनिसिपैलिटी के सदस्यो का कृपा-भाजन था।

सुदर्शन इतनी दूर घूमने नही आता था, अतः साहबो की इस बस्ती को देख कर वह विस्मय मे रह गया। यदि उसकी मानसिक स्थिति ठीक होती तो यह जगह देख कर उसकी कल्पना-शक्ति उत्तेजित होती पर इस समय तो वह मद हो गई थी। उनकी गाड़ी बँगले के कंपाउड के बाहर खड़ी रही और वे उतरे। दरवाजे के आगे खडे पुलिस के सिपाही ने रावबहादुर से सलाम किया, घर से इतनी दूर रास्ते पर उतर पड़ना सुदर्शन को विचित्र लगा।

"बाबूजी ! गाडी अदर नही ले चलते?"

"नही, ले जाने का हुक्म नही है।" कह कर रावबहादुर अदर जाने लगे। सुदर्शन अपने उग्र स्वभाव वाले पिता को भली भाँति पहिचानता था। अतिथि बन कर आना और इस प्रकार आम रास्ते पर उतरना, इससे उसके पिता को जरूर गुस्सा आयेगा, ऐसा उसे लगा। उसने डरते-डरते प्रमोदराय की तरफ देखा तो उनके मुख पर क्रोध के बजाय सौम्यता थी। उसने विचार किया कि यदि कोई दूसरा उसके पिता को इस प्रकार घर के बहार उतरने को कहता तो कभी भी वह उसके घर न जाते, पर वह साहब था और यह उसके नौकर, इसी कारण यह अवज्ञा चुपचाप सहन कर ली थी। उसे अपने पिता पर शर्म आई और वहाँ से भाग जाने का मन हुआ।

पैरो से ज़रा भी आवाज़ न करते हुए वह अंदर गये। बरामदे की सीढियो के आगे एक सिपाही मिला। उसने रावबहादुर को सलाम किया और खडे रहने को कहा। वह अदर सूचना देने गया। थोडी देर में वह लौटा और उसने चबूतरे पर दो कुर्सियाँ डाल दी और उनसे बैठने के लिये कहा। "साहब काम में है।" उसने कारण बतलाया।

सुदर्शन के आत्म-सम्मान को आघात पहुँचा। वह सतेज हो गया। उसकी असहिष्णुता बढ गई। सिपाही के बर्ताव मे उसको अपमान का आभास हुआ। साहब ने चबूतरे पर बिठाया इसमें अनादर के चिह्न दिखाई दिये। उसका पिता तो सौम्य मूर्ति बना हुआ था। वह हमेशा कहा करते थे कि साहब लोगो के साथ बहुत भला मालूम होता है। क्या यही भलापन था ?

थोडी देर में वही घुडसवार हाथ मे बीड़ी लिये हुए आया और रावबहादुर ने नीचे झुक कर सलाम किया। सलाम करते हुए उसका बाप कितना नीचे झुका यह सुदर्शन ने सूक्ष्मता से देखा और स्वयं भी

सलाम की। उस समय भी वह अपने को 'रतनवाई' कहे विना न रह सका।

"हलो, मास्टर, कैसे हो?" साहव ने उसकी पीठ थपथपा कर कहा।

"ठीक है।" सुदर्शन वोला। रावबहादुर ने उसे ठोक-ठोक कर समझाया था कि साहव को 'थैंक यू' कहना पर उससे वे शब्द वोले ही न जा सके।

"क्या पढता है?"

"मैट्रिक मे है।" प्रमोदराय ने कहा।

"तुम्हारी सेकंड लैंग्वेज क्या है?"

"सस्कृत।" सुदर्शन ने कहा।

"क्यो, तुम भी रावबहादुर की तरह डिप्टी कलेक्टर वनोगे न?"

सुदर्शन का पूछने को तो मन हुआ, 'क्या तुम्हारी खुशामद करने के लिये?' पर यह जवाव देने से पहले ही 'मैडम साहिवा' आ गईं।

"हलो, रावबहादुर!" उसने जोर से चिल्लाते हुए कहा। मिसेज स्मिथ लंबी, पतली और निस्तेज थी। उनके लबे हाथ की कुहनियाँ विल्कुल ठीक-ठीक कोण वना रही थी। प्रमोदराय उठे और मुस्करा कर किसी को भी अच्छा न लगे, इस प्रकार सलाम किया। सुदर्शन को इस सलाम करने के ढग पर तिरस्कार उत्पन्न हुआ। उसने मात्र सिर पर हाथ ही रक्खा।

"मेरा मुवारिकवाद, साल मुवारिक!" रावबहादुर ने जेव से एक डिव्वा निकाल कर उनकी नजर किया।

"How lovely" मिसेज स्मिथ ने चिल्ला कर नजराना स्वीकार करते हुए कहा। उसके मुख पर हास्य छा गया। उसने डिव्वा खोल कर एक छोटी पहुँची निकाल कर हाथ मे पहनी। "जॉन! जरा देखो तो, कितनी अच्छी! Isn't Rao Bahadur a dear" उसने सुदर्शन को

देखा और मुख पर कृत्रिम स्नेह भाव व्यक्त किये 'यह किसका लडका है ?' उसने पूछा और गुजराती भाषा का ज्ञान जताने के लिये 'चोकरा' शब्द उच्चारण किया, "तुम्हारा है ?"

"हाँ, मेडम !" हँस कर प्रमोदराय ने कहा।

जरा तिरस्कार भरे उच्चारण के साथ बोला हुआ 'चोकरा' शब्द ने सुदर्शन के मस्तिष्क में चिंगारियाँ सी लगा दी।" यहाँ आओ, शरमाओ नही। मिसेज स्मिथ ने कहा।" सुदर्शन क्या करे यह सूझने से पहले ही सबका ध्यान एक नवागत की तरफ खिंच गया।

सुदर्शन ने उसको तुरंत पहिचान लिया। वृद्ध रावबहादुर माधवलाल, प्रमोदराय के मित्र रिटायर्ड डिपटी कलेक्टर, म्यूनिसिपैलेटी, लोकल बोर्ड वगैरा-वगैरा सरकारी संस्थाओ के प्रमुख, कौन्सिल के सदस्य और सरकार के कृपापात्र थे। सारा गाँव उनकी लगाम के इशारे पर नाचता था और प्रत्येक विदा होने वाला कलेक्टर आने वाले कलेक्टर को इस कीमती मददगार की विरासत सौंप जाया करता था। उसने आकर साहब और मेडम से झुक-झुककर हाथ मिलाया, प्रमोदराय के साथ भी हाथ मिलाया और सुदर्शन को 'क्यो दोस्त ?' कह कर अपनी हस्ती की याद दिलायी।

रावबहादुर बडी आज़ादी से बात करता हुआ दिखाई दिया, पर सुदर्शन को तुरन्त यह आभास हो गया कि मित्रभाव का आडंबर करते हुए उनकी बातचीत मे खुशामद समाई हुई थी। प्रत्येक वाक्य मे साहब या मेडम को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से धन्यवाद ही था। प्रत्येक हँसी में समानता का आडबर और दीन भाव की प्रतिध्वनि थी।

सुदर्शन कितने ही साल से इस सज्जन की प्रतिष्ठा के धोखे मे ही था। वह सदा ही उसे सरल, दयालु, विशाल हृदय तथा गौरवशील लगता था। इस समय उनका आचरण देख कर उसे शर्म आई। उनकी अपेक्षा तो उसे अपने पिता का व्यवहार ही गौरवपूर्ण लगा।

माधवलाल ने भी मुबारिकबाद तथा नज़राने की प्रतिक्रिया की, और मिसेज़ स्मिथ ने उनके नजराने को 'lovely' शब्द दिया और उन्हे भी 'dear' के वर्ग में रख दिया और बूढे ने गाँव की गप्पे और साहब को रुचिकर बातें कहना आरंभ किया। साहब और मेडम की मीठी बातो मे, बुड्ढा समझ न पाया ऐसे ढंग के उपहास की प्रतिध्वनि सुदर्शन को कौन जाने कैसे सुनाई देती रही।

इतने मे सिपाही फिर दौडता हुआ आया। कंपाउंड के बाहर राह देखते हुए माभाई सेठ ने अपना कार्ड भेजा था।

साहब ने उसका कार्ड देखा 'Oh! This eternal Mabhai.' मुँह बना कर तिरस्कार से कार्ड पढा।

*Sheth Mabhai,*

Land-lord and Big Leaf-Dish and Cup Merchant.'

"रावबहादुर! यह Leaf-Dish क्या होता है?" मेडम ने हँस कर पूछा।

"मैडम!" माधवलाल ने कहा, "हमारे यहाँ गरीब लोगो के खाने के लिये पत्तो की थाली बनायी जाती है उसे हम लोग 'पत्तल' और पत्तों के कटोरे को 'दौना' कहते है। माभाई पत्तल और दौने का एक बड़ा व्यापारी है।" साहब और मैडम दोनो हँस पड़े।

सेठ माभाई को सुदर्शन अच्छी तरह पहिचानता था। जिले मे वह दो गाँवो का ज़मीदार और तीन पीढ़ी से बड़े से बडा पत्तल-दौने का व्यापारी था। एक बड़ी सी हवेली में रहता और दो घोडे की बग्घी में बैठकर घूमता था। थोड़े समय से रावबहादुर माधवलाल ने उससे प्रजा-जीवन का आनन्द लेने के लिये कलेक्टर साहब की पूजा करना सिखा दिया था और परिणाम-स्वरूप म्यूनिसिपैल्टी का सदस्य और थर्ड क्लास ऑनरेरी मजिस्ट्रेट हो गया था। अब उसके दिल में

रावसाहब—गाँव की व्यंग्य-भाषा मे 'रावछास' —होने की महत्वाकांक्षा ने घर कर लिया था।

"साहब ! मैंने कल इनसे कहा था कि आज 'मेडम' साहब का जन्म-दिन है।" माधवलाल ने कहा।

"अच्छा, वह तुम्हारा दोस्त है। सिपाही, उसको बुलाओ !"

धड़कते हृदय से सुदर्शन दरवाजे की ओर देखता रहा।

२

माभाई ठिगना और रग में पक्के कोयले जैसा था। उसकी छोटी-सी नाक बडी आँखो के बीच में, चेचकरूह चेहरे पर विराजमान थी। आँखे मटमैली, काले ओठ सतत धूम्रपान करने से और भी खराब हो गये थे। मोटी भौएँ और बिखरी हुई मूछे इस मुख की शोभा के अपूर्व तत्त्व थे। कसुभी-रग की दक्षिणी पगडी उसके सिर पर सुशोभित थी। हाथी-दाँत का पीला पड गया, खड़ा हुआ कॉलर उसके कोट में से गर्दन निकाले रहता और उस पर बँधी हुई, घर की बुनी हुई ऊन की नीली टाई, जैसे सीधी तरह से रहना है या नही इस संशय की सूचना देती रहती। नये चमकते हुए कोटिंग के कपडे का ढीला-ढाला कोट सूखे शरीर पर झूल का स्मरण दिलाता था। डक की तंग पतलून का किनारा ज़रा मोटा होने के कारण, फीते के बदले रबड़ से अलकृत होलबूट में घुसा रहता था।

उसके मुख पर कृत्रिम और खुशामदी हँसी थी। उसके चलने के ढग में कमजोर कमर और निर्बल पैरो की मदद से जितनी भी सुदरता आ सकती थी उसे लाने का इरादा दिखाई देता और यह इरादा सभ्यता के लिये पुरुष कहलाने वाले आदमी को अच्छी लगे ऐसी चाल में व्यक्त होता था।

सेठ माभाई आये, एक सामान्य मनुष्य मे जो दोष होते है, अज्ञान के जो चिह्न होते है और खुशामद के जो लक्षण होते है वे

सब इन जमीदारो के नेता माभाई सेठ मे थे, और कही वह भी स्वय पीछे न रह जाय इस डर से, प्रकृति ने अपनी तरफ से भी उसको तिरस्करणीय बनाने मे कोई कमी न छोडी थी। लक्ष्मी और अंग्रेज सरकार दोनो का ही वह कृपापात्र था।

सरकार के इस कृपापात्र के हाथ मे एक काले रंग का डिब्बा था।

माभाई ने आते ही डिब्बा नीचे रक्खा और हाथ झाड दिये जैसे धूल लगी हो। उसके होठ और शरीर, कलेक्टर साहब को रिझाने की इच्छा से, पुलकायमान हो रहे थे।

स्मिथ इस सज्जन की तरफ देखता रहा—तिरस्कार भरी नजर से। मिसेज स्मिथ ने मुँह पर हाथ रख कर हँसी छिपाने का प्रयत्न किया। माधवलाल एक स्नेहशील पिता के वात्सल्य से देखता रहा। प्रमोदराय गभीर और कठोर बन कर दूसरी तरफ देखते रहे और सुदर्शन ने नीचे से ऊपर दृष्टि न की। उसे एकाएक ध्यान आया कि माभाई अपना है—स्मिथ पराया है। माभाई का दिखावा, व्यवहार, और रिझाने की उत्कंठा उसको अपनी अधमता के साक्षात् प्रतीक थे। सुदर्शन को घोर लज्जा जलाये डाल रही थी।

थोडी देर तक स्मिथ देखता रहा और माभाई को कुर्सी देने के लिये भी सिपाही से नही कहा।

"वेल !" पाँच मिनट के असह्य मौन के बाद कलेक्टर ने कहा।

"Good morning Sahib—Good morning Madam Sahib." प्रत्येक शब्द पर नीचे झुक कर टूटी फूटी अंग्रेजी मे माभाई बोला—"I hear-to-day Madam's birthday Great joy. I came. Madam Sahib—noble woman, mother of people. I honour. gives— no flattery."

ऐसी अंग्रेजी का अनुपम प्रयोग कर सेठ माभाई यह देखने लगा कि उसका क्या असर होता है, पर इतने मे दो चपरासी एक बड़ी-भारी

फलो की टोकरी उठा कर ले आये उसे देख कर मेडम साहिबा प्रसन्न हुईं, "ओ ! ए टुमारा है ?" उत्साह से खड़े होते हुए मिसेज़ स्मिथ ने-कहा।

सेठ माभाई यह मेहरबानी देख कर प्रेम से पुलकित हो उठा, Yes, Madam Sahib, all garden—your humble servant, all fruit—your humble servant, all under your honour's feet, great joy. Madam Sahib birthday (हाँ, मैडम साहब, सब बाग आपके खादिम के ही हैं, सब फल भी आपके नम्र सेवक के—सब आपके चरणों में, मैडम साहब, आपका जन्मदिन, बहुत आनंद ! बहुत आनंद !)

मैडम साहब के टोकरी का ढक्कन खोलते ही वातावरण आनंद-मय चीख से गूँज उठा, "Oh ! lovely ! lovely ! de-lightful !" उसने कहा, इस आनंद के हिस्सेदार हो इस प्रकार सब लोग मुँह पर एक कृत्रिम हास्य प्रकट कर देखते रहे। रावबहादुर माधवलाल वृद्ध दरबारी के अधिकार से खिलखिला कर हँस पड़े। सेठ माभाई भी यंत्र की तरह हँसता रहा।

स्मिथ ने एकाएक ताली बजा कर तथा जोर से चिल्लाकर पुकारा, "यू जमादार ! गधा ! वेवकूफ ! कुर्सी ला। देखता नहीं माभाई सेठ के लिये !" साहब के चिल्लाने से सब चौंक पड़े; लेकिन देखा कि यह तो एकमात्र मज़ाक था, इसलिये सब के सब खिलखिला कर हँस पड़े। इस हँसी के बीच जमादार ने कुर्सी लाकर रक्खी और सेठ ने स्मिथ और मिसेज़ को सलाम कर, 'Don't mention don't mention' कहते हुए कुर्सी पर बैठ गया।

जब तक मिसेज़ स्मिथ ने टोकरी में इधर उधर देखा-भाला, तब तक सब देखते रहे। फिर उसने उठकर माभाई से कहा, "माभाई सेठ, इस बॉक्स में क्या लाया ?"

हाथ मलते हुए सेठ माभाई उठे, पगड़ी ठीक करने के लिये सिर पर हाथ रक्खा और काले डिब्बे की ओर बढा । "Madam Sahib, your birthday—great joy, auspicious day—I—humble servant—Madam Sahib I think—think—think—special day—special honour I bring my water—my tea—my milk—my sugar—my stove—my kerosene. I make tea my hands. Madam Sahib, drink tea her auspicious hand. Special day—Special honour" इतना सब बोलने पर जोर पड़ने के कारण हाथी दांत के कॉलर मे अँगुली डाल कर सेठ ने उसे ढीला किया ।

सब स्तब्ध रह गये । पहले तो माभाई क्या कह रहा है किसी की समझ मे आया नही, पर हाथो के इशारे से उसके मुँह पर के भावो से, उसकी टूटीफूटी भाषा से कुछ थोडा प्रकाश पड़ा, लेकिन नीचे बैठ कर जब उसने पेटी में मे, मदारी की झोली हो इस प्रकार सब चीजे निकालना आरम्भ किया तो सब चकित रह गये । इन प्रशसा-चकित प्रेक्षको के सामने माभाई ने यह खेल दिखाना जारी ही रक्खा, "This new stove—purchase Bombay This milk—my milk, Madam Sahib my cow's milk This tea, China tea I bought Ving-Chang-Chi shop, Kalbadevi Road, Bombay"

जैसे-जैसे माभाई इन सब वस्तुओ को निकालता गया वैसे-वैसे ही दूर खडे हुए सिपाही, स्मिथ और मिसिज स्मिथ तथा माधवलाल के हँसने का पार न रहा । प्रमोदराय का मुख गभीर हो गया था । उनकी आँख मे उग्रता छा गई, होठ क्रोध से काँपने लगे । पिता के इस स्वरूप को सुदर्शन ने बड़े गर्व से निरखा ।

४

इतने में कंपाउड में कोई आया । चपरासी ने कार्ड लाकर दिया । स्मिथ ने कार्ड पढा, उसकी भौएँ तन गईं ।

"कौन है ?" वृद्ध माधवलाल ने पूछने की हिम्मत की ।

"अरे परेशान करने वाला कांग्रेसमैन !" एक कठोर तिरस्कार से स्मिथ देखता रहा। मिसेज़ स्मिथ ने कन्धे उचकाये। नया आने वाला एक प्रतिष्ठित वकील था, पर थोड़े दिनो से कलेक्टर पूजा की उपेक्षा करने से साहब की डायरी से उसका नाम निकाल दिया गया था।

"कौन दलाल !" माधवलाल ने कहा, "यह अब आपके पास आने लगा है ! All roads lead to Rome. कांग्रेस में तो वह बहुत वर्षो बाद गया था।'

"प्रमोदराय सब जानते है।" स्मिथ ने कहा, "इसे सरकारी वकील होना है इसलिये चक्कर लगाता है। दो-तीन बार तो मैंने मिलने से मना कर दिया था। आज उसे उसके योग्य स्थान बताता हूँ।" कहकर स्मिथ क्रोध से उठा। उसके मुंह पर आनेवाले का अपमान हो, उसका मन दुखे ऐसे प्रत्येक भाव झलक रहे थे। "उसको बुलाओ।"

स्मिथ वहाँ से उठकर पोर्टिको के आगे जा खड़ा हुआ। दोनों तरफ चपरासियो की लाइन खड़ी थी। दूर चबूतरे पर सरकार के कृपापात्र व्यक्तियो का समूह देख रहा था। साहब सीधा, कमर पर हाथ रखे, मुंह पर तिरस्कार के भाव ला खडा रहा और सामने से दलाल वकील नया अलफे का कोट, सफेद स्टॉकिंग और सफेद दुपट्टे में मुस्कराते-मुस्कराते आने लगा। जैसा कृत्रिम और अधम हास्य इस बंगले में आनेवाले प्रत्येक दरबारी के मुख पर फैला रहता था वही उसके मुंह पर भी फैला हुआ था।

एकदम जैसे बिजली कड़की हो, स्मिथ गरजा, "What do you want ?"

"Good morning Sir !" मुस्कराते हुए नीचे झुका, दुपट्टा ऊँ क

किया, फिर सरकारी वकील होने के इच्छुक नवागत ने कहा,
"Nothing Sir ! I came to see you, Sir !"

स्मिथ का छ फुट लम्बा शरीर, जैसे फौज की कवायद मे हो, इस प्रकार सीधा तन गया। उसने एकदम दोनो हाथ सिर पर सीधे उठाये।

"Well here I am. See me. Did you ? Now good morning." कहकर स्मिथ वहाँ से तिरस्कार-पूर्वक घूमा और लम्बे कदम रखता हुआ चला गया।

सिपाहियो की हँसी मे, माधवलाल, मिसेज़ स्मिथ और माभाई के दूर से सुनाई देते हुए अट्टहास मे, अपमानित वकील साहब भड़कदार कपड़ो की दयनीय स्थिति मे अल्पता का अनुभव करते हुए, बहुत दिनो से सेवित सरकारी वकील बनने के स्वप्नो को अदृश्य होते हुए देख रहे थे।

स्मिथ जब दलाल से मिलने गया, तब प्रमोदराय माभाई की तरफ मुड़े।

"सेठ, यह सब क्यो लाये हो ?"

"Special day—Special honour." माभाई ने सूत्र उच्चारण किया।

"ठीक है लेकिन अच्छा नही लगता। चाय तो यहाँ साहब ही देंगे।" अपने देशवासी का साहस देख कर प्रमोदराय को भी शर्म आने लगी थी।

माभाई ने जरा तैश में देखा, "मेरे हाथ की चाय मैडम साहब कब पीने वाली है !"

प्रमोदराय चुप हो गये। सुदर्शन ने पिता की ओर उपकार की दृष्टि से देखा। इस फिसलन पैदा करने वाले मक्खन के अगाध सागर मे एकमात्र यही स्थिर बिंदु दिखाई दिये।

दलाल को विदा कर साहब वापिस लौटा और उसने आराम कुर्सी पर ज़रा आराम करने का आडंबर कर पैर फैला दिये। क्या और कैसे बोलना चाहिये यह निश्चय करने के लिये वहाँ बैठे हुए हिन्दुस्तानी—बोने के लिये तैयार किसान जैसे बादलों की तरफ देखता है वैसे ही—इस अंग्रेज की तरफ देखते रहे।

"Well Served." मिसेज़ स्मिथ ने दांपत्य भाव से सहानुभूति प्रदर्शित की।

"ऐसे आदमी का मेरे यहाँ कोई काम नहीं। अच्छा, माभाई! अब तुम्हारी चाय का क्या हुआ?"

"Yes Sir! Yes Madam Sahib" माभाई एकदम कुर्सी पर से खड़ा हो गया और स्टोव की ओर लपका, "My tea ready, five minutes."

"बहुत उपकार।" मिसेज़ स्मिथ ने कहा, "पर मैं ही चाय मंगा रही हूँ, तुम्हे बनाने की जरूरत नहीं। ब्वाय चाय लाओ!"

No! No! No Madam Sahib! My tea, my milk, ready my hands. Special day, special honour—must take. My tea Your tea—thanks; put my tea take. Meharbani on poor servant—me. My tea—Madam Sahib," रुक-रुक कर सेठ माभाई बोला।

पर मिसेज़ स्मिथ पक्की निकली। सेठ माभाई की स्वयं अपने ही द्वारा प्रदर्शित की हुई सेवा वृत्ति मैडम को भी बुरी लगी। अंत में समझौता हुआ। सेठ की सामग्री मैडम ने अपने ब्वाय को दी और ब्वाय की लायी हुई चाय माभाई ने सब को पेश की। गाँव की गप्पें और साहब की खुशामद के बीच आधा घंटा बीत गया। चाय समाप्त होते ही सब ने विदा लेना शुरू किया। माभाई ने हर्षित होकर कोर्निस अदा की और अंग्रेजी भाषा का कत्ले-आम जारी

रक्खा। अपनी प्रतिभा की छाप सब पर छोड़ी। जाते वक्त स्मिथ ने हँस कर पीठ ठोकी, सेठ के हर्ष का पार नही रहा।

'You are a downright'—साहब ने एकदम रुक कर शब्द बदल दिये, "a rotter—Well, we will expect you on Mrs. Smith's next birthday."

फिर प्रमोदराय की बारी आयी।

"प्रमोदराय तुम्हारा लड़का तुम्हारे जैसा ही अच्छा है।" कह कर मिसेज़ स्मिथ ने सुदर्शन की ठोड़ी उँगली से उचकाई। "मेरे ख्याल मे तो माभाई ने इस बेचारे को घबरा दिया है।"

सिर पर हाथ रख अपनी सलाम वजा कर सुदर्शन ने विदा ली।

आती बार सब माधवलाल की फीटन में आये। सेठ माभाई रोटर—रोटर शब्द याद कर रहा था। इस शब्द तक उसका अंग्रेजी का ज्ञान पहुँचा न था, पर बादशाह के आगामी जन्म-दिवस पर उसमें 'रावसाहब' बनने की शक्ति थी, या नही, केवल यही विचार सेठ कर रहा था।

## ५

सुदर्शन एक अचेतन अवस्था में घर आया। आज का संपूर्ण प्रसंग उसे प्राणघातक लगा।

गत दिवस के निमंत्रण ने उसको आघात पहुँचाया; अपने पिता की पराधीनता से उसकी आत्मा छटपटा उठी। कंपाउंड के बाहर गाड़ी छोड़ कर अंदर जाने के अनुभव से उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँची और उसके पिता की तथा माधवलाल की खुशामद भरी बातो नें उसे क्रुद्ध कर दिया, पर माभाई के रूपरग और ढंग, उसकी खुशामद और बोलचाल, दलाल के प्रति स्मिथ का व्यवहार, इनमें से प्रत्येक वस्तु ने उसके गौरव और अभिमान पर

घातक चोट पहुँचाई थी। इन आघातो के प्रभाव से उसका गर्व निश्चेतन हो गया था।

उसे केवल एक बात का ज्ञान रहा। उसका और उसके पिता का गौरव, उसकी और उनके पूर्वजो की महत्ता, यह केवल उसकी झूठी कल्पना ही थी। वे सब अपने देश के रहने वाले—माधव-लाल, प्रमोदराय, वह स्वय— एकमात्र अलग-अलग स्वरूप मे सेठ माभाई और दलाल वकील थे। अभी कुछ दिन पहले सीखी हुई सस्कृत सूक्तियो मे से एक चित्र उसके मस्तिष्क मे आया। उन सब की क्रिया मे जीवन का अभाव था।

'लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपात
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शन च।'

उसकी पीडित कल्पना-सृष्टि ने एक महान् श्वान-सृष्टि का निर्माण किया। सब स्मिथ के बगले की तरफ जा रही थी। माभाई सेठ जैसे बगले में बैठकर चाय पीकर, पूँछ फटकार रहे थे। दलाल जैसे श्वान बगले में न जा सकने के कारण, निराश हृदय से बाहर ही बैठे हुए अपनी पूँछ हिला रहे थे और चबुतरे पर बैठकर चाय पीने की लालसा के लिये एक दूसरे की तरफ घूर रहे थे।

परशुराम और सगर, भीष्म और कृष्ण, चाणक्य और शिवाजी, बादलो में दिखाई देने वाले महामेघ थे। क्रॉमवेल, चेथाम, जॉन आफ आर्क, नैपोलियन और दूसरे वीर—स्मिथ के वीर मृगमरीचिका की तरह थे। वह स्वय तो एक छोटा माभाई था। वह उसकी तरह पूँछ हिलाता। उसके संबधी दूसरो से भीख माँग कर जीते थे, दूसरो के पैर चाट-कर नाचते थे। उसकी मानवता एकमात्र दूसरो के टुकडे खा कर जीवत रहने मे ही थी। मक्खी की नही, 'रतनबाई' की नही किन्तु उससे भी निर्जीव, माभाई की-सी पराधीन अधमता के आस्वादन मे ही उनके जीवन का साफल्य था।

भग्न गौरव सुदर्शन मे इस प्रकार शर्म के गढ्ढे में पडे-पड़े अब डुबकियाँ लगाने की शक्ति भी अवशेष न रही थी। अपनी प्रिय पुस्तकों को अपने पतित और अस्वस्थ स्पर्श से वह कलुषित न कर सका। वह दीन, अधम, खुशामदी और पराधीन मनुष्य-जंतु था। उसके जैसो की अधमता संसार प्रसिद्ध थी। उसके कलंक को दसो दिशाओ में फैलाने के लिये सूर्य प्रतिदिन उगता था और तीनो भुवनो मे कोई भी जगह ऐसी नही थी कि जहाँ छिपकर वह अपनी अल्पता की लज्जा छिपा सके।

अपने को तथा अपने जैसे दूसरे व्यक्तियो को धिक्कारता हुआ सुदर्शन सारे दिन सिर मे दर्द का बहाना लेकर सोता रहा। उसकी आँखो से कई बार आँसू निकले, कई बार उसको जी भर कर रोने का मन हुआ। इस निर्जीवता का अनुभव करते हुए उसने अनेक बार मृत्यु को भी निमन्त्रण दिया।

पर रात मे उसकी आकुलता का पार न रहा। अधकार के प्रभाव ने उसकी अधमता को भी क्षुद्र और निर्जीव कर दिया। उसको किसी तरह भी नीद नही आई।

आज हर तरफ से कुत्ते जीभ बाहर निकाल कर दौडे चले आ रहे थे। चारो दिशाएँ पूँछो की फटकार से प्रतिध्वनित हो रही थी। पूँछो की कतार की कतार पानी के रेले की तरह उसके आगे घुसी चली आ रही थी। कितने ही पूँछ वाले पगड़ी पहने हुए, कितने ही टोपी लगाये हुए थें, पर सब आ रहे थे उसकी ओर। उस निविड़ अधकारपूर्ण श्वान-सृष्टि में भी वह माधवलाल, माभाई और अपने पिता की पूँछ पहचान सकता था। वास्तव मे वे सब, सूखी हड्डियो की कतार जैसे, मरियल और रोमाञ्चित कर देवे ऐसे रग के, अहमदाबाद की गलियो के सडियल कुत्तों जैसे थे।

आस-पास के कुत्ते छिप गये थे और उनका समूह क्षितिज पर जहाँ तारे चमकते है वहाँ तक फैला हुआ था।

वह बीच में खड़ा था और उसके भी ज़ोर से हिलती हुई पूँछ थी। उसकी कमर में और पैरो में 'रतनबाई' के घुंघरु बँधे हुए थे। उन घुंघरुओ की झनकार से सब खिंचे चले आते और लटकती हुई जीभ और हिलती हुई दुम का तमाशा दिखाने के लिये कहते और आगे चलने के लिये प्रार्थना करते। किसी जगह—कहाँ यह तो स्पष्ट नहीं वे जाना चाहते थे। और वहाँ जाने का रास्ता केवल उसे ही मालूम था। महाशोक से उसका हृदय भर आया। वह अकेला ही मार्ग जानता था। इस पर भी उसे वह रास्ता दिखाई नही दे रहा था।

समूह बढता गया। आकाश में भी पूँछ, जीभ और आँखे उड़ने लगी। सब उसकी प्रार्थना कर रहे थे, और साथ ही उसको घबरा देने के लिये गुर्राते थे। सब कोई वहाँ जाना चाहते थे लेकिन रास्ता तो वही जानता था, वह चलने लगा पर चलते न बना। उसने बोलना चाहा किन्तु बोल न सका। उसकी पूंछ में हिलने की शक्ति भी घटने लगी।

किसी स्थान पर कोई आवाज हुई और सब डर गये। सब भय से व्याकुल होकर एक दूसरे पर कूदने लगे। फिर आवाज़ हुई और सब भाग निकले। चारो ओर दौड़े। किसी का जी ठिकाने न था। किसी की पूँछ या पैर बाहर दिखाई नही दे रहे थे। एक पर एक कूदते, एक दूसरे को पीछे ढकेलते, सब भाग निकले...और विशाल पर्वतो के गह्वरो में छिपने लगे।

पर उसके लिये कहीं भी जगह न थी। जहाँ भी वह जाता वही एक अनिवार्य भय दिखाई देता था। चारो ओर से रास्ता घिर जाता और वह पीछे लौटता। न भूंक सकता था और न पूँछ हिला सकता था। उसे कोई दिखाई नही देता था फिर भी अपने प्राणों में वह एक प्रकार की घुटन का अनुभव कर रहा था। वह दौड़ा, मीलों तक—

युग-युग तक, पर न तो भय ही मिटा न दौड़ना ही रुका और न समय ही समाप्त हुआ। दिशाओं में उसके लिये स्थान न था, पर्वतों में उसके लिये आश्रय न था, नदियों का जल भी उसे अपनी गोद में नहीं लेता था। उसने कोई काम ऐसा किया था, कि जिससे विश्व ने उसका बहिष्कार कर दिया। भयंकर शाप से पीड़ित, अनंत काल तक वह पैरों में पूंछ दबाये हुए दौड़ता ही रहा...कारण समझ में न आता था ..अंत में समझ में आया ...उसने माभाई सेठ की गाय का दूध पी लिया था; और उस अपराध को क्षमा करने की शक्ति क्षीरसागर-वासी में भी नहीं थी...

सुदर्शन कांपता हुआ उठ बैठा। उसका शरीर पसीने से भीगा हुआ था। उसने आंखें खोलने का प्रयत्न किया। दीपक के क्षीण प्रकाश में फिर उसे पूंछड़ियाँ पटकती हुई दिखाई दीं। पर थोड़ी देर में उसने गंगा भाभी और प्रमोदराय को अपने-अपने बिस्तर पर सोते हुए देखा। यम से भी अधिक भयंकर त्रास से कांपता हुआ वह अपने मुंह को रजाई में लपेट कर पड़ रहा।

प्रातःकाल होते ही रात्रि का त्रास भी जाता रहा, पर अधमता का भान और अधिक तीव्र हो गया था। सेंट हेलेना में झुरझुर कर मरते हुए विश्वविजेता नेपोलियन की क्रोधमय निराशा ने उसके हृदय में अपना घर बना लिया था। सुदर्शन में हिम्मत थी, अतः उसने तुरन्त ही इस निराशा की सीमा तथा गहराई को खोजना आरम्भ कर दिया। मगर से शिवाजी तक जिन्होंने सदैव दिग्विजय का गौरवधारण किया था वे आज माभाई सेठ कैसे बन गये? उसे अपनी बालबुद्धि की चरम सीमा का पता लगा, उसके अध्ययन में, उसके विचारों में और स्वप्नों में इस प्रश्न का निराकरण उसे मिला नहीं।

उस दिन के प्रसंगों में उसे स्मिथ का अपराध तो जरा भी दिखाई नहीं दिया। उग्र प्रमोदराय नम्र हो जाय, प्रतिष्ठित माधवलाल

खुशामद करे, धनवान भांभाई विदूषक सी हास्यजनक अधमता दिखावे, विद्वान दलाल लालच का मारा हुआ, नाक रगड़े, फिर स्मिथ और क्या करे ? स्मिथ शक्तिशाली, स्वतंत्र सत्ताशील था। इन सब को शक्तिशाली, स्वतंत्र और सत्ताशील होने से कौन रोकता था ? ये सब ऐसे असहाय, पराधीन, दीन, पराश्रित दुम हिलाने वाले कुत्ते कैसे हो गये थे ?

उसका ध्यान पादरी कृत हिंद के इतिहास की ओर गया, और सिंहगढ़ से स्मिथ के बंगले तक की भारतीय घटनाओ को समझने का प्रयत्न किया। पादरी ने अंग्रेजी धृष्टता से इतिहास लिखा था और भारतवासियो की शक्ति, न्याय अथवा विचारो को सम्मान देने की परवाह भी न की थी। उसकी समझ में, भारतीय अर्थात् जंगली और अशक्त; अंग्रेज अर्थात् देवदूत और इतिहास अर्थात् काले रावण पर स्थापित की हुई गोरे राम की विजय-रामायण। सुदर्शन ने इस अधमता के विष को घूंट-घूंट कर पिया। प्रत्येक घूंट में पराजय, निर्वीर्यता और अव्यवस्था मूर्तिमान हुई। कम्पनी आई, पट्टा लिया, केन्द्र स्थापना की; भारतीयो को ही भारत के विरुद्ध तैयार किया; देशी राजाओ को आपस में लड़ाया; प्लासी के मैदान में कंपनी ने भारतवासियो के खून से ही भारत की सत्ता खरीदी; मैसूर का पतन हुआ, अवध का पतन हुआ और बंगाल का पतन हुआ; अँधेरे में भागते हुए—घबराये हुए—सैनिको की तरह भारतवासियो का ही गला काटा। मुगल राज्य का जाज्वल्यमान विशाल गौरव धूल में मिल गया। मराठो की सत्ता भी अपने दुर्भाग्य से गिरने लगी। खड़की के मैदान में व्यापारी कंपनी भारतवर्ष की स्वामिनी बनी। सन् सत्तावन के विद्रोह में अंग्रेजो ने मुगल सिंहासन पर भी अधिकार कर लिया और सुदर्शन फटी हुई आँखो से लज्जा से प्रकम्पित पराजय की तीव्र वेदना से तड़पता हुआ हाथ से पुस्तक फेंक कर निराश होकर पृथ्वी पर

पड़ रहा और देश की अधमता का कलंक अपने गर्म-गर्म आँसुओ से धोने का निष्फल प्रयत्न करता रहा।

६

निराशा के पाताल में सुदर्शन अवश्य दब गया था, पर फिर भी उसकी कल्पना का प्राबल्य और निरीक्षण शक्ति की सूक्ष्मता नही घटी थी। लज्जा में तीव्र वेदना का अनुभव कर रहा था; इस पर भी अपनी अल्पता का स्पष्टीकरण और उसके मूल मे छिपी हुई दुर्बलता का संशोधन उसने जारी रखा।

अपनी अल्पता का स्पष्टीकरण उसने उतनी उम्र के लडके में उत्पन्न होने वाले निर्भय अविचार से किया। उसने देखा वह—और उस जैसे सब—निर्जीव थे और इसी कारण उन्होने प्लासी और खडकी के मैदान में भारत हाथो से निकल जाने दिया और आज भेडो के झुड की तरह एक गड़रिये से हाँके जा रहे थे।

कितने ही प्रश्न उसके कान में गूंजा करते थे। वह स्वयं और सारे माभाई कैसे थे? स्मिथ सत्ताधारी क्यो था? प्लासी और खडकी के मैदान में क्यो हारे? स्मिथ क्यो जीता? इग्लैंड ने हिंद पर कैसे विजय प्राप्त की! भयंकर प्रश्न! इतिहास, समाजशास्त्र, राजकीय विकास के इन गहन प्रश्नो का निराकरण एक अज्ञान बालक की धृष्टता से उसने माँगा। त्रिकालज्ञ को भी दुष्प्राप्य इन प्रश्नो का निराकरण न होने से वह अपने विचारो मे दृढ होकर और भी गभीर अध्ययन, गहन निरीक्षण और सूक्ष्म सशोधन करने बैठा।

थोड़े दिनो बाद वह अपने पिता के साथ वहाँ के क्लब में गया। उसके माधवलाल प्रमुख तथा सेठ माभाई और दलाल अग्रगण्य सदस्य थे। सुदर्शन को ऐसा लगा कि इस क्लब की स्थापना इस आशय को लेकर हुई थी कि सरकारी मेहरबानी मे एक दूसरे को आगे

क्यो नही कही ? और उसके पिता सब से महान है यह भ्रम कैसे पैदा हुआ ? स्मिथ एक महान् सत्ताधिकारी है; उसको बहुत बड़ी तनख्वाह मिलती है। वायसराय समस्त देश का राजा है, उसको लाखो रुपये मिलते है। इसका पिता किसी दिन भी स्मिथ या वायसराय होने वाला नही फिर भी उनके आस पास के लोग उनको 'देव' 'राजा' और अन्नदाता कह कर पुकारते है। उसका पिता गाँव में और जाति मे, पैसे वाला तथा शासक है, क्या इसी से उसे भ्रम होता है ? चार सौ घरो की छोटी सी जाति के भूखे और अपढ समूह पर शासन करने वाले लोगो मे उसका पिता अग्रगण्य है क्या इसीलिये ? जब लोग प्रतिष्ठा और महत्ता की बात करते तो एक मात्र उनका उद्देश्य क्या इन चार सौ घरो से ही होता था ? सुदर्शन ऐसे प्रश्न चिता और द्वेष अपने से पूछता रहा। प्रत्येक गाँव में पचासो जाति वाले रहते है और प्रत्येक जाति में दस पन्द्रह 'राजा' और 'देव' है। ऐसे अगणित गाँव मिल कर ही भारतवर्ष बना है। भारतवर्ष जैसे अनेक देश दुनिया में है और इन सब पर एक कोने में पडे हुए छोटे द्वीप के पुत्र—क्रॉमवेल और चेथाम के वारिस—थोडे से स्मिथ जाकर शासन करते है, और इस पर भी प्रत्येक जाति के 'देव' और 'राजा' अज्ञानता के अंधकार में अभिमान से छाती क्यो फुलाते है ?

और क्या यह भ्रम सेठ माभाई जैसे लोग पैदा कर रहे है ? क्या प्रत्येक व्यक्ति स्मिथ की मेहरबानी के नाप से अपनी सत्ता मापता था ? क्या स्मिथ को जो अधिक प्रिय हो वही अधिक महान् है ?

सुदर्शन के हृदय में चिंगारियाँ उठती और भ्रम मे भटकते हुए अंधो की आँखें खोलकर उनकी अधमता का साक्षात् दर्शन कराती।

# विप्लव-प्रेम

१

निराश हृदय में स्वप्न-सृष्टि नही होती, अतः स्वप्न-विहीन सुदर्शन आसानी से मेट्रिक परीक्षा मे पास हो गया। पिता, माता, सगे-संबन्धी सभी खुश हुए, पर एकमात्र सुदर्शन को ऐसा लगा कि जैसे 'रतनबाई' को एक घूंघरु और अधिक बाँध दिया गया हो।

अब सुदर्शन गभीर, एकांतप्रिय तथा मितभाषी हो गया था। निर्जीवता का ज्ञान सचय करने में उसका संपूर्ण उत्साह विलीन हो गया। किंतु पहले प्रयास मे ही मेट्रिक पास कर लेने वाले महारथी को निरुत्साही कौन समझ सकता है ?

उम्र के अनुभव के साथ-साथ उसकी व्यवहार-बुद्धि बढी और उसकी तीव्र दृष्टि ने वस्तुओ को वास्तविक रूप में देखना आरभ किया और परीक्षा के बाद की छुट्टियाँ उसने चारो ओर का निरीक्षण करने में, यथाशक्ति पढने मे और अपने स्वप्नो के भग्नगौरव खँडहरो मे भटकने में ही व्यतीत की।

अल्पता के विष का पूरा-पूरा आस्वाद लेने के लिये तीव्र भावना ने उसके हृदय मे डंक मारा और जो पुस्तक इस भावना का पोषण करे वही उसने पढना आरंभ किया। अपनी अधमता को अपनी आँखो से न देख कर दूसरे की आँखो से देखने की इच्छा हुई।

क्रोध, द्वेष और तृपार्तता से उसने मेकाले का बंगाली बाबू का वर्णन पढा। हाँ, वह—माभाई—बाबू था, वह झूठा था असहाय था, अविश्वासी था। फिर आनंद स्टेशन पर मिलने वाली पादरियो की टीका से समलंकृत पुस्तकें उसने पढ़ी। 'मानव-धर्मशास्त्र'

रामायण और महाभारत की टीकाओं में उगला हुआ जहर उसने एक अघोरी की लिप्सा से पिया। राम निकम्मा, भीष्म निर्वीर्य; कृष्ण लुफंगा; ब्राह्मणत्वमें नीति नही, योग में शक्ति नही, शास्त्रो में सस्कृति नही, और विद्वत्ता, विनय नीति और संस्कृति पेलेस्टाइन के मछुए के गुरु नेजेरथ के बनाने वाले मे। इस दृष्टिकोण से सुदर्शन का हृदय टुकडे-टुकड़े हो गया।

टेलर ने और भी रहा-सहा पूरा कर दिया। उसने लिखा कि जैसे पीड़ित जनता को बचाने के लिये क्रिस्ट आये वैसे ही पिंडारी और ठगों से पीडित हिंद को बचाने के लिये अग्रेज आये। रडयार्ड किपलिग और कितने ही दूसरे अँग्रेजो के उपन्यास पढ़कर उसे विश्वास हो गया कि भारत मे साहब और मेमो के आदर्श जोड़े रहते है। और बाकी सब लुच्चे, आलसी और नीच खानसामा ब्वाय-पखा कुली और मदारी, ये सब साहबो को रिझाने के लिये पैदा हुए है। अंग्रेजी पत्रो में छपने वाले चित्र मे भिखारियो को भावी हिन्दुस्तानियों की तरह और मदारियों को तथा वेश्याओ को हिन्दुस्तान की विशेपता बताते हुए चित्रित किया गया था। उनका हलाहल विष भी उसने पिया। राष्ट्रीयता को इस बुरे तरीके से चित्रित करने वाले विजय के नशे में एकमात्र अपने संसर्ग में आये हुए थोडे से क्षुद्र मनुष्यो को भारत के प्रतिनिधि समझ बैठे है, इस सत्यता का भान भी सुदर्शन को न रहा। पहले तो इसे ऐसा ही लगा कि ये सब बातें ठीक है। उसके जगलो और निकम्मे पूर्वजो ने अज्ञान और अधकार से परिपूर्ण सस्कार बनाये, उसके कायर और नीच स्वप्न-मित्रो ने देश को छिन्न-भिन्न किया और लोभी ब्राह्मणो तथा खूनी ठगो ने सब के प्राण लेने की तैयारी की। क्लाइव कल्की अवतार लेकर आया, मैकाले ने बुद्ध पद का मार्ग बताया और ब्राह्मणो तथा ठगो से विनर्मुक्त पृथ्वी पर वे धीरे-धीरे सभ्य बने, साहबो को अमर छाया के नीचे अतुल आनद मे जीवन बिताने लगे।

इन पुस्तको को सामने रखकर, उनमे समाये विष को पी-पी कर वह पागल-सा हो गया। वह गुर्राता, दाँत किटकिटाता पडा रहता। रात दिन एक ओर तो वह पीडारियो, ठगो मदारियो और पंखा-कुलियों से सुशोभित स्वप्नो की वेदना सहता, दूसरी ओर वह अपने जातिवाले, माभाई और दूसरे बड़े आदमियो की ओर अपने लोगो के निर्जीव रहन-सहन के प्रति क्रूर तिरस्कार वृत्ति से क्रोध अनुभव करता। उसे सध्या करनी अच्छी नही लगती। कितनी पीढियाँ संध्या करते-करते बीत गईं किंतु कल्याण क्या हुआ? महादेव के दर्शन भी उसे अच्छे नही लगते। इतनी शताब्दियो तक पूजा की, पर उससे कौन सा लाभ हुआ? सब उसके दुश्मन थे, सब उसको कुचले डाल रहे थे। उसकी सृष्टि का गौरव नष्ट हो गया। जीवन मे कोई रस न रहा।

उसकी मानवता की अथाह गहराई से एक काला, अति भयानक बादल उठा। और धीमे-धीमे उसकी चिन्ता, निराशा और अल्पता के भाव को और उसकी तिरस्कार-वृत्ति को ढकने लगा। उसके घोर अंधकार में उसकी स्वप्न-लोक बसाने की शक्ति मारी गई और उसके मृतप्राय उत्साह की बुझती हुई चेतना जैसे बिल्कुल बुझ गई हो ऐसा लगा। इस बादल के फैले हुए अंधकार ने वैदिक वृत्र की तरह उसके जीवन को लपेट लिया। उसकी आत्मा पर अनन्त कालरात्रि उतर आयी। उसके प्राण घुट रहे हो ऐसा उसे लगा।

कभी-कभी एक छोटी-सी वस्तु भी मानव-हृदय मे प्रलय उठा देती है। बुढापा देखकर शाक्य मुनि बुद्ध हो गया, चूहे को देख कर दयानंद महर्षि हुए। एक भोली-भाली लडकी की हँसी से सुदर्शन के जीवन पर छाया हुआ बादल भी घना हो गया।

उसके पड़ोस में एक दूसरी जाति की लडकी रहती थी। वह सुदर्शन से एक-दो साल छोटी थी। बार-बार वे दोनो मिलते, हँसते

और यदि सुदर्शन का मस्तिष्क गांभीर्य युक्त न होता तो खेलते भी।

सुदर्शन को स्त्रियाँ जरा भी अच्छी नही लगती थी। उनको देख कर उसे ज़रा क्षोभ हुआ करता। उसकी धारणा थी कि स्त्रियाँ संयोगिता की तरह पृथ्वीराज का पैर पकडकर नीचे गिराने के लिये ही पैदा हुई थी। उसके जीवन में स्त्री के लिये कोई स्थान है यह उसे दिखाई न दिया। एक दिन उसके माँ-बाप उसके विवाह की बात कर रहे थे, उसने सुनी। यह बात उसके मस्तिष्क में कभी भी न आई थी कि किसी दिन उसे भी विवाह करना पडेगा, बात आज आई। दूसरे दिन उसे गमन मिली। उसका विवाह होने वाला है ऐसी बाते होते हुए उसने सुनी थी।

"गमन ! तेरा विवाह होने वाला है ?"

"हाँ, मेरे बाबू जी कह तो रहे थे।" लज्जा से हँसते हुए गमन ने कहा। "तुम्हारा विवाह कब होगा ?"

"मै विवाह नही करूँगा।"

"यह कैसे हो सकता है ?" जरा रुक-रुक कर गमन ने कहा।

"हाँ, बहुत से लोग ब्रह्मचारी रहते है।"

संसार में रस लेनेवाली गमन हँसी, "तुमसे कही ब्रह्मचारी रहा जा सकता है ? तुम्हारे बाबूजी जरूर ब्याहेगे। पर कह तो सही।" जरा नीचे देख कर लड़की ने कहा, "तुम्हे विवाह करना अच्छा क्यो नही लगता ?"

"मै किसी को जानता ही नही। किससे विवाह करूँ ?" सोचते हुए सुदर्शन ने कहा।

"यह तो तुम्हारी माँ जानती होगी न ?"

"इससे मुझे क्या लेना ?" सुदर्शन ने गभीर होकर कहा और हर-एक बात में उम्र से अधिक गंभीरता रखने की आदत होने के

कारण एक अजान लड़की के साथ विवाह होने के भय से बहुत अधिक भयभीत हो उठा और उसके मुँह से निकल ही गया, "मैं तो तुझे जानता हूँ।"

छोकरी खिलखिलाकर हँस पड़ी, "हाय माँ! कही मुझसे तुम्हारी शादी हो सकती है?" वह हँसी। उसने सुदर्शन की ओर भय से देखा।

"क्यो नही?"

"मैं कही तुम्हारी जाति की हूँ?"

"इससे क्या होता है? सुदर्शन ने कहा।

"मैं तो दूसरी जाति की हूँ।"

"इससे क्या?", होठ भीचकर सुदर्शन ने फिर कहा।

"शादी नही हो सकती। कही पागल हो गये हो?" कह कर गमन चली गई। इतना बड़ा लडका इतना भी नही समझता? उसे कुछ विचित्र-सा लगा।

सुदर्शन एक भयंकर वृत्र के पंजे मे था। भयानक व्यग्रता तो उसकी आत्मा में थी—और इस लड़की की हँसी और जिस निश्चलता से उसने मना किया था, इन दोनो से वह जिद में भर गया। विस्मृति का अंतिम आवरण मस्तिष्क पर छा जाने से पहले ही वह अपनी ज़िद को अंतिम चोट लगा कर ऊपर आया।

वह अपनी माँ के पास गया। "माँ! तुम कुछ मेरे विवाह की बातें कर रही थीं; पर मुझे विवाह ही नही करना।"

गंगा भाभी हँसी, "तू इतना बड़ा हो गया पर कभी ऐसी बात करता है कि......!"

यदि मेरा विवाह करना ही हो तो गमन के साथ करना।" उसने हुक्म दिया।

"अरे कही पागल हो गया है!'...उसके मस्तिष्क में वही शब्द

गूँज उठे......बादल हटा। उसने दाँत पीसकर पैर पटके और आँखें निकाल कर बोला "हाँ, हाँ, मैं पागल हो गया हूँ। अब कुछ कहना है? यह भी न करो और वह भी न करो। मैं कुछ मानने वाला नही।" कह कर वह क्रोध से पैर पटकता हुआ जीने पर चढ गया।

२

सुदर्शन की रग-रग में एक ऐसी सुरसुराहट हुई जैसी देवदारु के वनो में होती है। उसका छोटा-सा शरीर उग्रता से काँप उठा। उसकी आँखो मे एक प्रकार का तेज चमका। उसके हृदय-सागर में तूफान आया। इस निर्जीव प्रसंग से उसके जीवन को लपेटे रहने वाला भयंकर बादल, अपनी घुटन का अंत कर टुकड़े-टुकड़े हो गया।

"मेरे पूर्वज निकम्मे; मेरा देश दरिद्र; मेरी इतिहास कायर; मेरी दुनिया संकुचित; मेरी जात छोटी-सी; मेरे पिता नौकर; मेरे रिश्तेदार कुत्ते; मै 'रतनबाई; मै लड़ नही सकता; मैं वायसराय नही हो सकता; मै शिवाजी नही बन सकता; मै विश्वामित्र नहीं हो सकता; मै अविवाहित नही रह सकता, मैं गमन से विवाह नही कर सकता; मैं—मै कुछ नही कर सकता। सब ने मेरे लिये सब कुछ तैयार कर दिया है और मुझे सब के तलवे चाट-चाट कर जिंदगी पूरी करनी है। मै नही करूंगा! मेरा कोई नही। मेरे पूर्वज नही—बाप नही—माँ नही—स्त्री नहीं। मै ब्राह्मण नहीं—मै हिंदुस्तानी नही—नही—नही—हूँ, वह तो मैं ही हूँ। मै किसी का बनाया हुआ स्वीकार नही करूँगा। मै किसी का कहा मानने वाला नही। मै सब कुछ तोड़ डालूंगा। मुझको चारों तरफ से कुचलना शुरू कर दिया है पर मै कुचला नही जा सकता। यदि निर्माण नही कर सकता, तो विध्वंस तो कर सकता

हूँ। मै किसी का बँधा हुआ नही। मै मर भले ही जाऊँ पर सब तोड़-फोड़ कर चौपट कर दूँगा।"

उसकी घुटन जाती रही। आँधी की विनाशक वृत्ति ने स्वभाव और सस्कार के मूल को हिला दिया। प्रलय की मूसलाधार वर्षा में सब धुल-धुल कर बहा जाने लगा। बचपन का क्रोध उसे प्रेरणा देता रहा। वह अपनी मेज के पास गया और इतिहास तथा उपन्यास की प्रिय पुस्तकें मेज के नीचे फेक दी। "दगाबाज़! यहाँ पड़ी रहो, मुझे अब तुम्हारे साथ कुछ लेना-देना नही।" उसका छोटा सा शरीर चढाये हुए धनुष की तरह तन गया था और बाण छोड़ने की अधीरता में जरा सी देर के बाद ही काँप उठता था। उसके हृदय के तूफान ने हास्यजनक पागलपन का स्वरूप ले लिया।

लबे-लबे कदम रखता हुआ वह पड़ोस के मदिर में जा पहुँचा। महादेव की प्रार्थना या उससे फरियाद करने की उसे जरा भी परवाह नही थी। वह धृष्टता से अपने देवाधिदेव के पास गया।

"यहाँ बैठे-बैठे क्या करते हो? कितने वर्ष हो गये तुम्हारी पूजा की, तुम्हें रिझाया, तुम्हारी आराधना की, फिर भी अन्त मे हमारी और तुम्हारी यह दशा! वृद्ध और निकम्मे दैव! तुम्हारे जैसे अशक्त की पूजा मै आज से नही करूँगा। तुम मेरे देव नही, मै तुम्हारा भक्त नही, तुम अपने रास्ते और मै अपने रास्ते।" इतने में उसकी नजर अपने जनेऊ पर पड़ी और उसने आँखें निकाली। उसने एकदम जोर से जनेऊ निकाल डाला और इतने वर्ष तक जिसे पवित्र से पवित्र गिना था उसे तिरस्कार से देखने लगा। "डोरी! धागे! आज से तुझे नही पहनूंगा!" वह खिलखिला कर हँसा, "बलमस्तु तेज। बल और तेज मुझमे—हमारे में। नही—नहीं। तुझे पहना कि बल गया। तेज गया तुझे पाकर हमे क्या मिला? जब खड़की के मैदान मे पेशवा की पराजय हुई तब तू कहाँ चला गया था? जा—जा!'

कह कर उसने असाधारण जोर से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और पीछे देखे बिना ही वह मंदिर से चला गया। अपनी पुस्तकों, अपनी पूजा और अपने यज्ञोपवीत का बंधन तोड़ देने पर उसे अपने प्राणों की घुटन कुछ हलकी हुई, ऐसा लगा। वातावरण साफ हुआ और अब उसने जरा श्वास लिया। वह फिर अपने घर आया और प्रमोदराय के दीवानखाने में जाकर उनकी मेज की ओर देखता रहा।

"तुम्हारा भी हमने स्वागत किया, तुम्हारी गुलामी की और फिर हमारी यह दशा ! जाओ।" पत्रों के ढेर को अंग्रेजी सत्ता का प्रतिनिधि समझ कर उसको संबोधित किया. "जहन्नुम में ...! आज से मैं तुम्हारा गुलाम नहीं। जो हो सो कर लेना। मैं देख लूंगा।" उसने मुट्ठियाँ बाँध कर कहा।

सहसा उसने सामने पड़े हुए शीशे में अपनी फरफराती हुई शिखा देखी। एकदम उससे द्वेष का उफान आया। और मेज पर से कैंची उठाकर एक ही झटके में ब्राह्मणत्व के दूसरे चिह्न का भी अंत कर दिया।

अब उसे ठीक लगा। अब वह स्वतंत्र था, किसी का बँधा हुआ नहीं। तीसरी मंजिल पर जाकर खिड़की से वह अपने चारों ओर की छतों को विनाशवृत्ति से देखता रहा।

प्रत्येक छत के नीचे अल्पता, अधमता, माभाईपना और अंधकार ही उसे दिखाई दिया। छोटे-छोटे आदमी बरसाती कीड़ों की तरह गंदे छप्परों के नीचे चले जा रहे थे। प्रत्येक पत्थर की निश्चेतन अडिगता उसे घबराया करती थी या कुचला करती थी। एक पत्थर के डर से वह जनेऊ पहनता था, एक पत्थर के डर से वह मंदिर में जाता था; एक पत्थर के डर से वह विवाह भी कर लेता, एक पत्थर के डर से वह एक दूसरे को रिझाता, एक पत्थर के डर से वह माभाई सेठ बन कर चाय बनाने जाता; एक पत्थर के डर से

वह उन्ही पुराने संस्कारो से लिपटा रह कर अपनी पुरानी पीढ़ियो का ही निर्जीव धंधा करता। पत्थर अगणित थे। पत्थरो की छाया जीवन के प्रत्येक अंग पर फैली हुई थी। कोई भी इस दुनिया मे इन पत्थरो के बिना न जीता था। वह अकेला ही इन सब पत्थरो को फटकारता रहा। उसने अकेले ही इन पत्थरो की छाया का तिरस्कार किया और आकाश के नीचे अकेले ही रहने का निश्चय कर लिया था। वह अकेला था। पत्थर अनेक थे; वह उन्हे डराता पर स्वयं निडर था। उसने छतो की ओर घूंसा तान कर कहा, "एक-एक पत्थर को तोड़-फोड़ कर चूर-चूर कर दूँगा!" वह बड़बड़ाया, "मै अकेला ही बहुत हूँ, मुझ अकेले ने ही तुम्हारे जाल मे से निकलने की हिम्मत की है, मै अकेला ही तुम्हारा खात्मा कर दूँगा।" और प्रत्येक छत को कैसे तोड़ा जाय इसका वह विचार करता रहा।

उसकी अपनी छत सब से खराब थी, उसके नीचे उसने अपनी अल्पता का स्वाद चक्खा था। उसका ब्राह्मण जीवन नष्ट हो चुका था। उसकी स्वप्न-सृष्टि विनाश के गर्भ मे विलीन हो गई थी। सब पत्थरो में यह पत्थर विविध रग वाला तथा अधिक त्रास देने वाला था। उससे आज छुटकारा मिला। उसके नीचे से निकल कर, दूर जाकर वह उसके विरुद्ध खड़ा हो गया। इस पत्थर को तोड कर अपनी नवीन स्वतंत्रता का उत्सव मनाने का संकल्प उसने किया। यह पत्थर तोड़ना आसान भी लगा। वह एकदम उठा और एक छलाँग मार कर उस पत्थर पर—छत पर जा बैठा। अब इस दुष्ट पत्थर के ऊपर वह था—नीचे नही। उसने नीचे झुक कर पत्थर तोड़ना शुरू किया। उसके हाथ मे पत्थर के टुकड़े जल्दी-जल्दी आने लगे और उनको दूर फेकते-फेकते वह थकने लगा। उसे विजय की धुन सवार हो गई। उसने जल्दी-जल्दी पत्थर को चूर-चूर करना आरम्भ कर दिया।

प्रमोदराय शाम को घर आये तो मेज पर सुदर्शन की शिखा के बाल पड़े हुए देख कर उनके गुस्से का पार नही रहा। क्या लड़का इतना हाथ से निकल गया कि शिखा काट डाली ? उग्र स्वभाव वाले रायबहादुर ने "सदु ! सदु !" कह कर पुकारा पर कुछ जवाब नही मिला। पर इतने में छत के ऊपर पत्थर तोड़ने की आवाज़ सुनाई दी। उनकी कुछ समझ में नही आया और गुस्सा अधिक बढा; वह एकदम रोशनदान के पास गये और देखा तो सुदर्शन पत्थर के टुकडे उठा कर चारों ओर फेंक रहा था और हँस रहा था।

"सदु क्या कर रहा है ?"

जवाब मे एक मोटा पत्थर का टुकड़ा उनके पास भी आ पड़ा। सुदर्शन खिलखिला कर हँसा। रायबहादुर ने उसे पास बुलाया पर वह आया नही। आखिर रायबहादुर छत पर चढे और बड़ी मुश्किल से सुदर्शन को पकडा।

उन्होंने जैसे ही सुदर्शन को पकड़ा कि वह बेजान-सा उनके हाथ पर आ गिरा। रायबहादुर ने चिंताग्रस्त हो कर उसके माथे पर हाथ रखा। सुदर्शन का माथा अंगारे की तरह दहक रहा था।

परीक्षा का श्रम, निराशा और चिंता, इन तीनों ने सुदर्शन के सुकुमार शरीर पर और मस्तिष्क पर एक असह्य भार डाल दिया था, अत. बहुत दिनो तक वह बीमार रहा और उसकी चिन्ता में माँ-बाप उसके अंतिम पराक्रम को भूल गये और उसके विवाह का विचार तुरन्त ही बदल दिया।

जब बीमार चली गई तो सुदर्शन का स्वभाव बदल भी गया। वह ज़िद्दी और चिडचिड़ा हो गया। वह अकेला ही था, और अकेले हाथ ही उसे सब का खण्डन करना है, यह ख्याल माँ-बाप के लाड़-प्यार में, सम्बन्धियो की स्नेहमय परवशता में भी बिसरा नही, और बीमारी की रोगिष्ट एकाग्रता में भी उसको बार-बार स्मरण आया करता

था और जैसे-जैसे वह अच्छा हुआ वैसे-वैसे लाड़ले बेटे की सकुमार मनोदशा के बदले, एक आजन्म विद्रोही की सी कठोर, एकाग्र और आवेगपूर्ण मनोदशा का अनुभव उसे होने लगा।

उसकी आयु, स्वास्थ्य, माता-पिता के स्नेह इत्यादि अनेक कारणो से उसको बडौदा कॉलेज मे भेजा गया। बोर्डिग का नव जीवन, दूसरे लडको की सगति और स्वतत्र जीवन के विविध आकर्षण पहले तो उसको मुग्ध करने लगे, पर थोडे समय मे यह मोह तो कम हुआ और पहले की वृत्तियाँ फिर सतेज हुई।

रोगमुक्त स्वास्थ्य और स्वतत्र वातावरण मे उसको नवीन प्रकार और नवीन शक्ति मिली। उसको अपना ज्ञान अल्प, निरीक्षण अल्प, दृष्टि-मर्यादा संकुचित और बुद्धि निष्प्रयोजन लगी। उसे यदि प्राचीन सृष्टि के स्तभ उखेडने हो तो उस सृष्टि का, उसकी रचना का, उसकी नीव का और उसकी भावनाओ का पूरा-पूरा ज्ञान होना चाहिये और विनाश के साधन, पद्धति और क्रम निश्चय करना चाहिये। उसे पक्का विश्वास हो गया कि केवल एकमात्र इच्छा से ही काम नही हो सकता।

बड़ौदा कालेज के पुस्तकालय और वाचनालय उसकी पहली आशा को पूरा करने मे उपयोगी सिद्ध हुए और प्रीवियस क्लास के लडको की समझ मे न आने वाले विषयो मे तथा विचारो मे वह डूब गया। यह सपूर्ण अध्ययन विद्वत्ता प्राप्त करने के लिये नही किया गया था, बल्कि विनाशवृत्ति को सबल और समृद्ध बनाने के लिये किया गया था। किसी को ख्याल भी न होता था कि यह छोटा सा लडकी जैसा पद्रह वर्ष का बालक रात-दिन अनवरत रूप से पढता रहता और स्वयं सामाजिक-विज्ञान-शास्त्री बनने के, और अपने को सामाजिक डायनेमाइट बनाने के, द्विविध प्रयोजन से प्रेरित हो रहा था, और उसकी कल्पना के आगे सदा ही समाज, सत्ता और धर्म के

अत्याचारी पत्थरो का विध्वस—इसी परब्रह्म-प्राप्ति के रूप मे रमा करता था।

पर इस समय इसके वास्तविक स्वप्न-मित्र भी इसे छोड़ गये थे। इसे लगा कि इसके केवल शुद्ध विनाशक-प्रयोगो में वे बहुत सहानुभूति न दिखाते थे; अर्थात् वे स्वय ही उसकी ओर से उदासीन हो गये थे।

प्राचीन स्वप्नो मे एकमात्र भगवान् और्व उसके पास रहे। कुल और सस्कृति के विनाशक वीतद्रव्यो के गर्भ में से द्वेष करने वाले महर्षि, जिन्होने जीवन भर अपने क्रोध से समुद्रो तक वैरवह्नि की ज्वाला को फैलाया वह अडिग द्रष्टा सुदर्शन के निरुत्साही पलो मे उसको उत्तेजना देते। उनका ऊँचा और दुबला-पतला शरीर, उनकी सफेद लंबी और विकराल दाढी, उनकी अगारो की तरह दहकती हुई आँखे और उनके कठोर एव क्रूर मुख के भयानक भाव, उसके निरुत्साही हृदय को सदैव प्रेरणा देते रहते।

अर्वाचीन स्वप्नो में भी केवल उसका एक मित्र रह गया था: अग्रेजो का कट्टर दुश्मन नेपोलियन। छोटे से इतिहास में दी हुई उसकी विस्तृत रूपरेखाओ ने उसे आकर्षित किया और उसकी भव्य मुखाकृति ने उसको मुग्ध कर दिया था। जैसे ही वह कालेज मे गया कि तुरन्त ही हाथ मे आये हुए पैसे का पहला उपयोग उसने बवई के पुस्तक बेचने वाले के पास उसका जीवन-चरित्र मँगवाने में किया। पुस्तक-विक्रेता ने उसको एबट का 'नेपोलिय-[illegible]' दिया।

एबट का 'नेपोलियन' खराब हो, अतिशयोक्ति-भरा हो [illegible] स्तोत्रो से परिपूर्ण हो; पर गीता की तरह, प्लुटार्क की तरह, इसमें मानवता को प्रेरित करने के परम लक्षण है। उसमे फ्रेंच सम्राट का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से चित्रित किया गया है। उसकी मदद से उसके पराक्रमी कारनामो में सहयोग मिलता हो ऐसा भ्रम होने लगता है।

सुदर्शन ने उसे पढना आरंभ किया; और जैसे-जैसे वह उस पुस्तक को एकाग्रता से पढता रहा वैसे-वैसे उसमें वर्णित जीवन-महत्ता की धाराएँ उसको सराबोर करती रही, भिगोती रही, और उसकी मानवता का प्राचीन रूप बदल कर उसको नवीन रूप देने लगी।

इस पुस्तक के पृष्ठ पर बीचो-बीच पतले टाइप में से—सुव्यवस्थित उद्यान मे उगी हुई छोटी, पतली घास मे, सृष्टि के सृजन काल की शांति से सोते हुए महान् देव की देहरेखा उडती हुई दिखाई दे इस प्रकार—एक आकृति दृष्टिगत हुई, वह भूरा ओवरकोट और तिकोनी टोपी पहिने थी बख्तर से दुर्जय और जामे से सुशोभित, तेजस्वी—ठिगनी और स्थूलदेह; मानव जीवन के प्रतापी प्रातःकाल के आदर्श सदृश अर्वाचीन महावीर अपनी छाती पर, अपने स्वभाव को बदल कर हाथ बाँध रक्खे थे। दर्पण-से-श्वेत मुख पर देवो की-सी दुर्लभ शांति, अमरो के प्रताप से प्रज्वलित थी। सुन्दर होठ निश्चलता से बंद थे। नाक का गांडीव धनुप गगनवेधी आकांक्षाओ को खीच रहा था। अचल भाल पर उग्र एकाग्रता तीसरे नेत्र की-सी ज्वलंत विनाशकता में विराजमान थी। और गभीर आँखो की भव्य स्थिरता मे दिखाई देने वाली, सृजन और संहार की वह्नि-ज्वाला के विविध रंगो मे एकाग्र मानवता की ज्योति झिलमिला रही थी। जैसे-जैसे उसका व्यक्तित्व सुदर्शन के आगे विकसित होता गया वैसे-वैसे उसने नेपोलियन को अपना पराक्रम फिर से करते हुए देखा। उसके विजय की आज्ञा से टुलोन और लोदी के मैदान गूंज उठे; उसके भयंकर उत्साह ने इजिप्त और सीरिया के युद्धो की जलती हुई विपमता का ध्वंस किया और आल्प्स के हिमग्रस्त शिखरो पर भी अपनी विजय-ध्वजा फहराई। त्रिपुरारी के त्रिगुणातीत प्रताप से उसने प्राचीन मेरेंगो और ऑस्टरलीट्ज के ताण्डव खेले और मास्को से लौटती हुई पराजय में भी विजेता की महत्ता का परिचय दिया।

वाटरलू में उसका पतन हुआ, सेंटहेलेना में वह अभंग गौरव सहित लड़ता रहा। फ्रांस का वह आत्मा, आदर्श और विधाता बना। यूरोप का उसने संहार किया, और नव प्राणो का संचार कर फिर से जीवनदान दिया। 'फिर से वह जीवित हुआ, शासन किया, और गर्जा—सृष्टि भर के एकाकी सम्राट की अवर्णनीय भव्यता से; और सुदर्शन के स्वप्नो को समृद्ध कर उसकी मानवता को एक नवीन तेज से चमका दिया।

४

सुकुमार सुदर्शन के एकात जीवन में ऐसे स्वप्नों के लिये स्थान होगा ऐसा उसके मित्र कभी भी न सोचते थे। वह आकर्षक और वुद्धिशाली दिखायी देता था, अतः संगति का लाभ उसे मिला नहीं, और उनसे हुए नवीन परिचय ने उसके स्वप्नो पर भी आक्रमण नही किया। कभी-कभी उसे नई-नई धुन सूझती, या खिन्नता उसके अंतर को दबोच डालती।

कालेज का अध्ययन और साथ ही अपनी विनाशक वृत्ति समृद्ध करने के लिये सहायक पुस्तको में संलग्न होने से उसे किसी भी प्रकार की अन्य मनोदशा को पोषित करने का समय न मिलता था। उसे कोई भी खेल आकर्षित न करता था और शारीरिक विकास की भी उसे पर्वाह नही थी। जब क्रिकेट की मैच या टेनिस की टूर्नामेंट चलती हो तो सुदर्शन को वगल में किताब ले कर कालेज के किसी गुंबज की तरफ एकात की खोज करने जाते हुए देखने की, उसके मित्रो को कुछ आदत सी पड़ गई थी। नही तो गुवज के नीचे पड़े-पड़े या छज्जे में घूमते हुए वह पढा करता या स्वप्न देखा करता था।

कालेज मे जाते के दो एक महीने वाद उसका परिचय रामलाल देसाई से हुआ। कालेज में रामलाल और उसके पिता भूखन-दास के नाम के प्रथमाक्षरो से आर० बी० या अरव्बी के नाम से

प्रसिद्ध सीनियर,बी० ए० का विद्यार्थी था। वह इस छोटे से लड़के की ओर-आकर्षित हुआ।

आर०बी० का हृदय निर्मल और उत्साह सर्वग्राही था। प्रामाणिक और निश्छल, वह सब की तरफ़ स्नेह से देखता था और गभीर भावों को पहिचानने ने अशक्त होने पर भी अच्छे भावो को स्थिर और शाश्वत रूप मे स्थापित करने में वह निपुण था। उसका उत्साह कभी गगन को छूता न था और न कभी अस्त ही होता था। उसकी जिज्ञासा की मर्यादा मे जीवन के सभी क्षेत्र और प्रश्न आ जाते थे और प्रत्येक विषय का थोडा बहुत-ज्ञान भी उसे अच्छा था।-पुस्तकों से वह अखबार-प्रेमी अधिक था और विशेषकर हिंद की प्रत्येक प्रवृत्ति पर कुछ न कुछ नवीन बात लड़कों को बता सकता था। ईश्वर और धर्म, लोक-शासन और स्त्री-स्वातंत्र्य, जाति और विधवा-विवाह, अग्रेजी सत्ता और स्वदेशी आकांक्षा—सब पर उसके विचार आगे आते थे। कितने ही यह समझते थे कि वह प्रोफेसर शाह की प्रेरणा से बँधा हुआ है फिर भी उसको प्रगति के पैगम्बर की पदवी बड़ौदा कालेज के विद्यार्थियो ने दे रखी थी।। विद्यार्थियो मे प्रगति-वाद के पथ का वह नेता था और 'डिबेटिग सोसाइटी' मे पुराने विचारो को तिरस्कृत ठहराने वालो मे मुख्य भाग लेता था।

आर०बी० के संसर्ग में आते ही, सुदर्शन को अपना अधूरापन दिखाई दिया। देश-सुधार की प्रवृत्ति चारो दिशाओ मे फैल रही थी उससे वह अनभिज्ञ था और कांग्रेस और समाज-सुधार कान्फ्रेंस, ब्राह्म समाज, आर्यसमाज और थियोसोफी, कैनिंग की घोषणा, रिपन की राजनीति और कर्जन के कारनामो के बारे में वह बहुत खूबी से बात कर सकता था। सुदर्शन और आर०बी० एक दूसरे की तरफ आकर्षित हुए और थोडे ही समय मे दोनो में गहरी दोस्ती हो गई।

सुदर्शन को अपने ज्ञान का अधूरापन बहुत खटका। आर०बी० के साथ बातचीत में उसे अपने दृष्टिकोण की संकुचित मर्यादा स्पष्ट दिखाई दे गई। आवेश और उत्साह से वह अपनी सीमा का विकास करने लगा और गंभीर तत्वज्ञान की पुस्तकों से लेकर, साहित्य के साधारण प्रश्नों तक प्रत्येक वार्तालाप के विषय पर ज्ञान-सञ्चय आरंभ कर दिया।

जैसे-जैसे उसका ज्ञान बढ़ा, वैसे वैसे उसकी विनाश-प्रधान दृष्टि ने मानव-जंतुओं को त्रास देने वाले विघ्नों का स्पष्टीकरण करना आरंभ कर दिया और सूक्ष्मता तथा सर्वग्राहित्व से सब विषयों की श्रेणियाँ समाप्त कर दी। आर०बी० यह प्रयोग देखता रहा; और स्वयं खड़ा किया हुआ भूत क्या करेगा और क्या न करेगा उसका विचार करने लगा। उसके प्रगतिवाद में से सुदर्शन का विनाशवाद कैसे प्रकट हुआ यह विचार करते ही वह काँप उठता था।

सुदर्शन ने अपने मार्ग के पत्थरों का विभाजन किया।

मानव-साहस को भयभीत करने वाला, निर्बलता का पोषण कर्ता, दया और क्रोध के द्वन्द्व से मनुष्य जीवन को हैरान करने वाले उस ईश्वर को उसने पहली पंक्ति में सर्वप्रथम रक्खा। उसने बहुत पढ़ा, बहुत विचार किया, पर एक भयानक कल्पना के अतिरिक्त वह और भी कुछ है यह न मालूम हुआ। ईश्वर के डर से मनुष्य को काँपता हुआ और अपने अंतर को कुचल कर उसकी काल्पनिक करुणा के लिये, गुलामों की-सी अधमता से भटकता हुआ दिखाई दिया।

इसी पंक्ति में दूसरा पत्थर आत्मा का रखा। आत्मा ने स्वर्ग और नरक के बीच झूलने की निर्बलता पैदा की; पुनर्जन्म के लालच से लोलुपता को जन्म दिया, अपने खोखलेपन में मनुष्य जंतु को सड़ने दिया। यह खोखलापन धर्म की संस्था के नाम से परलोक का लोभ बता कर अपने ही अंधकार में फैला हुआ था और सड़ते हुए प्राणी साहस के

अभाव में अपनी कायरता को भाग्य या धर्म जैसे सुन्दर शब्द से ढाँप देते हो ऐसा लगता था।

लेकिन इन दोनो से भयानक, विशालता मे त्रासदायक इसी प्रकार का एक तीसरा पत्थर भी उसने इसी पंक्ति मे रखा। उसे वह 'अधमता का महापाषाण' कहता। वह एक-एक सिद्धान्त के स्वरूप को देखता और उस सिद्धांत को सुदर्शन समग्र महत्ता का सिद्धांत बताता। इस सिद्धांत का वह इस प्रकार स्पष्टीकरण करता था।

एक व्यक्ति की महत्ता उसे आदरणीय—प्रेरक—पूज्य लगी। ऐसे व्यक्ति की भक्ति मे उसे वास्तविक मानवता का आभास हुआ। पर यह व्यक्ति महान् हो कर अर्थात् उस प्रकार के सब व्यक्तियो का एक वर्ग बना कर, वह वर्ग महान् है यह मान बैठने की एक ही क्रिया में मनुष्य-जीवन के सब दु:ख तथा संपूर्ण अधमता का समावेश दिखाई दिया। महान गिने जाने वाले मनुष्यो की इस समग्र महत्ता के महापाषाण के नीचे सपूर्ण सृष्टि उसे अधम जीवन व्यतीत करती हुई दिखाई दी।

एक मनुष्य वास्तविक वीर पुरुष निकला; उसको राजा समझ कर पूजा। वह पूजा उसे सार्थक लगी, पर पूजा इतने से ही नहीं रुकी। एक राजा पूजने योग्य तभी है जब वह राजा कहलाये यह भ्रम फैला—और पत्थर प्रकटा। मनुष्य जंतु उसके नीचे संरक्षण लेने लगे। राज्यपद यह दैवी सत्ता का स्थान है—इस धारणा का जन्म हुआ; पाषाण 'महापाषाण' हो गया और राजकीय अधमता की शुरुआत हुई।

कौशिक महान् था—मंत्र-द्रष्टा और संस्कार-द्रष्टा था। उसने ब्राह्मणत्व को जन्म दिया। वह पूज्य था। उसके बाद भी बहुत से ब्राह्मण पूजनीय पैदा हुए। पर ब्राह्मणयोनि मे ही महत्ता है, और इसी कारण से जहाँ-जहाँ ब्राह्मण है वहाँ-वहाँ महत्व भी है—इस समग्र

महत्ता के भ्रम में वर्णाश्रम का महापाषाण रचा गया और सामाजिक अधोगति का प्रारम्भ हुआ।

एक पुरुष स्त्री से अधिक बलवान व्यवस्थावृत्ति वाला था। सामान्यतया बहुत से पुरुष स्त्री से बल और व्यवस्था में बढ़े-चढ़े होते हैं और उतने ही अंश में पूज्य भी होते हैं। लेकिन जब समग्र महत्ता का सिद्धांत आया तो ऐसा माना जाने लगा कि जहाँ-जहाँ पुरुषत्व है वहाँ-वहाँ पूज्यता है। यह भी महापाषाण था और उसके नीचे स्त्रियों का सुख और स्वातंत्र्य—सब का सत्यानाश हो गया। यह है संसार।

सामान्यत. पुरुषों से स्त्रियाँ अधिक सुकुमार, भाव-प्रधान तथा स्नेहशील होती हैं—और उसी अंश में वे सुख और शांति की विधात्री हैं पर इस सिद्धांत ने अंधश्रद्धा को जन्म दिया, और जहाँ स्त्री है वहाँ सुख है, यह सिद्धांत निकला और गृहजीवन के महापाषाण का निर्माण हुआ और स्त्री बिना जीवन नहीं यह समझा गया। इस पत्थर के नीचे पुरुष-जन्तु आत्म-विकास खोकर इससे चिपके रहे।

एक धनाढ्य किसी को समृद्ध कर दे, उससे वह उपकार का पात्र है यह बात मानी गई और उससे एक असत्य धारणा का जन्म हुआ—समस्त धनिक वर्ग जनता को सुख-समृद्धि देने वाला है, अतः सम्मान का पात्र है। इससे धनवाद के महापाषाण का जन्म हुआ और निर्धनता की काल्पनिक अधमता में, गरीबों ने उसकी छाया में क्षुद्र जीवन बिताना आरंभ कर दिया।

क्लाइव शक्तिशाली था। केनिंग राजनीतिज्ञ था, मैकाले और रिपन उदार थे, कर्जन कार्यदक्ष था, पर इस वास्तविक दृष्टिकोण को भुला कर 'महापाषाण' प्रकट हुआ—गोरा अर्थात् गुणवान। और इस सिद्धांत ने माभाइयों को जन्म दिया और जातीय अधमता की सृष्टि हुई।

इस प्रकार जीवन के प्रत्येक प्रश्न का उसने क्रूरता से विश्लेषण किया और प्रत्येक मे उसे यही रहस्य दिखाई दिया जो प्रत्येक प्रकार की निर्जीवता उसे चारो ओर फैलती हुई दिखाई दी उसका मूल कारण उसे यही लगा कि इस काल्पनिक महापाषाण से स्त्री और पुरुष भयभीत थे फिर भी उसकी छाया मे ही सुख का अनुभव करते थे। इस पत्थर के विनाश मे ही सुख, स्वातंत्र्य और मानवता उसे दिखाई दी।

पर यह विनाश कुछ आसान नही था। ये भयंकर महापाषाण अद्भुत कठोरता से दबाये हुए थे। एक पत्थर है इसलिये पवित्र है, वह पड़ा हुआ है इसलिये जरूरी है, अगर यह हट जायगा तो सृष्टि भंग हो जायेगी—मनुष्य-हृदय के इन भ्रामक विचारो से उसकी दिखाई ही न देती थी।

ईश्वर-विहीन और निडर हुआ। सुदर्शन आत्म-विहीन, और निर्लोभ हो गया। समग्र महत्ता की उपेक्षा से उसने पूज्यभाव का अंत कर दिया। निडर, निर्लोभी और मानहीन यह बालक, डॉन क्वीक्ज़ोट के उत्साह से इन तीनो पत्थरो का विध्वंस करने के लिये तैयारी करने लगा।

५

इतने मे गुजरात मे अहमदाबाद की अठारहवी कांग्रेस की तैयारियाँ होने लगी।

आर०वी० का हृदय अपरिमित उत्साह से उछलने लगा। उसने फीरोजशाह मेहता दिनशॉ वाच्छा और रानाडे को देखा था। गोकुलदास पारेख, चीमनलाल सीतलवाड अंबालाल साकरलाल के साथ बातचीत भी की थी। कांग्रेस के वास्तविक प्रमुख विषयो पर अनेक भाषण भी उसने सुने थे और कांग्रेस के पहले प्रमुखो के कितने ही भाषण पढ़े भी थे।

उसने प्रत्येक रूम में जा कर कांग्रेस की कथा शुरू की, इससे सब लड़कों का हृदय कांग्रेस की भक्ति से उछल पड़ा। रात-दिन का पढ़ना छोड़ कर आर०बी० तथा उसके मित्रों ने गप्पे हाँकने में समय बिताना आरंभ कर दिया।

सुदर्शन इस अरसे में दो-चार वार अहमदावाद हो आया और कांग्रेस की तैयारी तथा घूमधाम अपनी आँखों से देख आया। उसके उत्साह का भी पार नहीं रहा। जैसे मोक्ष का दिन उदय होने वाला हो इस प्रकार वह कांग्रेस की बैठक की प्रतीक्षा करने लगा। आर०बी० ने एक नया तूफान खड़ा कर दिया, कौन जाने कहाँ से वह कांग्रेस के स्वयसेवक होने की अर्जी के फार्म ले आया और सब को बाँटे। कांग्रेस में वालंटियर होना अर्थात् कांग्रेस को देखना और जानना, उसमें सहायक होकर देश-सेवा करना, नेताओं को देखना और उनकी सेवा करना। आर०बी० सैनिक इकट्ठा करने में अमलदार बन गया और निरुत्साहियों को उत्साह देकर तैयार करने का काम अपने ऊपर लिया।

सुदर्शन को ऐसा लगा कि उसके स्वप्नों को सिद्ध करने का समय आ गया है। देश को उन्नत और स्वतंत्र करने का यज्ञ उसके गाँव में होने वाला था। जो लक्ष्य उसका था उसे पूरा करने के लिये हज़ारों भारतवासी इकट्ठे होने वाले थे। पल भर के लिये अपने विनाश की वृत्ति भूल गया। इस यज्ञ में भाग लेने के लिये उसने भी स्वयसेवक होने का प्रार्थना-पत्र दिया।

उसने प्रार्थना-पत्र दिया है यह बात उसने अपने पिता को भी लिखी। प्रमोदराय नाराज़ हुए। सरकारी नौकर के लड़के की यह हिम्मत कि कांग्रेस में जाय! सुदर्शन ने पत्र लिखा, झल्लाया, रोया, चिल्लाया पर रावबहादुर टस से मस न हुए। आखिर तय हुआ कि सुदर्शन दर्शक की तरह जा सकता है। उसे अपने प्रति तिरस्कार और

अपने पिता पर क्रोध आया, गुस्से में उसने आर०बी० से अर्जी वापिस लेकर फाड़ डाली और अपने को 'रतनबाई है' यह कर पराधीनता की वेदना का अनुभव करते हुए, उसने दूसरे स्वयंसेवकों को देश के उद्धार के लिये आगे बढ़ते हुए देखा।

१६०२ के शांत, स्थूल, शुष्क और व्यवहार-कुशल अहमदाबाद को देश-भक्ति ने पागल बना दिया। एक प्रचड राष्ट्रीय ऊर्मि उसकी रग-रग में फैल गई। उसकी गंदी, दमघोटू गलियो मे कधे पर थैली लेकर निकलने वाले गुमाश्तो के बदले उत्साही नागरिक कपडे पहन कर राष्ट्रसत्र की शोभा बढाने के लिये निकल पड़े। अहमदशाह का केन्द्र-स्थान थोड़े दिनो मे राष्ट्र का केन्द्र-स्थान बन गया।

सुदर्शन के स्वप्न इस नवीन प्रकाश मे रँग गये। सब भारतवासी माभाई जैसे नही थे, और न सब पूँछ ही फटकारते थे। हज़ारो स्वदेश-प्रेम के दीवाने थे तो हज़ारो देश-सेवा करने के लिये जीवन देने को तैयार थे। लोगो की चिंता करने वाले, देश की उन्नति का स्वप्न देखने वाले वे अकेले नही थे, पर अनेक चतुर, विद्वान और अनुभवी नेता पतवार पर बैठकर देश के जीवन की नाव खे रहे थे। उसे खुशी हुई कि वह अकेला नही था, उसे दु:ख हुआ कि ये सब आगे बढे हुए बहुत बड़े थे और वह स्वयं छोटा था इसलिए पीछे रह जायगा। अपने अविकसित जीवन मे आज पहली बार उसने महान् जन-समूह देखा और उस वृहत् समुदाय मे प्रत्यक्ष उत्साह और लगन का अनुभव किया। उसकी दृष्टि मे ये सब मनुष्य देवता थे और देश की स्वतत्रता प्राप्ति के लिये इकट्ठे हुए थे। उस दिन उसे ऐसा लगा कि इस देश में और ऐसे समय मे जीना यह भी एक सौभाग्य की बात थी।

प्लेट-फार्म से बिल्कुल दूर वह पंडाल में आकर बैठ गया और हज़ारो सिरो के ऊपर से चारो तरफ़ देखता रहा। इस विशाल मेदिनी में—इस विशाल पंडाल में—उसे अल्पता का भान हुआ; और जिसे

देश के लिये ये सब इकट्ठे हुए थे उसके प्रति पूज्य भाव जगा। हम, हमारी प्रजा, हमारा धर्म, हमारा देश, इन संज्ञाओ से वह परिचित था, पर आज पहली बार वे सब एक जगह केन्द्रस्थ हुए थे। उसके मस्तिष्क में एक सर्वग्राही तथा परम संज्ञा—मेरा देश—पैदा हुई। वातावरण कांप उठा और जीवित-प्रताप से चमकता हुआ भारत उसने पल भर के लिये देखा। असंख्य मनुष्यो के कोलाहल में भी करोड़ो को एकत्र करने वाले परम बन्धन की बात उसके मस्तिष्क में समाई।

अचानक गगनभेदी शोर हुआ और दस हज़ार आदमी खड़े हो गये, हज़ारो हाथ में रूमाल फहरा रहे थे और हज़ारो 'हुर्रे हुर्रे' पुकार रहे थे।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी मंडप में आये। सुदर्शन ने छाती पर हाथ रखा, वह खड़ा न रह सका। बीच के रास्ते पर अनेक पुरुषो के बीच काला चोगा पहने हुए एक पुरुष लंबे-लंबे डग रखता हुआ चला जा रहा था। वह मुखमुद्रा, वह दाढी और माथा सुदर्शन को चित्र द्वारा परिचित था। यही सुरेन्द्रनाथ—आर०बी० का भारतीय मेज़िनी—कांग्रेस का अवतार था।

सुदर्शन कुछ देख न सका, सुनने की उसमें शक्ति नही रही थी। सिरों के समुद्र के उस पार बैठे हुए एक व्यक्ति पर उसकी आँखें ठहरी हुई थी। वह व्यक्ति उसके मन में मानुषी नही दैवी था; वह कलकत्ते का प्रोफेसर और नेता नही था, बल्कि जिस स्वदेश का उसे पल भर के लिये पहली बार भान हुआ था, वही था। भारत—काले चोगे और दाढ़ी-चश्मे से सुशोभित भारत—सिंहासन पर विराजमान था।

आज का ज़माना, १९०२ के ज़माने में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का स्थान बालको के हृदय में क्या था, यह तो मुश्किल से ही समझ सके,

पर सुरेन्द्रनाथ के बाद तिलक, तिलक के बाद एनीबीसेंट, एनीबीसेंट के बाद गांधीजी—इस प्रकार लोकप्रियता का क्रम कहा जाता है। इन सब से पहिले लोकप्रिय व्यक्ति का मोह कुछ अद्भुत था, और अंतिम तीनो—पत्रकार, विदेशी और स्वदेशी महात्मा—से तो प्रोफेसर पर विद्यार्थी वर्ग की भक्ति स्वाभाविक रूप से बढी-चढी थी।

सुदर्शन केवल एक साधारण विद्यार्थी नही था, पर बचपन से ही उसे स्वप्न देखने की आदत थी। सुरेन्द्रनाथ उसकी आँखों मे स्वदेश का नेता नही बल्कि स्वदेश की मूर्ति दिखाई दिया। इतने मे गान सुनाई दिया·

गाओ भारत की जय
क्या भय—क्या भय ...।

और उसकी वृत्तियाँ बढी और इस गान के प्रवाह में डूब गई। उसकी रगरग से यही प्रतिध्वनि निकली "क्या भय ! क्या भय !

और अबालाल साकरलाल का भाषण, न सुना जा सके ऐसा भाषण—कुछ-कुछ अस्पष्ट भाषण—और दूर से आता हुआ, गर्जते हुए शब्द प्रवाह का अनन्त स्रोत उसकी आत्मा को मुग्ध करने लगा। 'Fellow—Delegate's Ladies and Gentlemen, I thank you for the great honour, उसने सुना न सुना, वह समझा न समझा। ऊँचे श्वास से वह देखता रहा, हँसा, प्रसन्न हुआ और ताली पीटता रहा, और साढ़े तीन घंटे बाद जब इस अचेतन अवस्था से जगा तब क्या-क्या हो गया यह भी उसकी समझ में नही आया।

६

कालेज खुलने पर जब सुदर्शन फिर बड़ौदा आया तो उसके हृदय में निराशा घर बनाने लगी। स्वदेश और सुरेन्द्रनाथ दोनो का वह भक्त हो गया था, पर सुरेन्द्रनाथ के भाषण ने तो उसे आकुल कर दिया। वस भाषण उसने अनेक बार पढा; उसका कितना ही भाग

रट भी लिया—और परिणाम-स्वरूप उसे अपने देश की दशा का ख्याल आया। अंग्रेजी राज्य से क्या मांगा और क्या मिला इसका उसे ज्ञान हुआ—और सुरेन्द्रनाथ के सुन्दर शब्दो मे निराशा छिपी हुई दिखाई दी। आशावादी वचन—ईश्वर के न्याय मे श्रद्धा—और अंग्रेजो की भलमनसाहत मे भरोसा—इन तीनो से भरे हुए इस भाषण मे उसे कुछ सार नही दिखाई दिया; इतना ही नही पर इन तीनों मंत्रों में उसको अंग्रेजों की 'समग्र महत्ता' के महापाषाणों की छाया दिखाई थी।

और भी बहुत से प्रश्न पैदा हुए। अगर अहमदाबाद जैसी कांग्रेस रोज भी हुआ करे तो इससे क्या? सौ सुरेन्द्रनाथ भी रोज भाषण दिया करें तो भी क्या? किसी देश को ऐसे प्रयोगो द्वारा कही स्वतंत्रता मिली है?

और राजकीय स्वतंत्रता से क्या हो सकता है? माभाई सेठ स्वतत्र हो या गुलाम तो भी क्या? माभाई सेठ कैसे सुधरें? मानव जीवन किस प्रकार प्रभावशाली बने? 'समग्र महत्ता' के महापाषाणों का जब तक विध्वसन किया जायगा तब तक क्या लाभ हो सकता है? इन महापाषाणो का विध्वंस कैसे हो?

और जैसे-जैसे कर्जनशाही के नये फरमान वह पढता गया वैसे-वैसे इन प्रश्नो का निराकरण करने के लिये वह अधीर हो उठा। १९०३ के दिल्ली दरबार से उसके इन प्रश्नो के निराकरण पर एक नवीन प्रकाश पड़ा। सार्वभौम सत्ता का ख्याल लोगो के दिलो में किस प्रकार बैठाया जाय, कर्जन को यह भली भांति आता था और इस ख्याल को कैसे भुलाया जाय यह भारतवासियो को न आता था।

सुदर्शन राजनीतिक विषयो को छोड़कर धार्मिक और सामाजिक प्रश्नो का हल निकालने का भी इरादा कर रहा था।

उसने अनेक देशो के इतिहास पढे। प्रत्येक महान् देश ने इस

सार्वभौम सत्ता के महापाषाण को तोड़ने का प्रयत्न किया है यह उसे दिखाई दिया।

ल्यूथर ने कैथोलिक चर्च तोड़ना आरंभ किया; हॉलैंड ने भी स्पेन की सत्ता छिन्न-भिन्न की; इंग्लैंड ने स्टुआर्ट का विनाश किया; अमेरिका ने अंग्रेजो के बंधन तोड़े; फ्रांस ने प्रत्येक समग्र महत्ता का खडन किया; इटली ने आस्ट्रियन सत्ता का विनाश किया; जापान ने अमीर और पोप की सत्ता तोड़ी। यह सब कैसे हुआ ?

इन सब में से फ्रेंच विप्लव ने उसकी कल्पना को मुग्ध कर दिया। वह एकमात्र राजनीतिक विप्लव न था, बल्कि सार्वभौम सत्ता के महापाषाण से संपूर्ण राष्ट्र का धर्मयुद्ध था। राजा और अमीर, धर्म और समाज सब की जमी हुई सत्ता को तोड़ कर, फ्रेंच मानवता को प्रतापी बना देने वाले इस महाप्रयोग की उसने हृदय से प्रशंसा की। कार्लाइल, मीकलेट, टेइन, उसने बार-बार पढ़े, रूसो डीडेरो और वॉल्टर . मीराबो, दांता और रॉब्सपीअर के जीवन-चरित्रो का उसने अनेक बार मनन किया। जागते और सोते हुए उसे फ्रेंच विप्लव ही दिखाई दिया करता था।

उसके कान मे एक महानगर की गली-कूचों का भयंकर नाद सुनाई देने लगा। जैसे सागर के सूख जाने पर पाताल के अंतरतल से भयानक जल-जंतु विस्मित होकर बाहर निकल आये उसी प्रकार समाज के धरातल के नीचे रहने वाले प्राणी बाहर निकल पड़े—भयंकर, विकराल और रक्त-पिपासु। महापाषाणो के नीचे शताब्दी गुज़र गईं, वे कुचले जाते रहे। उनके शरीर पर कपड़ा नही था, पेट मे रोटी नही थी। आज महापाषाण तोड़ने के लिये वे निकले। चारो दिशाएँ रक्त से रँगी हुई थी। आकाश मे क्रोधित मानवता की प्रतिध्वनि सुनाई दे रही थी। प्रलय-समुद्र की विनाशक लहरों का घू- घूस्वर उसके हृदय को उत्साह से उछाल रहा था।

क्रोधी जनता महापाषाणों के विध्वंस के लिये बाहर निकल पड़ी। बास्टील तोड़ दिया गया। राजा की सत्ता तोड़ दी गई। पादरियो के अधिकार नष्ट कर दिये गये। मानव-हृदय मार्क्स के मैदान मे एक हुए। एकमत से ईश्वर का अस्तित्व जाता रहा। एक झटके से राजा-रानी के सिर उड़ा दिये गये। एक पल में प्राचीन सृष्टि की जजीरें तोड़ दी गईं, स्वातंत्र्य, समानता और भ्रातृ-भाव की जयघोषणा के साथ गौरवशील मानवता विहार करने लगी।

सुदर्शन में नवप्राणो का संचार हुआ। उसकी दृष्टि के पटल खुल गये। 'विप्लव अर्थात् नियम का प्रारंभ सत्य का पुनर्जन्म और न्याय का प्रत्याघात।'

विद्यार्थी का मस्तिष्क चंचल और सुकुमार, अनुभवहीन और आशावादी, उत्साही और अधीर होता है। उसे परिस्थिति की परवाह नही होती, वह संयोग की खोज नही करता; वह साधनो पर विचार नही करता और इन्ही कारणो से वह राजकीय आन्दोलनो में अपने जीवन की बलि चढा देता है; और एक तुच्छ वस्तु पर भी अपने प्राण अर्पण कर देता है। ऐसी ही स्थिति इस समय सुदर्शन की थी। फ्रेंच विप्लव ने उसे रास्ता सुझाया। विप्लववाद की भयंकर भावना ने उसे आशा दी।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

सुदर्शन के विप्लववाद की सीमा न रही, प्रत्येक माहापाषाण को तोड़ने की आशा उसमें समाई हुई थी। राजकीय पाषाणो को तोड़ने से पहले उसे सामाजिक और धार्मिक पाषाणो को तोड़ने की अधिक आवश्यकता दिखाई दी।

इसी अरसे में बोर्डिंग में स्वातंत्र्यवादी तथा संरक्षणवादियों के बीच जैसा कि पहले बतलाया है—युद्ध शुरु हुआ। प्रोफेसर शाह की

प्रेरणा से आर०वी० ने स्वातंत्र्य सेना का निर्माण किया। नृसिंहाचार्य के पट्टशिष्य छोटेलाल मास्टर ने सरक्षणवादियो को अपने साथ लिया। वाग्युद्ध की परपरा चली। सुदर्शन को यह एकमात्र हँसी-सी लगी। केवल जात-पाँत तोड़ने से या अंधश्रद्धा के त्याग से उसे कुछ बनता दिखाई न दिया।

उसका समस्त क्रोध सामाजिक अंधकार के स्रष्टा—धर्मगुरुओ पर ही निकला। अपनी जाति पर, धर्म और सरकार के ठेकेदार ब्राह्मणो पर, अपार क्रोध की सृष्टि हुई। वह मानता था कि इन धर्मगुरुओ ने नीति बनायी और महापापाणो को पवित्रता का वरदान दिया असमानता को स्वाभाविक-सा दिखा कर मानसिक विकास की मर्यादा का निर्माण किया; निर्भय को भयत्रस्त होना और गौरवशाली को घुटनो के बल गिरना सिखाया था। धर्म के नाम पर मानवता को निर्जीव करने वालो का विध्वस करने के लिये वह अपना खौलता हुआ खून लेकर तत्पर हो गया।

इस अधीरता और क्रोध में—इस दृग्य और द्वेष के जाल मे—इस विनाशक वृत्ति की विकास पाती हुई धुन में—कभी-कभी उसकी स्वप्न सृष्टि के सामने भावी सृष्टि का दृश्य झिलमिला जाता था। निरीश्वर, अनात्मवादी, राजा और गुरु से रहित, सत्ता और असमानता से रहित सृष्टि—जहाँ गविष्ठ और प्रतापी नरपुगव शान्ति के गौरव मे, शक्ति की निर्भयता मे, भावना के उल्लास में, हरित कुजो मे या गगनभेदी गिरिशृगो में, शीतल सरिता के किनारे, या गरजते हुए सागर के सान्निध्य मे, अमरपुरी की देवागनाओं को भी लजाने वाली सुन्दरियो के साथ विहार करते हुए, जहाँ आधिपत्य था केवल अपने आदर्शों का; नियम था एकमात्र अपने सस्कारों का, बधन था एकमात्र अपने स्नेह का, जहाँ कोई झुकता था तो अपनी महत्ता के भार से, कोई हँसता तो अभिलषित सेवा के उत्साह से, कोई रोता तो

शैशव के अविचार से, जहाँ मनुष्य था अपने जीवन का स्वाधीन और स्वतन्त्र निर्माता और अधिष्ठाता। वहाँ उल्लास की लहरें सदा आतीं, निर्मल मानवता की सुरभि व्याप्त हो रही होती, और इन सब से सरस स्वातंत्र्य का संचार वहाँ ऐसा अनुपम वातावरण रचता कि विधाता की सृष्टि एकमात्र दुःखद स्वप्न जैसी हो जाती।

पर इस सृष्टि के दर्शन कर पीछे लौटते हुए उनकी निराशा का पार न रहता। इस सृष्टि का कब सृजन होगा? क्या वह स्वयं ऐसी सृष्टि का सृजन कर सकेगा?

---

# भारती की आत्म-कथा

## १

एक दिन जापान ने अधकार से बाहर निकल कर रशिया को—यूरोप को—युद्ध की चुनौती दी। रूसो-जापानीज़ युद्ध शुरू हुआ। निराधार एशियावासियो के जीवन मे पूर्व मे उगी हुई सूर्य की किरणो ने, साहस ,आशा और चेतना का संचार किया।

वह अब गुलाम न था, वह निर्जीव न था, वह पराधीन रहने के लिये पैदा नही हुआ था, इसकी साक्षी कोरिया के क्षेत्र और समुद्र देने लगे। एशिया की युग युग की निराधारता समाप्त हो गई। चीन के अफीमचियो के मस्तिष्क मे, भारत के धर्ममूढ पुरुषो के हृदयो मे, ईरान के अज्ञानग्रस्त अतस्थलो मे, एक नवीन चेतना की सजीव ज्वाला अपने प्रताप का प्रसार करने लगी।

इस युद्ध का प्रभाव बडौदा कालेज पर बहुत अधिक पड़ा। अखबार का शौक बढ़ गया। जापान के विषय मे कई पुस्तकें लाइब्रेरी मे आ गईं। अरविंद घोष ने जापानी भाषा सीखना आरम्भ कर दिया है, यह बात उड़ी। जापान की विजय की बाट सभी देखने लगे।

सुदर्शन के हृदय मे नवीन आशा जागृत हुई। यह विग्रह उसे केवल जापान का ही नही लगा, बल्कि उसने यूराल से लेकर जापान तक संपूर्ण एशिया को कुभकर्णी निद्रा से जागते हुए देखा। अपने विकराल अयाल उछालता हुआ यह महासिह, शताब्दियो से अन्याय और आघातो से व्याकुल हो कराह रहा था। यह विराट जबूद्वीप

यूरोप की शक्ति के सामने अपनी शक्ति के ह्रास का अनुभव कर रहा था।

सुदर्शन की दृष्टि में देश, जाति या धर्म की कोई सीमा न रही। एशिया का जीवन-स्रोत आर्यावर्त मे प्रगट हो कर उसे बुद्धगया के पुनीत घाट पर से निसृत होता हुआ दिखाई दिया। भारतीय बुद्धि और भारतीय शौर्य से वह बढा—एक ओर मध्य एशिया के रेगिस्तान और दूसरी ओर अफगानिस्तान के गिरिगह्वरो में; वह फैला चीन में और जापान में; आसाम और ब्रह्मदेश मे, ईरान और जूडियामे। इस महानद के प्रवाह ने चारो दिशाओ को जलमय कर दिया, और इस्लाम के रूप में ईरान से, एशिया की शक्ति के रूप में जापान से, इस जन्मभूमि में वह फिर लौट आया और उसने संपूर्ण एशिया को रसमय बनाकर एक नवजीवन का संचार कर दिया। एशिया की एकता के स्वप्नों में सुदर्शन पलभर के लिये मुग्ध हो गया। अरबिस्तान, तुर्किस्तान, तातार और हिंद को जहाँगीरी जंजीर से एक कर 'इस्लाम खंड' करने के खलीफाओ के स्वप्न—जापान, चीन और भारत को सांस्कारिक बंधनों से एक बना कर बुद्धखंड बनाने के ओका कुरा के स्वप्न उसको अधूरे और अस्पष्ट लगे। उसके स्वप्न तो आर्यावर्त से जापान और तुर्किस्तान तक एक प्रचड महाविप्लव का प्रसार कर, राष्ट्र, समाज और धर्म के भेद भुला कर एशिया का नवनिर्माण करने की योजना मे व्यस्त हो गये थे।

२

पर एशियाई महत्ता के स्वप्न जैसे ही उगे वैसे ही समाप्त भी हो गये। ब्रिटिश सत्ताधीशो के वचन और कृत्य उसे वास्तविक स्थिति का क्रूर ज्ञान करा कर उसके स्वप्नो की हँसी उड़ाने लगे। उसकी प्रजा के लिये प्रताप और सत्ता नही थी, उसके अपने देश के लिये स्वातंत्र्य नही

था, इस बात का तीव्र ज्ञान बार-बार होने पर 'एशियाई' एकता की आवश्यकता वह देखता ।

सुदर्शन ने जब १९०३ मे दिल्ली मे हुई ताजपोशी की कहानी सुनी और उसके चित्र देखे तो उसकी आकुलता बढी । दिल्ली के सिंहासन पर —जहाँ पार्थिव ने पैर भी नही रखा था, जहाँ पृथ्वीराज के शौर्य-स्मरण अभी दिखाई देते थे, जहाँ मुगल बादशाहों ने भारतीय गौरव प्राप्त किया था— वहाँ परदेशी राजा के प्रतिनिधि को बैठता देखकर उसके हृदय मे आग भभक उठी । भारत का कुछ गौरव अब अवशेष रह गया हो, यह पता नही चला । कहाँ जापान और कहाँ भारत ?

जब कर्जन ने कहा : "विकास की वर्तमान स्थिति को देखते हुए तो हिंदुस्तान को राजकीय क्षेत्र मे मुक्ति मिलनी नहीं । भारत मे, साधारण तया बडे-बड़े पद अंग्रेजो को मिलने ही चाहिये—" *और वही नीति काम मे लाई गई तो सुदर्शन को तमाचा मार कर भान दिलाया गया हो ऐसा लगा । उसके स्वप्न उसे निकम्मे दिखाई दिये । वह पागल की तरह एशिया की सत्ता की बात करता था, पर सच पूछा जाय तो उसके देश मे सत्ता दूसरे के हाथ में थी । एकदम उसे जापान और हिन्दुस्तान के बीच का भेद स्पष्ट दिखाई दिया । जापान स्वाधीन था और भारत पराधीन । इस भेद का विश्वास उसके अंतर मे जहर की तरह फैला ।

पर नवीन घटनाएँ जल्दी-जल्दी घटती रही और सुदर्शन की दृष्टि बंगाल पर ठहर गई और उसका हृदय वहाँ पैदा हुई भावनाओ के साथ लय में लय मिलाकर नाचने लगा ।

सन् १९०४ में बंग-भंग की योजना बनी, युनिवर्सिटियो ने स्वातन्त्रता खो दी । सन् १९०४ की कांग्रेस में, बंबई में एक तूफानी दृश्य सामने आया । सन् १९०५ की ११वी फरवरी को कर्जन ने

---

*१९०४ के बजट के समय का भाषण ।

हिंदुस्तानियों को झूठा बतलाया। १०वीं जुलाई को बंग-भंग का निश्चय अखबारों में निकला। ७वीं अगस्त को संपूर्ण बंगाल ने स्वतंत्रता का व्रत लिया, पहली सितम्बर को नये प्रांत की घोषणा प्रकाशित हुई।

जैसे शरीर कांप उठा हो इस प्रकार बंगाल को—भारत को—वेदना हुई।

नेता बिगड उठे। युवकों में नवचेतना जागृत हुई। सुरेंद्रनाथ की जीभ पर संजीवनी मंत्र आ बसा और राष्ट्र जागा—उग्र और भयंकर बन गया। उसकी शक्ति ने स्वरूप लिया स्वदेश का, उसके क्रोध ने स्वरूप लिया बहिष्कार का।

१६वीं अक्टूबर को बंग-भंग अमल मे लाया गया, उस दिन समस्त बंगाल ने शोक मनाया, वंदेमातरम् के गीत से कलकत्ता गूंज उठा, बंगालवासियों ने एक दूसरे को स्वदेशी व्रत की राखी बाँधी; शाम को राष्ट्र की एकता की रक्षा के लिये, फेडरेशन हॉल की नींव रखी गई। बंगालियों ने चुनौती दी। जिसे इतिहास और संस्कार ने एक बनाया है उसके टुकड़े-टुकड़े करने की हिम्मत किसकी है।

बड़ौदा कालेज के वाचनालय में बंगाली प्रोफेसर की प्रेरणा से पैदा हुए वातावरण में बैठा हुआ सुदर्शन नये-नये स्वप्न देखने लगा और नये भावों का अनुभव करने लगा। उसका देश समस्त महा-पाषाणों को तोडने की तैयारी कर रहा था। उसने बीडन स्क्वायर की मीटिंगें देखीं, कालीघाट पर रक्षा-बंधन किया और कराया। उसने बंगाल को अविभाज्य रखने का व्रत लिया।

लेकिन जब उसको स्वदेशी व्रत का ख्याल आया और 'वंदेमातरम्' का गीत पढा तो उसकी आँखें नवप्रकाश को सहन नहीं कर सकीं।

'माँ' की भावना अपरिचित और आकर्षक थी। वह अब तक उसके मस्तिष्क में क्यों नहीं पैदा हुई, यह उसे कुछ विचित्र सा लगा।

इसी से उसके अधकार पर एक झिलमिलाता हुआ प्रकाश पड़ा था, उसकी आँख पर का पर्दा हट गया। जो दिखाई नही देता था वह दिखाई देने लगा। हृदय की आशाएँ और भावनाएँ केद्रस्थ हो गईं। स्वदेश यह मिट्टी और पत्थरो का बना देश नही था, बल्कि एक जीवित व्यक्ति था। वह एकमात्र व्यक्ति ही न था, बल्कि दुःखार्त माता थी। भारतवासी मनुष्य नही थे, बल्कि माता के शरीर के परमाणु थे। 'स्वदेशी व्रत' यह व्रत नही था और न चुनौती ही थी, बल्कि यह तो माता की आत्मा का दर्शन था।

जैसे-जैसे वह विचार करता गया वैसे-वैसे माता का दर्शन स्पष्ट होता गया। 'सुजलाम्, सुफलाम् मातरम्'......वह बोलता जाता। एक परम तेजस्वी माता उसकी आँखो के सामने रमने लगी।

३

नववर-दिसवर में वह अपने घर आया।

उसकी सारी दुनिया बदल गई। वह जहाँ-तहाँ, 'माता' को देखने तथा पहिचानने का प्रयत्न करने लगा, और व्यक्तियों की, संस्थाओ की, प्रणालिकाओ की अपने छोटे-मोटे अगो की तरह एक व्यवस्था बनाने लगा। घर मे, जाति मे, और गाँव में से अकल्पित भावनाएँ जन्म लेने लगी। तालाब और नदी, प्राचीन मदिर और मस्जिद खेतो की हरियाली और गाँव की गदगीमें रहस्य दिखाई दिया। इन सब में 'माँ' की तेजस्विता दिखाई देने लगी।

सर्दी के दिनो में वह ब्राह्ममूहूर्त में उठ कर गाँव के बाहर घूमने जाने लगा। निर्जन और अंधकारमय, भूतो की तरह सुनसान घरो की अँधेरी पक्तियो के बीच से वह चला जाता-और फिर भी उसकी आँख के आगे इस नवदर्शन का प्रकाश रहता। दूर से सुनाई देते हुए बैलो के घुघरु मधुर स्वर और लय के साथ सुनाई देती हुई घंटियो की घनघनाहट, सुबह की सर्दी से काँपती हुई पनिहारिनो का वार्तालाप—

ये सब 'माता' के सौंदर्य का ज्ञान कराने लगे। और जाड़ों की कड़ाके की सर्दी में गाँव के बाहर खेतो की मेढो पर से होकर जाता तो बालो के भार से दबे हुए पौधो को प्रभात के समीर मे नर्तन करते हुए देखता, जब सुबह के बढते हुए प्रकाश मे, पूर्व दिशा में झिलमिलाते हुए सुवर्ण सरोवर मे से निकलती हुई सरिता, कासनी रंग धारण कर, पश्चिमी क्षितिज पर टँगे हुए बादलो में मिल जाती, वह देखता, जब किसी टीले पर सरसराते हुए पवन में खड़ा रह कर छोटे-छोटे पर्वतो की अस्पष्ट श्रृखला के पीछे से सूर्यनारायण का सुनहरा बिंब नवजीवन के सत्व की तरह ऊपर आता, तो उसमे समाई हुई विनाश प्रवृत्ति और क्रोध नष्ट हो जाता। और माता के देहलालित्य की प्रेरणा से उसके हृदय में भक्ति के अकुर फूटते। एक बार प्रेम के अधीर आवेश मे उसके मुँह से निकल पड़ा, "माँ माँ! तू अद्भुत है!"

एक दिन सवेरे पाँच बजे उठकर वह गाँव के बाहर घूमने निकला। रात में उसको नीद नही आई थी। गाँव से थोड़ी दूर एक टीले पर जा कर वह नदी की ओर देखने लगा। "माँ सो रही है। कैसी सुंदर लगती है!......"

वहाँ से कब उठा यह उसे याद नही रहा, किस ओर गया यह भी कुछ ख्याल नही। पर वह दूर, बहुत दूर चला गया, दूर, बहुत दूर जाने पर खेत भी अदृश्य होते हुए दिखाई देने लगे, पगडडियाँ सँकरी तथा अस्पष्ट दिखाई देने लगी। एक दूसरे से सटे हुए वृक्षों का समूह, जहाँ-तहाँ दिखाई देने लगा और जुगनुओ की चमक स्थान-स्थान पर कुछ-कुछ चमकने लगी। अपरिचितरवर सुनाई दिया।

अंधकार फैला हुआ था, पर फिर भी किसी-किसी पेड़ के नीचे उजाला दिखाई दे रहा था।

एकाएक वह किसी चीज़ से टकराया। उसने अँधेरे में घबराकर

भय से चारो ओर देखा। पेड़ के नीचे माथे पर हाथ रखे हुए एक स्त्री बैठी थी। उसके आस-पास ही थोड़ा-सा अच्छा प्रकाश था।

उसका मुख उसने कही देखा था—कहाँ, यह उसे याद न पड़ा। उसकी सौंदर्य से सुशोभित भव्यता की किसी दिन उसने प्रशसा की थी—कब इसका भान न था। उसकी आखों में वेदना थी—ऐसी कि न देखी जा सके और न कल्पना की जा सके। उस पर कुलीनसुंदरियों के शरीर की-सी स्वाभाविक मृदुता थी और उसके अंग-अंग पीडित हो, ऐसा दिखाई देता था।

सुदर्शन उसे देख कर घबराया। ऐसी तेजस्वी स्त्री इस निर्जनता मे, अकेली और असहाय कैसे आई? क्यो पड़ी है? साथ मे कौन है?

उसके पैर काँप उठे। उसका मन भाग जाने को हुआ, पर उसके पैर पीछे न लौट सके। एकाएक उसके हृदय मे एक प्रश्न उठा और वह प्रश्न उन वेदना भरे नयनो की तरफ बढता ही गया। घबराते-घबराते भी उसके मुंह से निकल पड़ा, 'तुम कौन हो? इस समय यहाँ कैसे?"

उस स्त्री ने अपना मुंह ऊँचा किया। उसके मुख पर अद्भुत सौंदर्य का तेज था—विषाद के आवरण में।

"मै अभागिनी हूँ। इस समय प्रतीक्षा कर रही हूँ।" उस सुंदर मुख से, दुख से काँपती हुई, पर सुमधुर आवाज़ निकली।

सुदर्शन की आँखो मे आँसू आ गये। उसमें छिपी हुई वीरता जाग उठी। इस स्त्री की मदद के लिये यदि वह तैयार न हुआ तो पुरुष ही कैसा?

"कौन हो? किसकी राह देख रही हो? और वह भी यहाँ?"

"बेटा, मेरे दु:ख की कहानी तो लबी है। मेरी दुर्दशा का पार नही। भाई! वन या पहाड़ के निर्जन स्थान के अतिरिक्त कही भी बाट जोहने का मुझे अधिकार नही।'

"क्यो?"

"मै गुलाम हूँ, पराधीन हूँ, मुझे कोई शाति से बाट भी नही जोहने देता।"

"किसकी बाट ?" दसो दिशाओ मे खोज करने के लिये तत्पर हुआ सुदर्शन अधीरता से बोल उठा।

"मेरे 'प्राण' की। वर्षो बीत गये पर फिर वह दिखाई नही दिया।"

सुदर्शन उसके पास गया। वह इस विरहिणी की वेदना न देख सका।

"बहिन ! मुझे बताओ वह कौन है ? कहाँ है ? मै ले आऊँ।"

"भाई। तुझसे वह—मेरा पालनहार वापिस नही लाया जा सकता।"

"क्यों नहीं लाया जा सकता ?"

"तुझ जैसे बहुत से आये और चले गये। बहुत से वचन दे गये—फिर दिखाई भी नही दिये। बहुतो ने बीड़ा उठाया पर कुमौत मारे गये।"

"पर मुझसे बतलाओ तो सही, इतने गये तो एक और सही" सुदर्शन ने आत्मत्याग के आवेश से कहा।

"वह सुन कर क्या करेगा ?"

"कहो-कहो। क्या पता, तुम्हारा दुख मेरे ही हाथो कटना हो तो ?

वह सुदरी हँसी। निराशा से वह अश्रद्धावान बन गई थी। "तो सुन" उसने कहा और जरा सीधी होकर गला खँखारा।

४

"बहुत वर्ष बीत गये इस बात को।" उस स्त्री ने कहना आरंभ किया, "मैपैदा हुई थी कल्लोल करती सरस्वती के रमणीय तीर पर, लेकिन अपने माँ-बाप को मै पहचानती नही। जब से मैने होश

सभाला तभी से गगनविहारी गिरिराज हिमालय को मैंने पिता समझा है और विशालहृदया सिंधुदेवी को अपनी माता मानी है।

"मैं सुदर थी, मेरे बाल-रूप में सब को आशाओ का अपार समूह दिखाई देता था। सरस्वती के किनारे पर रहने वाले कवि मुझे स्नेह से खेलाते और मेरे सुकुमार हृदय मे अपूर्व संस्कारो का बीजारोपण करते थे। मैं उनकी लाड़ली थी। वे मेरे लिये पिता सदृश पूज्य थे। निर्दोष आनद का स्वादन करते हुए बचपन खेल में बीत गया।

"वशिष्ठ और अरुंधती ने मेरा पालन-पोषण किया। उनकी पर्ण-कुटी की छाया मे मै बड़ी हुई। पति ने मुझ को पवित्रता का पाठ पढ़ाया, स्त्री ने मुझे श्रद्धा के सस्कार दिये। वशिष्ठ के तप की भव्यता और अरुंधती के आत्मसमर्पण की महत्ता— दोनो की प्रेरणा मैं ने पायी। उनके ममता भरे संरक्षण में बढ़ती गई, कामनामयी और आशा-भरी।"

"सब मुझे देखकर मुग्ध हो जाते और एक दूसरे की ओर गर्व से देखते। मुझे देख कर सब बालक उत्साह से पागल हो जाते, बूढे अपने समस्त जीवन की सफलता को सिद्ध हुआ समझते। मुझे सस्कारी और समृद्ध बनाने में ही सब जुटे रहते और मेरा गौरव बढाने मे वे अपने प्र णो की भी पर्वाह न करते थे।

"फिर आया मेरा प्राण—भरतो मे श्रेष्ठ ऐसा मेरा मनोभिलाषी—विश्वविजेता की तरह मेरा राजर्षि। उसके चरणो मे विजय का उत्साह था। उसकी आँख मे गर्व की मस्ती थी, उसकी भुजाओं में विनाश की सचोटता थी। उसकी वाणी मे अग्नि थी। इउकी बुद्धि में सविता के 'भर्ग वरेण्य' वास करते थे। वह था मेरा वीर, मेरा द्रष्टा और मेरा स्वामी।

"उसके मोह में लुभा कर मैंने आत्म-समर्पण कर दिया। उसकी

मैं महादेवी बनी। मेरी आर्यता से वह आर्य हुआ। मेरा कंत अमरों का प्रिय और आर्यों का अधिपति था। उसके मंत्रो से जीवन का सचार होता। उसके पराक्रम से पृथ्वी गर्जती। उसकी आर्य-दृष्टि के आगे तीनो काल लुप्तप्राय हो जाते।

"जिस प्रकार वीर पुरुष अर्धांगना को ग्रहण करता है उसी प्रकार उसने मुझे ग्रहण किया—मानवता के प्राबल्य से और उत्साह के आवेश से। पलभर में एक नन्ही सी बालिका से मैं वीरांगना बनी—और उसके साथ महाराज्ञी पद लेने के लिये तरसने लगी। उसने दया की और शुनःशेप को बचाया तथा द्वेष के वशीभूत हो हरिश्चन्द्र को भटकाया। उसके शौर्य से सुदास का उद्धार हुआ और क्रूरता से शतपुत्र का पिता वशिष्ठ संतानहीन हुआ। उसने रसिकता मे उर्वशी को वश मैं किया, औदार्य से अनार्यों को संस्कारी बनाया और बेचारे त्रिशंकु का उद्धार करने के लिये नवीन स्वर्ग का सृजन कर इन्द्र की महत्ता भंग किया। और फिर भी महत्ता-सुलभ नम्रता से उसने अमर प्रार्थना को उच्चारण किया, "धियोयोन: प्रचोदयात्।"

"अपने स्वामी की देवी मैं—भरत-श्रेष्ठ के योग से—भारती कहलायी। अपने असंख्य पुत्रो के गर्व की आधार—भारतमाता कहलायी। गौरव और सत्ता से उन्मत्त बनी हुई मैं अपनी मोहिनी से तीनो भुवनो को पागल बनाये रही। मेरे आँगन में देवो के देव अवतार के रूप में आने लगे।

"मुझमे विश्वविजेत्री की महत्वाकाक्षा ने जन्म लिया, जगज्जननी की अतुल शक्ति मुझमें आयी, पर फिर भी मेरी धमनियो में उछलते हुए प्रणय का ज्वार-भाटा आया ही करता और मेरी दृष्टि जहाँ पड़ती सौंदर्य के अद्भत रंग खिल जाते। मुझे लगा कि मेरा विजय प्रयाण असीम था। मेरे प्रेरणा-बल से खंड और सीमाएँ विलीन हो गईं।"

यह बात कहते समय सुदर्शन ने उस स्त्री की आँख में विचित्र

विद्युत तेज देखा। उसके स्वर में विजयोल्लास की ध्वनि सुनाई दी। उस सुदरी के शब्दो का रहस्य वह समझा नही, फिर भी समझाया गया हो ऐसा लगा। इस सपूर्ण जीवन-कथा से वेहस्वयं परिचित हो, ऐसा लग रहा था, पर फिर भी वह नवीन लगी।

"लेकिन भाई!" उस स्त्री ने खिन्न स्वर में बात आगे शुरू की, "मेरे सुख के दिन आकर लौट गये। एक दिन, हमेशा की तरह मैं बैठी-बैठी प्रतीक्षा कर रही थी—पर वह नही आया। मेरा वियोग जो कभी नही सह सकता था, उसी ने मुझे वियोग-वेदना से झुलसने दिया। मुझे कभी भी यह विश्वास नही था कि वह मुझे छोड़ जायगा, फिर भी वह नही आया। समय बीत गया—मैं वियोगिनी हो रही।

"वह अवश्य आयेगा ऐसा तो मुझे लगता था, फिर भी वह नही आया। उसके और मेरे सयोग से पैदा हुए वीर-पुत्र पिता का तेज दिखाते रहे। नदी और पर्वतो को पार कर वह मेरी कीर्ति समुद्र के अत तक ले गये।

"वर्षो वीत गये, पर न आया मेरा स्वामी, और न छूटी मेरी आशा। मैं तो प्रतीक्षा करती ही रही। वह नये जन्म मे आयेगा ही ऐसी श्रद्धा से मैं अपने विरही हृदय को आश्वासन देती रही। एक दिन किसी ने मुझसे मगल सदेश कहा कि जिस मानवता ने मुझे मोहांध कर दिया था, उसे यमुना किनारे देखा है। मेरा हृदय उत्साह से भर आया। अपने वीर के साथ जो दिन व्यतीत किये थे उनके सपने आने लगे। मैं उससे मिलने के लिये तत्पर हुई। मैं मिला पर मेरा हृदय निराश हुआ। यह मेरा वीर नही था। मैंने उसमें स्वस्थता देखी, कुशलता देखी, ज्ञान देखा—पर गगनभेदी उत्साह और प्राबल्य से उछलती हुई प्रचड मानवता—अपने प्रियतम का चिह्न —मैंने नही देखा। आशाभंग भामिनी की तरह खूब रोई।

"इस नये वीर को अपनी दैवी सपूर्णता के दर्प के आगे मेरी

निराशा की मूर्च्छा में पड़ी हुई मुझे वे सब भूल गये, और छोटे-मोटे अभिमानो का भग करने मे मेरी निराधारता बढ रही थी, इसे देखने की किसी ने भी परवाह न की।

"आशा छोड़ कर, अपने पति से अपरिचित स्थान पर बैठी-बैठी मैं एक दिन आँसू वहा रही थी। मुझे एसा लगा कि अपने स्वामी के बिना जीना निरर्थक है। इतने मे एक वृद्ध और ज्ञान-गंभीर द्वैपायन नाम के महात्मा आये। उन्होने मुझे विरह-व्याकुल देख सलाह दी, 'बेटा! श्रद्धावान कभी आशा नही खोता।' उनकी भलमनसाहत से आकर्षित होकर मैने उनसे अपनी करुण कहानी कह सुनाई। ज्ञानरत हृदय के औदार्य से द्वैपायन ने मुझसे कहा, 'सुन! आशा बिना श्रद्धा शक्य नही, श्रद्धा बिना सिद्धि संभव नही।' मैंने उनसे कहा कि 'मै वह किस तरह रखूं?' उन्होने मुझे जवाब दिया, 'संस्मरणो के सेवन से ही श्रद्धा निश्चल हो जाती है। बेटा! अपने स्वामी के संस्मरण मुझे बतला। मैं उनकी संहिता बना कर दे दूंगा। उस संहिता के पाठ से तेरी व्यवस्था बनी रहेगी।' इसके बाद उन्होने मेरा इतिहास सुना और उसको स्मरण-संहिता बनाना आरंभ किया। उन्होने वह थोडी सी ही बनायी और उसके बाद नैमिषारण्य में इकट्ठे हुए उनके शिष्यो ने उसको पूरा किया। और संहिता का पाठ कर, श्रद्धा की ज्योति सजीव रखने का प्रयत्न करती हुई मै जैसे-तैसे जीवन बिताती रही।

५

"इस नवीन श्रद्धा से मैं अपने प्राण की बाट जोहती रही। वह आयें तब ऐसा न हो कि मेरा विशाल भवन खाली दिखाई दे, इस डर से जो भी था मैंने उसको सचित्र रखने का प्रयत्न किया। स्मरण-संहिता का मनन करती हुई उत्साह को अविचल रखने के लिये कुछ नई बातें किया करती और वह आवे, तब जितनी तेजस्विता उनके

सामने थी उससे अधिक बताने के लिये ज्ञान-समृद्धि इकट्ठा करना आरंभ किया। वह आयें और मुझे देख कर निराश हो तो ?

"कुछ समय बाद एक प्रबुद्ध पुरुष आया। उसने सुमधुर स्वर मे मेरा दु:ख पूछा और अनुकपा धारण कर मेरा दु:ख निवारण करने की योजना निकाली। उसने मुझे अपने स्वामी का राग छोड़ कर, मेरे प्रणय के उत्साह को भस्म कर, अनिच्छित शाति धारण करना सिखाया। दु:ख और विरह से अशात बने हुए अपने हृदय को शात करने के लिये मै उस तथागत की शरण मे गई।

"कितनी ही औषधियाँ रोग से भी अधिक भयकर होती है। इस नवीन उपाय से जरा शाति तो जरूर मिली, पर मेरे प्रेम की अग्नि मंद हो गई, अपने स्वामी की रटन से प्रकट होने वाला उत्साह अदृश्य हो गया, और अपना रस-सरक्षण करने की चिन्ता जाती रही। मै विरहोन्मत्त गृहिणी के बदले एक लज्जा-विहीन साध्वी हो गई। अपने गौरव की रक्षा भूल कर, दूसरो का उद्धार करने के लिये मै भटकने लगी। मेरे विशाल भवनो मे और रमणीय कुञ्जो मे अपने स्वामी के स्वर की प्रतिध्वनि सुनने के बजाय, जिस किसी को भी—अनुकपा के आडबर से—मैने कोलाहल करने दिया। इस नवीन धर्म की शरण मे जाते हुए मै स्वधर्म की रक्षा भी न कर सकी।

"इस प्रकार मै साध्वी हुई, अपना उद्धार करने से पहले जगत् का उद्धार करने की इच्छा से जब मै चारो दिशाओ मे भटक रही थी तो दो व्यक्ति मुझे मिले। एक कौटिल्य नाम का राजनीतिज्ञ था, दूसरा एक उसका शिष्य था। द्वैपायन द्वारा सग्रहीत स्मरण सहिता मे से मेरे स्वामी की प्रेरणा उन्हे मिली थी। वह आकर मुझसे मिले। मेरा स्वरूप और स्वभाव देख कर दुखी हुए।

"देवी !' कौटिल्य ने भृकुटी चढा कर मुझसे कहा, 'तुम यह क्या ले बैठी हो ? अपने प्राण के सस्मरण भुला दिये क्या ? क्या उसकी

प्रतीक्षा करना बंद कर दिया? क्या प्रणयद्रोही विधवा की तरह तुम भी सतीत्व को साधुता में खोजने लगी? देवी, जो निर्बल है वही विस्मृति की शांति की खोज करता है। देवों को भी दुर्लभ तुम्हारी जैसी जननी का क्या यह शोभा देता है? चलो, घर लौट चलो! तुम्हारा प्राण लौट कर आयेगा तो क्या उसको अपने मंदिर की समाधि के नीरस शयनागार में उतारोगी? उसे पितृयज्ञ करना होगा तो क्या यवन और चीन संघ के पादस्पर्श से मलीन हुई वेदी की ओर इशारा करोगी? उसका जी तुम्हारे कुंजों में, तुम्हारे सौंदर्य को निरखने का होगा तो क्या व्रत से शुष्क शरीर का उपहार उसे दोगी? चलो, लौट चलो। हम तुम्हारे स्वामी का लौटा ले आयेंगे और तुम अपना आंगन सजा कर तैयार हो जाओ।'

"जब उस प्रतापी कौटिल्य को मैंने बोलते हुए सुना तब मेरा भ्रम दूर हो गया और मैं कैसी अधम हो रही थी इसका ख्याल आया। तुरन्त साधना का आडंबर छोड़ कर मैं अपने घर गई। मेरे हृदय में बचा हुआ प्रणय फिर सजग हो उठा और नवोढ़ा के उत्साह से अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में मैं फिर बैठ गई।

"उन दो व्यक्तियों ने भी जो हो सकता था, किया। सामान्य व्यक्तियों के संचरण से भ्रष्ट हुआ मेरा घर फिर सुघड और सुंदर होने लगा। मेरे वीर की कीर्ति को सुशोभित करे ऐसी उसकी भव्यता फिर से चमक उठी। उसकी मानवता जहाँ विश्राम ले सके ऐसे मोहक कुंजों में विहगों का कल्लोल फिर सुनाई देने लगा।

"और मेरे पुत्रों को भी पिता की खोज करने की प्रेरणा दी। मुझे संदेश भी मिलने लगे। मेरे स्वामी का पता लग गया हो ऐसा लगने लगा। वर्षों की विरहिणी मैं फिर प्रणयोन्मत्त हो गई। मैंने केश सँवार कर कुंकुम का टीका लगाया। मैंने परित्यक्त वस्त्रों को फिर से पहना। प्रतीक्षा में स्थिर मेरी छाती अधीरता से उछलने लगी। वह आया—

वह आया—का स्वर कानो में गूंजने लगा और अपने प्राणाधार के उत्साह की उर्मियाँ जैसे चारो ओर से मुझे घेरती हो ऐसा लगने लगा मैंने अपने स्वामी की पगध्वनि सुनी—उसका स्वर मेरे कानो से टकराया मैं उसका स्वागत करने के लिये दौड़ी।

६

"और कुछ दिन बाद खबर आयी कि कौटिल्य और उसका मित्र दोनो स्वधाम चले गये। निराश हृदय लेकर मैं वापिस लौटी। कौटिल्य के मित्र के अनुज ने बहुत कुछ आश्वासन दिया। मेरे स्वामी को खोज देने का वचन देकर वह ढूंढने चला गया। गया, वह गया। तथागत द्वारा सिखाई हुई शांति मे शोक-मुक्त होने के कारण वह मेरे प्राणनाथ की खोज करना भूल गया। ससार को भ्रम मान कर, उसने धार्मिक दिग्विजय से, देवो का प्रिय होना पसन्द किया।

"भाई! मैं सुरक्षित तो अवश्य रही, पर मेरे दुर्भाग्य का प्रारंभ हो गया। चाहे जैसे भी पुत्र क्यो न हों, पर पतिविहीन स्त्री निराधार रही है। सब मुझे सात्वना देने का इरादा रखते, मेरे गौरव की रक्षा का प्रयत्न करते, पर मेरा सुख गया सो गया। कितने कहते कि वे मेरे प्राण की खोज में फिर रहे थे, कितने ही निराश हो कर शांति की खोज कर रहे थे, कितने ही उदासीन बन कर किसी की भी परवाह न करते थे। अपने प्राणाधार की प्रतीक्षा करने मे मैं उनके प्रति अन्याय कर रही थी, इस प्रकार वह मुझसे कहते और इसी कारण मैं खुले दिल से प्रतीक्षा नही करती और अपनी विरह-वेदना किसी से कहती भी नही। ऐसे पराधीन जीवन मे कभी-कभी कोई विरला आशा के अकुर दिखाता है, पर इससे बनता कुछ नही।

"कैसी दुर्दशा! मेरा हृदय कहता कि मेरा स्वामी जीवित है। मैं उसकी प्रतीक्षा करती। रात-दिन सेज सजा कर उसकी पगध्वनि

पूजा करती, और मेरे पुत्र शांति के लाभ में उसको भुला देने का इरादा करते, नहीं तो पिता को स्वर्गीय समझ कर श्रद्धांजलि देने के लिये तत्पर होते। मुझे श्रद्धा थी कि मेरा प्राण सजीव है, और मेरे पुत्र उसे मरा हुआ समझ कर तर्पण करते। ऐसी भयानक स्थिति किसी ने देखी होगी ?

"अपना पुरुष जितना पत्नी को प्रिय होता है क्या उतना पुत्रों को कभी होता है ? श्रद्धा की उपेक्षा कर कितने ही तो पिता का स्वरूप भी भूलने लगे। मेरे प्राण की प्रचंड, तपसात्मक, सर्वांग सुंदर, प्रफुल्ल मानवता भुला कर उस यमुनावासी वासुदेव की चालाकी, स्वस्थता और विशेषकर विलास को आँखों के सामने रख कर उसको अर्घ्य देने लगे। जिसे वे मेरा प्राण समझने लगे थे, उसको मुझे परवाह न थी: जिसका मुझे प्रवाह थी उसे सब भूलने लगे थे।

"मेरे अंग शिथिल पड़ गये, मेरा रूप निस्तेज होने लगा। काल्पनिक शांति या निकम्मा विलास अपनाने में मेरे पुत्रों ने अपना और पराया नहीं समझा। लोग पड़ोसी को मार कर घर के मालिक होने लगे। पहले वे सम्मान देने के बहाने घर में आये और मेरा संरक्षण करने के बहाने घर में रहे। मेरे पुत्रों ने पिता के लौट आने की आशा छोड़ दी और पराश्रय में ही बड़प्पन का अनुभव करने लगे। जैसे युगों की निराधारता मेरे सिर पर आ पड़ी हो, इस प्रकार मैं अशक्त और अस्वस्थ बनी पड़ी रहती और पराधीनता तथा विरह की तीव्र वेदना भुलाने के लिये अपनी स्थिति का ही विचार करती रहती।

"मेरे पुत्रों ने मेरे स्वामी को भुला दिया और मुझे भी भूलने लगे। मेरे भवनों में पराये रास-क्रीड़ा करते, मेरे उद्यानों में परायों के पैरों की आवाज़ सुनाई देती और पराये ही मेरे, मेरे पुत्रों और मेरी समृद्धि के स्वामी बन कर आनंद लूटते। सृष्टि के सौंदर्य की मूर्ति सी मैं दूसरों की संपत्ति बनी रही। उसने मुझको हीरों से मढ़ा और किनख्वाब से

ढाँका। अगणित बाँदियाँ मेरी सेवा करती। मेरे द्वार पर हाथी झूमते और बोना गरजता। मेरे रंगमहलों में गवैयों की तान और सुवर्ण की पैजनियों से सुशोभित मयूर नृत्य करते। मेरा ठाट बेगमो जैसा था, मेरी गुलामी परदानशीन थी।

'—हाय! हजारो वर्षों के ऐसे वैभव-विलास का मैं क्या करूँ? एक क्षण भर के लिये मेरा प्राण वापिस आ जाये—एक पल भर के लिये मैं उसके साथ रह कर संयुक्त सुर से अपनी कुंजो को गूंजा दूँ—एक पल भर हम सयुक्त बल से अपना विजय-प्रयाण आरभ कर दे। पर यह हो कहाँ से? आनन्द और विलास के अंधकारमय वातावरण में कभी एक बार मुझे अपने स्वामी की याद आती और थर-थर काँपती हुई आँखे फाड कर मै चारों ओर देखती। मेरा प्राण आ जाये तो? क्या मुझे ऐसी अधम देख कर लौट जायगा?" उस देवी सदृश तेजस्वी स्त्री ने निश्वासें छोड़ी और पेड़-पत्ते तथा पृथ्वी ने निश्वास परंपरा से दिशायें कँपा दी। सुदर्शन की आँखो में आँसू झलक आये।

"एक दिन सह्याद्रि शृंग से एक वीर उतर कर आया—" देवी ने आगे कहा, "और अनेक विघ्नो को चूर कर वह मुझसे मिला। अपनी तीक्ष्ण आँखें तिरस्कार से फाड़ कर उसने मुझसे कुछ कहा. 'माँ! माँ! तुझे लज्जा आती है? तू भी अपने अप्रतिम से प्राणाधार की वाट देखना भूल गई है और इस क्षुद्र विलास में बेहोश हो गई है? तू यदि उसे इस प्रकार भुला देगी तो हम उसको कैसे खोज सकेंगे? उसके सस्मरण किस प्रकार सचेत रख सकेंगे? अबा? तू भी अपना गौरव और अपनी टेक भूल गई क्या? हमारा क्या होगा?'

"बेटा!" दुखार्त हृदय से मैंने कहा, 'सब मुझे भूल गये तो फिर मैं यदि अपने व्यक्तित्व को भुला दूँ तो इसमे क्या विस्मय?'

'मैं तुझे नहीं भूलने और न भुलाने दूंगा।' शंकर के अवतार सदृश वह उधर ओर वाला, 'मुझे अपने पिता का चिह्न और अपना आशीर्वाद दे। मैं जा कर तेरे और अपने प्राण का पता लगा कर ही रहूँगा।'

"कृतज्ञ हृदय से मैंने उसको आशीर्वाद दिया और अपने प्राणाधार के स्मरण-चिह्न की भवानी घड़ी मैंने उसे सौंपी, और हरमों की शान शौकत भूल कर मैं बालम की बाट जोहने लगी।

"लेकिन मैं क्या बाट देखूँ! मेरा भाग्य ही फूटा हुआ था। जो विदेशी विलासी मेरे घर में बसे हुए थे उन्हें जीत कर मैंने अपना बना लिया था। ये सब और मेरे पुत्र ऐसे मौजीले बन गये थे कि जान-बूझ कर अनुभवी व्यापारियों के हाथ अपने आपको बेच देने में ही आनन्द मानने लगे। हमारा सर्वस्व उनके हाथों में चला गया।

"उनके लिये न थी मैं महादेवी, न थी हरम की नूर—मैं तो एक मात्र थी काम करने वाली लौंडी। मेरी समृद्धि उनके भवन सुशोभित करने के लिये गई, मेरे पुत्र उनकी सेवा करने में रोक लिये गये। और मैं आर्य-जननी, जिसके उद्धार के लिये द्वैपायन जैसे ज्ञानी और कौटिल्य जैसे राजनीतिज्ञ मर मिटे थे, दासों की दास बन गई।

७

"मैं अधम से भी अधम हो गई हूँ। और इससे अधिक अधम दशा की मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। मेरा गौरव विलीन हो चुका। मेरे घर में पेट भर खाना भी नहीं। मेरे पुत्र पतित हो गये, वे अब दीन और निराधार हैं। मुझे रात-दिन बेगार करनी पड़ती है। इससे भी बुरी दशा तो मेरे अंतर की है। मैं आनंद-विलास में थी तो अपनी दशा को ही भूल बैठी थी, अब सेवा-धर्म का आचरण करते हुए मुझे उसका तीव्र भान होता है। मुझे अपना खोया हुआ तेज दुःख देता है, मेरा भग्न गौरव मुझे सदा ही झुलसाता है, मेरी लूटी-हुई समृद्धि के स्वप्न मुझे आते रहते हैं। अपने पुत्रों की दुर्दशा देख कर मेरी छाती फटती है।

मेरे प्रियतम की मूर्ति हर घड़ी, हर पल मेरी आँखो के सामने रहती है—मुझे कोसती है, मेरा तिरस्कार करती है, मेरी हँसी उड़ाती है। यह सदा ही कहते हुए सुनाई देता है कि मै आ रहा हूँ, मै यह आया; तू कैसी थी और आज तेरी दशा क्या है।

"अरे भाई ! उसके दर्शन करने के लिये, उसका स्वागत करने के लिये, उसको चरणवदना के लिये मै तरसती हूँ—कब आयेगा—और यदि आया भी तो क्या ऐसी अधम को अपना लेगा ? इन विचारो से आकुल बनी हुई मै इस एकात वन मे अपने प्रिय की प्रतीक्षा करती हूँ। तू जहाँ से आया है वही चला जा, मेरी कहानी में कुछ सुनने योग्य बात नही।"

सुदर्शन यह बात सुन कर दंग रह गया। वह इस सुदरी को पहले से ही जानता हो ऐसा लग रहा था, पर यह कौन थी यह स्पष्ट समझ मे नही आया। इस निराधार की सहायता के लिये वह तैयार हुआ।

"माँ ! घबरा मत ! मै तुम्हारे प्रिय की खोज करूँगा। मै प्रतिज्ञा करता हूँ। लेकिन वह कैसे जाना जाये ? वह कैसे पहचाना जाय ?"

आँसू बहाती हुई सुन्दरी के नयनो मे तेज झलक आया।

'मेरे प्रिय को कैसे पहचाना जाय ! बेटा उसे पहचानना आसान नही, किसी भी सृष्टि में उसकी जोड़ का दूसरा नही।

"जब गगन-विहारी और महत्वाकाक्षी मानवता के दर्शन करे—जब रौद्र-रस-प्रेमी और विनाश-विलासी प्रभाव देखे—जब सर्वांग सपूर्ण व्यवस्थात्मक सर्जकता दृष्टिगत हो, तब समझ लेना और पहचान लेना मेरे प्राण को !

"जब सीमाहीन और भ्रांति-विहीन ज्ञान के दर्शन करे—जब सूक्ष्म और विशाल दृष्टि दृष्टिगत हो—जब अंधकार का विध्वंस करने की सतत उत्कंठा का आभास मिले तो पहचान लेना मेरे प्रिय को !

"जब आचार-विचार की अवगणना देखे—जब उग्र और अविचल आत्म-निष्ठा के दर्शन करे—समय और स्थिति का स्वामित्व प्राप्त करने का निश्चय दृष्टिगत हो, तो पहचान लेना मेरे प्राण का !

"जब मनोहर भावना की सतत सेवा देखो—जब स्थूल और सौंदर्य की अविरत भक्ति के दर्शन करो—जब उसे व्यक्त करने की सर्वभक्षी महेच्छा दृष्टिगत हो, तो पहचान लेना मेरे प्राण को !

"जब दुष्प्राप्य कीर्ति की वैश्वानर-सदृश भूख देखो—जब सर्वोपरि सत्ता के सीमाहीन मोह का दर्शन करो—जब अपार समृद्धि सर्जन और सचय करने का चाव दृष्टिगत हो, तो समझ लेना मेरे नाथ को !

"जब आनन्दोन्मत्त मस्ती का मोहक नशा देखो—जब क्षण-क्षण का विलास अनुभव करने की अधीरता के दर्शन करो—जब स्थल, काल और देह का भेद होने पर भी प्राप्त प्रेम की परमसिद्धि दृष्टिगत हो, तो पहचान लेना मेरे प्राण को !

"जब देश और जाति से भी परे शाश्वत न्याय के दर्शन करो—जब वर्ण और योनि से भी परे औदार्य दृष्टिगत हो—जब दान का निरकुश लोभ देखो, तब पहचान लेना मेरे जीवनाधार को !

"जहाँ ये सब लक्षण एकत्र मिलें—जहाँ पल-पल मे जीवन का रस दिखाई दे—जहाँ प्राप्ति, कर्तव्य और उपभोग मे ही क्षण-क्षण की तपस्या समाप्त होती हो—जहाँ प्रफुल्ल शक्ति का निष्काम आविर्भाव दिखाई दे, वहाँ मिलेगा वह मेरा प्राणाधार !" कह कर वह सुन्दरी गर्व से चारो ओर देखती रही। दिशायें विजय-घोष कर रही हो ऐसा लगा, और सुदर्शन ने उसको पहचान लिया। उसके चरणों पर अपना सिर झुकाया और बोला, "पहचानता हूँ, पहचानता हूँ, माँ ! घबराओ मत। मै उसे ले आऊँगा। पर तुम कहाँ मिलोगी ?"

उस सुन्दरी ने ऊपर देखा। उसकी भव्य मुख-मुद्रा पर अवर्णनीय

वेदना दिखाई दी ..उसकी फैलती जा रही आँखो मे तिरस्कार था... .."मुझको, मुझको !" उसका अपमान हुआ हो इस प्रकार उसने कहा, "बिना बाप वाले प्राणियो को माँ कहाँ से मिले ?" और दिशाओ ने रोना आरंभ कर दिया। चारो ओर दूर तक दिखाई देने वाले तरुओ का आक्रंद सुदर्शन को बेधने लगा। उसे पसीना आ गया और प्राण व्याकुल हो उठे।

"मैं पहचानता हूँ—पहचानता हूँ!" कहता हुआ वह माँ के पास जाने लगा......एकदम सूर्य के ताप ने उसे जलाना आरंभ किया। चारो ओर देखा तो निर्जन टीले पर बैठा वह आँखें मल रहा था। धूप के प्रकाश मे पास बहती हुई सरिता चमक रही थी।

सुदर्शन ने आँखे मली, माथा दबाया, क्या वह सो रहा था ? क्या वह स्वप्न था ? क्या उसने स्वप्न देखा ! क्या वह हृदय मे रहने वाले भावो का सकलन कर रहा था ? क्या उसने दैवी संदेश सुना या उत्तेजित देश-भक्ति से निबंध लिखने की सामग्री एकत्रित की ?

वह उठा। सत्य की खोज करने का ध्यान उसे न रहा। उसने माँ को देखा था, उसका सदेश सुना था, उसका दुःख अपनी आँखो से देखा था। माँ ने उससे अपनी दुर्दशा का रहस्य कहा था, वह अपने प्राणाधार की प्रतीक्षा मे थी। उसका प्राणाधार. ....'जब देख ले तो पहचान लेना मेरे प्राण को ....' कहकर स्वप्न मे सुने हुए वाक्यो को वह याद करता रहा।

"माँ! माँ! मैं तुम्हारे प्राण को वापिस ले आऊँगा!" वह धीरे से खड़ा हो गया—"नही तो अपने प्राण दे दूँगा !" कह कर वह वहाँ से चल दिया और दौडता-दौडता टीले पर से नीचे उतरता हुआ बोला—"वंदे मातरम् ।"

माँ के दर्शनो के उपरान्त उसकी चिता और बढ गई। लगभग प्रतिदिन रात को माँ उसे दर्शन देती और दिनभर उसके स्वरूप, उसके

सौंदर्य और उसकी 'मुक्ति' का वह विचार किया करता। और इन विचारों में 'बंगाली' पत्र उसे बहुत मदद देता।

'स्वदेशी' की बंगाल से उठी आंधी चारों दिशाओं में बही। स्वदेशी विचार, स्वदेशी आचार, स्वदेशी वस्तु, स्वदेशी भाषा ये सब आदरणीय दिखाई देने लगे। सदर्शन को 'माँ' अपना गौरव फिर से प्राप्त करती हुई दिखाई दी। पुत्र 'माँ' को फिर पहचानने लगे।

कुछ न कुछ नई बात प्रतिदिन होती थी। कलकत्ते में स्वदेशी व्रत के लिये युवक अपने प्राणों की बलि देते थे, विदेशी कपड़ा खरीदने जाने वाली सुंदरियों के चरणों के आगे लेट कर उनसे स्वदेशी होने की प्रार्थना करते थे, और 'वंदे मातरम्' से 'माँ' का विजय-घोष गूंज उठता था। स्वदेशी होने के लिये 'वंदे मातरम्' गान गाने के अपराध में विद्यार्थियों को दंड दिया जाता था, शिक्षालयों को दी जाने वाली मदद रोक दी जाती थी और लोगों को डराने के लिये पुलिस स्कूल में और गुरखे गांव में बैठाये जाते थे। सरकार ने सरक्युलर निकाल कर 'वंदे मातरम्' गान पर पाबंदी लगा दी थी। 'वंदे मातरम्' गाने के लिये बंग युवकों ने 'एंटी सरक्युलर समिति' का निर्माण किया।

१४ वीं अप्रैल १९०६ को बैरीसाल में रसूल बैरिस्टर की अध्यक्षता में कान्फ्रेंस होने वाली थी।

दोपहर को दो बजे कान्फ्रेंस के सदस्य शांति से तीन-तीन की लाइन में राजा की हवेली से निकले। पहली पंक्ति में सुरेन्द्रनाथ, मोतीलाल घोष और भूपेन्द्रनाथ बसु—बंगाल के अमर नेता थे। दूसरी पंक्ति में अरविंद बाबू तथा और दूसरे लोग थे। पुलिस लाठियों से लैस थी।

जैसे ही एंटी-सरक्युलर समिति के सदस्य बाहर निकले कि पुलिस उन पर टूट पड़ी। नि:शस्त्र लड़कों को मारना तो आसान बात थी, लड़के वंदे मातरम् की ध्वनि से जवाब देते, यह भी स्वाभाविक सी

बात थी। परिणाम में सिर फूटे देश-भक्त युवकों के। चितरंजन गुह को तालाब में डाल दिया गया। सुरेन्द्रनाथ को पकड़ कर मजिस्ट्रेट के पास ले जाया गया। दूसरे दिन पुलिस ने कान्फ्रेंस को तितर-बितर कर दिया।

युद्ध प्रारंभ हो गया। समस्त हिंद में हजारों हृदय समरांगण में प्राण देने के लिये कूद पड़े। सुदर्शन के उत्साह का पार नहीं रहा। 'माँ' का 'प्राण' अनेक युगों के उपरांत वापिस लौटता हुआ दिखाई दिया।

बैरीसाल के कटु अनुभव के बाद अरविंद घोष वापिस लौट आये और बड़ौदा कालेज के विद्यार्थियों में 'माता की महत्ता' पर भाषण दिया। उसमें उन्होंने बैरीसाल की कहानी पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश डाला। सुदर्शन को ऐसा लगा कि बंगाल में जो चेतना फैल रही थी उसमें उसका भी भाग था।

माता की मुक्ति के, स्वदेशी के, स्वतंत्रता आदि के अनेक स्वप्न उसके मस्तिष्क में विचरण कर रहे थे, और उन सब को वह स्पष्ट स्वरूप दे रहा था। ऐसा लगता कि 'माँ' के प्राण को वापिस लाने का उत्तरदायित्व उस अकेले के कंधों पर था।

धीरे-धीरे कितने ही समान स्वभाव वाले विद्यार्थी एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर 'माँ' की भक्ति के संप्रदाय की कंठी एक दूसरे को बाँधने लगे।

अरविंद घोष ने इतने में त्यागपत्र दे दिया। 'माँ' की मुक्ति के लिये उन्हें बंगाल जाना था। उनका अंतिम भाषण सुनने के लिये समस्त मातृभक्त युवक आये थे और रात को भीमनाथ के तालाब पर मिलने का निश्चय किया था।

---

# भीमनाथ के तालाब पर

१

भीमनाथ का तालाब इस समय कहाँ है यह बता देना तो मुश्किल है क्योंकि उसे पाट कर अब उस पर बँगले खड़े कर दिये गये हैं। १९०६ में पक और पंकजो से भरा हुआ यह गंदा तालाब ढोरो को पानी पिलाने के काम आता था। कभी-कभी कालेज के विद्यार्थी तैरना सीखने का बहाना कर उसमे जा कूदते और उसमें रहनेवाली असंख्य जोंको के प्रभाव से अपना रक्त शुद्ध करने का अवसर पाते थे।

पाठक, केरशास्प, पंड्या और सुदर्शन जब वहाँ पहुँचे तो किनारे पर पाँच लड़के दो लैंप बीच में रक्खे हुए बैठे थे। वहाँ फैले हुए अँधेरे या भिनभिनाते मच्छरों की परवाह किये बिना ये उत्साही युवक देश का उद्धार करने के लिये यहाँ इकट्ठे हुए थे। अरविंद बाबू के भाषण के नशे में वे चूर थे। उनके हृदय साहस, आशा और कार्य-तत्परता से भरे हुए थे। उनकी आँखें स्वदेश-भक्ति से चमक रही थीं। कुछ करने के लिये और समय पर मरने के लिये भी वे तैयार थे।

सुदर्शन के साथ आये हुए तीन व्यक्तियो में से केरशास्प और मगन पंड्या के चारित्र्य की रूपरेखा तो पीछे बता दी गई है। पाठक इन सब से निराले स्वभाव का था। सुदर्शन उसका प्रिय मित्र था, पर उसके प्रेमभाव की सीमा उस मित्र से जरा भी आगे न बढती थी। वह दूसरो को शांति से या तिरस्कार से देखता और किसी को जब राजकीय विप्लव के स्वप्न आते तो उनका मजाक उडाने में उसे मजा आता। इतना ही नहीं, बल्कि किसी दिन गायकवाड़ सरकार का दीवान बन कर, दशहरे के दिन हाथी पर चढ़ कर, सिर पर चँवर

ढुलवाने की भी आकाक्षा रखता था। वह बड़ा तिकड़मी और अपने मित्रो मे अपना महत्व स्थापित करने के लिये ही उनकी राजकीय तथा सामाजिक योजनाओ मे शामिल होता था। वादविवाद मे एक ही था और बारी-बारी से एक-एक को मात देने के लिये वह बातचीत में पूरा-पूरा आनन्द लेता था। सरकार, काग्रस, धर्म, समाज, नीति, ये सब खरे भी है और साथ ही साथ खोटे भी है, यह उसने अपने दूसरे मित्रो से भी स्वीकार करा लिया था। वह तो इस समय मनोविनोद के लिये तथा सुदर्शन नाखुश न हो, केवल इन दो बातो के लिये ही यहाँ आया था।

जो पाँच लड़के बैठे, वे सब देश-भक्ति के उत्साह से पागल थे।

धीरु शास्त्री बी० एस-सी० का अध्ययन और टेनिस का खेल—दोनो को एक साथ साधने का यथाशक्ति प्रयत्न करता था। उसने आर्य समाजियो की सगति मे धर्मावलबी राष्ट्रीयता की शिक्षा प्राप्त की थी और सारी दुनिया को दयानद की दृष्टि से देखता था। इसे धार्मिक आडबरो के प्रति तिरस्कार था और प्रतिपक्षी यदि सीधी तरह न माने तो डंडे के न्याय से उसे सीधा करने के पक्ष में था। परीक्षा पास कर गुरुकुल काँगडी मे अध्यापक होकर आर्यसमाजी धर्म-प्रचारको को शिक्षित कर भारत मे सतयुग का प्रसार करने के लिये वह उतावला बना हुआ था।

उसके पास बैठा हुआ सनत्कुमार जोशी जरा उग्र दिखाई देने वाला सशक्त लड़का था। सामना करने के लिये, लड़ाई-झगड़ा करने या मोल लेने के लिये वह सदा ही तत्पर रहता। वह रोज सबेरे तीन सौ पचास दंड मारता और शाम को हनुमानजी के दर्शन कर, अखाड़े मे लड़ने जाता। उसके स्नायु लोहसम बने रहे इसकी उसे बहुत चिंता रहती। जहाँ भी शारीरिक निर्बलता देखता कि उसे ताव आ जाता और चाय, बीड़ी, मिठाई इत्यादि हानिकारक चीजो पर जहाँ-

तहाँ भाषण देता। इसने अभी से रावपुरे में एक अखाडे की आयोजना की थी और विद्यार्थियो का उठ-बैठ कराने मे उसे जो आनन्द मिलता वह किसी दूसरी चीज़ मे न मिलता था। छोटे और निर्बल शरीर वाले सुदर्शन की तरफ उसका तिरस्कार किसी प्रकार भी शात नही होता था, और उसे देख कर अपने हाथ के स्नायुओ की ओर गर्व से देखने लगता।

गिरिजाशकर शुक्ल जूनियर बी० ए० मे पढता था। इसका भाई गायकवाडी फौज में किसी पद पर था, अत उसे फौज का बहुत मोह था। उसने कवायद की थी और फौज की योजना सबधी कुछ निर्जीव पुस्तके पढी थी, और बार बार उनमे से प्राप्त ज्ञान का उपयोग करता था। दशहरे के दिन जब सवारी निकलती तो शुक्ल महाराज बडे अभिमान से अपने भाई को पहचानने के लिये आतुर रहते। वह बड़ोदा की प्रजा था और समाजीराव गायकवाड़ का अनन्य भक्त था। उसे इस नरेश की शक्ति में पूरा विश्वास था। गायकवाड़ द्वारा देश का उद्धार करने की योजनाये वह हमेशा बनाता और बिगाड़ता रहता।

नारण पटेल पैर फैला कर और हाथ पीछे टेके हुए बैठा था। जानवर की सी बेकदरी से उसने सिर पीछे की तरफ डाल रक्खा था। उसका मोटा शरीर ज़रा हास्यजनक लगता था। वह बी० ए० मे था और गणित मे एक ही। बोर्डिंग की दीवाले उसके गणित-प्रेम की सदा ही साक्षी देती रहती। और कागज़ न मिले तो कोट या कमीज पर दिन मे अनेक बार उसे गणित के सवाल लगाते रहने मे किसी को आश्चर्य नही मालूम होता था। प्रोफेसर की मदद वह कभी न लेता और समझ न सके ऐसे प्रश्न उनके सामने रखने में ही अपनी बडाई मानता था। मैकाले से उसे चिढ थी, क्योकि मैकाले को गणित बिल्कुल न आता था—यह बात उसके मन में बिल्कुल स्पष्ट थी, और गणित में

च्चाई होने के कारण ही नैपोलियन वाटरलू की लड़ाई हार गया ऐसा अभिप्राय वह बहुधा प्रकट किया करता था।

कई बार हाठ चबाता हुआ, रास्ते के बीच ही खड़ा होकर देश के विषय म विचार करना और क्रांति उत्पन्न करने की योजना बनाता रहता। वह क्रांति मात्र व्यक्तित्व वक्तृत्व से होने वाली है, ऐसी श्रद्धा होने से वह भाषण तैयार करने और रटने का काम किया करता।

मोहनलाल पारेख विद्यार्थी नहीं था, गायकवाड़ी नौकर था। वह बी० ए० पास कर चुका था और अरविंद बाबू से परिचित हो गया था। वह अच्छा खासा विप्लववादी था और गाँव-गाँव विप्लव-वाद का प्रचार करने मे ही मुक्ति मानता था। वह दूरदर्शी न था, पर उसकी दृढता दुर्जय थी।

इन सस्कारी और विशुद्ध हृदय वाले युवकों के अंतर में स्वातंत्र्य और मातृभक्ति की ज्वाला प्रज्वलित हो उठी थी पैगम्बरों के प्रति उनकी श्रद्धा अखड थी। गुजरात के प्रतापी आत्मा की चिंगारी सदृश इन लड़कों के हृदय में राष्ट्र-निर्माण ही परम ध्येय था—उसे स्वतंत्र करना यही प्रथम कर्तव्य था।

२

"पारेख! सब आ गये क्या?" केरशास्प ने पूछा।

"नहीं, अभी वह बंबई वाला नहीं आया।"

"आना चाहिये, शिवलाल को जगह मालूम है।"

"क्यों धीरजराम, क्या बात चल रही है?" पाठक ने पूछा और सब लैंप के आस-पास बैठ गये।

"मैं कब से कह रहा हूँ," नारण पटेल ने बीच मे कहा, "कि हम को 'सीक्रेट सोसाइटी' की स्थापना करनी ही चाहिये। आज स्थापना करो। फ्रांस, इटली—"

"सीक्रेट सोसाइटी से कहो कवायद हो सकती है ?" शुक्ल ने कहा।

"तुम मे कवायद करवाने की हिम्मत भी है ?" पाठक ने व्यंग किया।

"तुम ऐसा समझते हो तो क्या हम सब बेकार ही है ?" सनत्कुमार जोशी ने अपने स्नायुवाले हाथो की तरफ अनजाने ही दृष्टि डालते हुए कहा।

"लेकिन राष्ट्रीय उत्साह के बिना कैसे हो सकता है।" धीरजराम ने कहा।

"तुम्हारा ठिकाना ही कहाँ है ?" पाठक ने कहा।

"ज़रा सुनो।" आजन्म नरेश के गौरव से केरशास्प ने कहा। उसकी आँखो में और वाणी मे हमेशा सत्ता समायी रहती। सब शांत हो गये। "वक्त बहुत हो गया है, आज का काम समाप्त कर मुझे अभी कॅप जाना है। वादविवाद का यह वक्त नही है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी बात कहना चाहे तो कुछ समझ में आ सकता है कि हम लोगों को किस विषय में क्या राय है।"

"भारत स्वतंत्र होना ही चाहिये।" नारण पटेल के सीधा बैठने से ही जैसे स्वतत्रता मिल जाती हो इस प्रकार ज़रा तनकर बैठ गया।

"सिर्फ यही प्रश्न क्यो है ?" पाठक ने कटाक्ष किया।

"यही मुद्दे की बात है।" केरशास्प ने मजबूत पैर पर हाथ मारते हुए कहा।

"यह कौन है ?" किसी को दूर से आते हुए देखकर उसने पूछा।

"मै हूँ अबालाल।" आनेवाले ने उत्तर दिया और दो युवक वहाँ आये।

"साथ में कौन शिवलाल है क्या ?" पारेख ने पूछा।

'हाँ।' कहकर शिवलाल सराफ और अंबालाल देसाई बैठ गये।

"अब हम सब लोग इकट्ठे हो गये है।" केरशास्प ने कहा। प्रत्येक अपनी-अपनी योजना बताये। वक्त हो गया है। नारणभाई ! तुम्हारी क्या योजना है ?"

"मेरी योजना तो बहुत आसान है। हम एक गुप्त मंडल की स्थापना करें—कार्बोनारी* के समान। एक दिन एकत्रित होकर सत्ता पर आक्रमणकर उसे ले लें और काम पूरा हो जाय।" बहुत ही सहज काम बता रहे हो, इस प्रकार नारणभाई ने कहा।

"तुम को तो यह लड्डू खाने जैसी ही बात लगती है।" पाठक ने कहा।

"पाठक, अब विवाद बन्द करो ?" केरशास्प ने स्वयं लिये हुए प्रमुख पद से कहा।

"अच्छा तब ?" हँसकर पाठक ने जवाब दिया।

"पाठक है ही ऐसा।" नारणभाई ने कहा।

"मैंने तो गणित की तरह हिसाब लगा रक्खा है। पचास हजार अंग्रेज वैसा ही पाँच लाख का गुप्त मडल—एक अग्रेज के लिये दस हिन्दुस्तानी !"

"और तोपो की गिनती नही-" पाठक ने सुदर्शन के कान में कहा।

"अच्छा, मोहनभाई तुम्हारी क्या योजना है ?"

"लेकिन योजनाएँ इकट्ठी करने के बाद फिर क्या होगा ?" धंवालाल देसाई ने पूछा।

"आखिर देखना तो चाहिये कि कितनी जानकारी है ?" केरशास्प ने पूछा।

"मोहनभाई, तुम बोलो।" शास्त्री ने कहा।

"मैं तो उत्साह को प्रधानता देता हूँ। बिना उत्साह के त्याग नहीं होता। और यह उत्साह बिना राजद्रोही साहित्य के आ नहीं

---

*इटली का गुप्त मंडल।

सकता। अत. पहले चुपचाप प्रेस की स्थापनाकर चारों ओर चेतनता का साहित्य फैला देना चाहिये।"

"और प्रेस पकड़ा जाय तो?" पाठक से न रहा गया।

"एक पकड़ा जाने पर दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा। प्रेस नही तो लिख-लिखकर गाँव-गाँव और घर-घर असंतोष फैला देना चाहिये।"

"अच्छा, शास्त्री! तुम्हारी क्या योजना है?" केरशास्प ने पूछा।

"केरशास्प! मेरी बात तो यही है कि हिंदुओ का धार्मिक उत्साह जब तक परिवर्तित न किया जायगा तब तक कुछ हो नही सकता। मुझे तो एक विशाल गुरुकुल की स्थापना करनी है और उसमें महर्षियो को पैदा करना है। एक धर्म-ग्रंथी में सब को बांधकर हम देश के उद्धार के लिये आगे बढ़ेंगे तभी कुछ लाभ होगा।"

"सब महर्षि अंदर ही अंदर आपस में मर मिटेंगे, अतः हानि ही होगी।" पाठक ने सुदर्शन के कान में धीरे से कहा।

एकाग्र चित्त से सुन रहा सुदर्शन चिढ़कर बोला, "अरे भाई, सुनने तो दो।"

"मै तुम्हें अपनी योजना बतलाता हूँ।" गिरिजाशंकर शुक्ल से चुप नही रहा गया, "मेरी योजना सब से सरस है। मै बी० ए० पास करते ही गायकवाड़ी फ़ौज में भर्ती हो जाऊँगा और फौज को अपने हाथ में कर उसको बढ़ाता रहूँगा और उसकी शक्ति से गायकवाड़ सरकार को हिन्दुस्तान की गद्दी पर बैठाऊँगा।"

केरशास्प को भी जरा हँसी आ गई "इस फौज को बंदूक चलानी भी आती है या नही।"

"नही आती होगी तो आ जायेगी।" शुक्ल ने विश्वास दिलाया।

पाठक ने उपेक्षा से आकाश की तरफ देखा।

३

"पड्या, तुम क्या कहते हो ?" शुक्ल ने कहा।

"मैं तो यह समझता हूँ कि जब तक विलायत या अमेरिका जाकर इन पश्चिम वालो का रहस्य जान नही लिया जाय तब तक कुछ हो नही सकता। मुझे कोई पैसा दे तो पहले वहाँ जाकर सीख आऊँ। जापान का इसी तरह उद्धार हो गया न ?"

"यह पैसे की बात है। जापान में तो सरकार लड़कों को सीखने के लिये परदेश भेजती थी।" सनत्कुमार जोशी ने कहा।

"अपने यहाँ भी तो गायकवाड़ सरकार है।" गिरजाशंकर शुक्ल ने कहा।

"तुम्हारी क्या योजना है केरशास्प, यह तो बताओ ?" पाठक बोला, "यहाँ तो एक दूसरे का मत मिलता ही नही।"

"मेरी योजना तैयार है, पर एक बार सब को कह लेने दो—फिर मैं कहूँगा। तुम क्या कहते हो पाठक ?"

"जब सब कह लेंगे तो मुझे भी कुछ सूझ जायगा। यहाँ तो मतभेद ही इतना दिखाई देता है कि क्या होगा कुछ समझ में नही आता।"

"अच्छा, शिवलाल ! तुम क्या कहते हो ?" केरशास्प ने पूछा।

"देखो, देश का आधार संस्थाओ पर है और संस्थाओ का आधार उनके संचालको पर। जो हम इन सब संचालको को किसी तरह से अपने इशारो पर नचा सकें तो काम ठीक हो सकता है। सब संस्थाओ का हमें सूत्राधार हो जाना चाहिये, फिर और बातें तो अपने आप जल्दी-जल्दी हो सकती है।"

"यह तो बिल्कुल आसान बात है, क्यो ?" पाठक ने कहा।

"अरे भाई, जाने दो। और अंबालाल तुम ?"

"मेरी योजना तो तुम जानते ही हो।" आवाज धीमीकर

निश्चयात्मकता से देसाई ने कहा, "मैं एक मित्र के साथ बम बनाने की तरकीब खोज रहा हूँ। बिना विनाश के साधनों के कुछ हो नहीं सकता। शुक्ल की फ़ौज और नारायणभाई के गुप्त मंडल का पूरा आधार उस पर है। एक सुपारी जैसे बम से एक बड़ा महल उड़ जाता है, फिर क्या ?"

सब एकाग्र चित्त होकर गर्दन आगे किये हुए सुन रहे थे।

"समस्त यूरोप की सत्ता का आधार इसी शक्ति पर है। जिसके पास गोला-बारूद हो वही जीत सकता है। हमारे पास बंदूकें हैं नहीं, इसलिए कुछ ऐसा खोज निकाले कि इन सब से बढ़कर निकलें।"

"और सदुभाई, तुम क्या कहते हो ?" केरशास्प ने पूछा।

जब यह सब लोग बोल रहे थे तो जैसे वह सो गया हो इस प्रकार वह चौंक उठा। उसके मुख पर रक्त झलक आया, उसे ज़रा क्षोभ हुआ।

"मैं—मैं—पाठक तुम कहो।"

"मैं सब के बाद में......"

"सदुभाई, इसमें हिचकिचाते क्यों हो ? तुमने तो ऐसी योजनाएँ बहुत बार निकाली है।" केरशास्प ने उत्साह दिलाया।

"देखो," ज़रा काँपती हुई आवाज़ ने सुदर्शन ने कहा, "मेरे पास योजना नही पर एक दृष्टिकोण है। तुम सब ने एक-एक योजना कही—पर अपने-अपने विशेष दृष्टिकोण से; 'माँ' के दृष्टिकोण से नही।"

"कैसे ?" नारायणभाई ने पूछा।

"माँ बैठी प्रतीक्षा कर रही है।" ज़रा दुःख भरे स्वर मे सुदर्शन ने कहा, "उसकी स्वतन्त्रता चली गई है, शक्ति चली गई है, श्रद्धा चली गई है। जो सस्कार की जननी है उसे सब असंस्कारी समझते है। तुमने जो योजनाएँ कही है वे एक के बाद एक यदि अमल में लायी

जायें तो 'माँ' का भाग्य जागे । एफ हाथ खीचता है तो दूपरा पैर, इस तरह से कही काम हो सकता है ! ये सब योजनाएँ एक साथ अमल में लायी जाये ऐसी मानवता कहाँ है ? भगीरथ प्रयत्न करने की, तथा पार होने की, और मानवता माँ के चरणों मे धरने की शक्ति कहाँ है ?"

"मै भी तो यही कहता हूँ ।" शास्त्री ने कहा ।

"मै भी—" मोहनलाल ने कहा ।

"नही, जरा सा फेर है । धर्म के नाम पर कुछ करोगे तो धर्मांधता पैदा हो जायेगी । साहित्य द्वारा करोगे तो एकमात्र बातें करने का ही शौक बढेगा ।"

"लेकिन भाई, तुम क्या कहना चाहते हो कहो ?" नारायणभाई बोला।

"इतना ही कि भारतीय मानवता में व्यवस्था लाकर समस्त बंधनों को कुचल डाल, ऐसी क्राति किये बिना काम नही चल सकता।" सब सुदर्शन की गभीर आवाज को एकचित्त हो सुनने लगे ।

"यह तो कुछ समझ में नही आता, स्पष्ट कहो न ?" केरशास्प ने कहा ।

"कहूँ ?" सुदर्शन बोला, 'माँ' की निर्बलता तुम जैसी समझते हो वह एक प्रकार की नही । प्रेस बनाओगे तो लोग पढेगें नही, बनाओगे तो चलानेवाला नही मिलेगा, फौज खड़ी करोगे तो उसको विजय प्राप्त करना नही आयेगा । यदि यह बात न होती तो मुट्ठी भर व्यापारी अग्रेज तुमको इस प्रकार न जीत लेते । हम लोगो का रोग बड़ा भयकर है, हमारी मानवता दूषित हो गई है ।

"क्या कह रहे हो ?" नारायणभाई ने तिरस्कार से पूछा ।

"जो मेरी समझ मे आ रहा है वही । हम सड़ गये है । हममे बुद्धि है, साहस है, देश-भक्ति है, फिर भी हममें 'माँ' के प्रति तल्लीन श्रद्धा और व्यवस्थित मानवता नही है । गिने-चुने अग्रेज जी चाहे वहाँ रहते हैं, पर उनके उत्साह मे, उनके आवेश में व्यवस्था है । हम असख्य हैं

पर हमारे आवेश मे व्यवस्थात्मक उत्साह नही, उसे लाने की मेरी योजना है और उसके सफल होने परही तुम लोगो की योजनाएँ सरल हो सकेगी।"

"यही होता तो हम लोग इस हीन दशा को पहुँचते ही क्यो !" पाठक ने कहा।

"अच्छा, पाठक ! तुम क्या कहना चाहते हो ?" केरशास्प ने पूछा।

"तुम स्वयं ही कहो न !"

"तुम कहो।"

"नही, तुम।"

"अब तुम्हारी योजना क्या है !" नारायणभाई ने केरशास्प से पूछा।

केरशास्प ने शेर की तरह माथा ऊँचा करते हुए कहा, "इन सब योजनाओ का आधार तो पहले हाथ में आना चाहिये। 'जर है तो चाहे जो कर' पहले पैसा आये तो सब कुछ हो। मैं अब बबई जानेवाला हूँ। कितने ही रुई के व्यापारियो से मेरा संबध है। अगले वर्ष तुम्हें जितने रुपयें की आवश्यकता होगी मैं पूरा कर दूंगा। मै तो एक के बाद दूसरा कदम बढाने का पक्षपाती हूँ।"

"एकमात्र मेरी योजना में पैसे की जरूरत नही है।" छाती निकाल कर सनत्कुमार जोशी ने कहा, "गाँव-गाँव अखाड़े खोलना और भीमसेन तैयार करना—इसमें आवश्यकता है एकमात्र जलवायु और कसरत की।"

"—और पीने को चाहिये दूध।" केरशास्प ने कहा, "देखो, एक काम करो। साल भर तक हम सब अपनी-अपनी योजना पर आगे विचार करें। अगले साल हम जरूर कुछ काम शुरू कर सकेंगे।"

"लेकिन इस समय मिली हुई सभा टूटनी नही चाहिये।" नारायण भाई ने कहा।

"नही जी।" मोहनलाल ने कहा, "इसी समय मंडल की

स्थापना करो। एक मंत्री और एक प्रमुख नियुक्त करो। सब एक दूसरे के साथ पत्रव्यवहार रक्खो और अगले साल काम शुरू कर दो।"

"लेकिन पाठक, तुम्हारी क्या योजना है? कुछ है या नहीं?" गिरजाशंकर शुक्ल ने पूछा।

"मुझे तो यह सब हवाई किला लगता है।" शाति से पाठक ने कहा। सब लोग विस्मय और अधीरता से पाठक के तेजस्वी मुख की ओर देखते रहे। "तुम सब तो बच्चो की तरह बातें करते हो।"

"क्यो?" आँखे निकालकर केरशास्प ने पूछा।

"क्यो क्या?" पाठक ने तिरस्कार से आगे कहा, 'तुम्हारे गुड़ियो के इस खेल से ब्रिटिश सता थोड़े ही घबड़ाने वाली है? और यदि घबरा भी गई तो तुम कर क्या लोगे? तुम तैंतीस करोड़ भेड़ के बच्चे क्या कर सकते हो?" सुदर्शन स्तब्ध होकर अपने उस प्रिय मित्र की प्रश्नावली सुनता रहा।

"भेड़ के बच्चे!" सनत्कुमार चिल्लाया सब गुस्से से देखने लगे, पर पाठक की शांति भंग न हुई।

"भेड़ के बच्चे भी नही, जोशी! तैंतीस करोड भेड़ भी एक लाख गड़रियो के हाथ मे नही रह सकती।"

"उसका उपाय क्या है?" केरशास्प ने पूछा। सुदर्शन अपने— प्रिय मित्र के भयंकर वचन सुनकर दंग रह गया। पाठक इतना अश्रद्धावान था, इसकी उसे खबर न थी।

"कुछ नही, पर 'माँ' की भावी तो है।" क्रोध मे सुदर्शन ने कहा।

"माँ! जिसे तुम 'माँ' कहकर सबोधन करते हो वह वास्तव में है क्या इसका भी कुछ ख्याल है?"

जवाब में सुदर्शन ने क्रोध भरी दृष्टि से देखा।

"टाइम्स ऑफ इंडिया में नौकरी कर लो, नौकरी !" नारायण-भाई ने कहा।

"तुम्हारी सलाह फिर पूछूंगा।"

"तब तुम मंडल बनाने के विरुद्ध हो क्यों ?"

"बिल्कुल। और न मैं शामिल ही होऊँगा। कहो तो चला जाऊँ।" सब पर निरुत्साहमय शांति फैल गई। क्या करें यह किसी को भी नहीं सूझा। केरशास्प चेत गया।

"जाने की जरूरत नहीं !" उसने कहा, "तुम्हारी प्रामाणिकता में हमें विश्वास है। पाठक को यदि न पसंद आये तो वह भले ही दूर रहे। शब्दों से नहीं, बल्कि कामों से हम इसे अपना बना लेंगे। चलो अब देर हो रही है।"

"केरशास्प ! तुम अध्यक्ष पद लो।" सुदर्शन ने कहा।

"हाँ।" शिवलाल सराफ ने अनुमोदन किया।

"और सदुभाई तुम मंत्री हो जाओ।"

"मुझसे—"

"सदुभाई, तुम्हीं योग्य हो।" केरशास्प ने कहा और सदुभाई ने पद स्वीकार कर लिया। "चलो तब, वंदेमातरम् ! पाठक, रात में जरा विचार करना।"

"मैंने तो बहुत कर लिया है।" तिरस्कार से पाठक ने कहा। सुदर्शन ने उसकी ओर घूरकर देखा। उसके अंतर में बसा हुआ मित्रभाव झुलस गया था।

"अच्छा, वंदे मातरम्—वंदे मातरम्—" सब ने एक दूसरे से आज्ञा ली।

"सदुभाई !" अंबालाल देसाई बोला, "परीक्षा के लिये यदि बंबई आओ तो मेरे यहाँ ही उतरना।"

"नहीं तो मेरे यहाँ।" शिवलाल सराफ ने कहा।

"जरूर, जरूर।" कहकर सुदर्शन वहाँ से चल दिया।

४

सुदर्शन को आज का प्रसग ऐतिहासिक लगा। आज के मित्रो में उसे देशोद्धारक महासंस्था के बीज दिखाई दिये, और वह स्वयं उस संस्था का मत्री है इस गर्व से उसकी योजना और स्वप्नो का वेग बढा। एक वर्ष मे सपूर्ण योजनाओ को परिपक्व कर, एक महान-प्रवृत्ति 'माँ' के उद्धार के लिये आरंभ करना, उसे एक आसान काम लगा। धार्मिक आवेश, अखाडे का व्यूह, फौज, द्रव्य, छापाखाना, परदेश मे सहयोगी संस्थाएँ—ये सब एक व्यवस्थित मंडल के कब्जे मे रहेंगी, फिर क्या चाहिये? 'माँ' का 'प्राण' वापिस आने की पगध्वनि उसके कानो मे सुनाई देने लगी।

पाठक के द्रोह से उसका हृदय टूट गया। उसके लिये पाठक भाई से अधिक था। उसकी परिपक्वता, शक्ति और साहचर्य अपना ही है, ऐसा वह सदा समझता रहा। लेकिन वह अधमता की ऐसी तिरस्करणीय दशा में पड़ा है इसका उसे पता न था।

चुपचाप दोनो मित्र अपने रूम मे आये और कपड़े निकालकर सोने की तैयारी करने लगे। थोड़ी देर मे कृत्रिम हास्य से पाठक ने कहा: 'Good Night, सदुभाई! शाति-पूर्वक सोना!" मूक तिरस्कार से सुदर्शन ने जवाब भी नही दिया।

सुदर्शन ने सोने का प्रयत्न किया, पर वह अपने प्रयास मे सफल न हो सका। योजनाओ की परंपरा उसके दिमाग मे घूमती रही। अरविंद घोष का सदेशा अलग-अलग रूपो मे उसे सुनाई देने लगा। भीमनाथ के तालाव पर की बातचीत बार-बार उसके कानो से टकराने लगी। कालेज के आगे देखा हुआ भारत माता का भव्य मुख हर समय उसे दिखाई देता रहा। और प्रलय-क्राति पर चढे हुए उत्साह-सागर की प्रचड उर्मियाँ उछलती ही रही।

जाग्रत स्वप्नों में मस्त बना हुआ सुदर्शन सवेरे जल्दी उठा और छज्जे में कुर्सी पर बैठकर देश के उद्धार का विचार करने लगा। विचारो में वह इतना तल्लीन हो गया कि पाठक आकर पीछे खड़ा है यह भी उसे पता न चला।

पाठक की आँख में मैत्री भाव था। उसकी बड़ी आँखे, जागने से तथा खिन्नता से लाल हो गई थी। बहुत देर तक वह मृदुता से सुदर्शन की ओर देखता रहा।

"सदुभाई !"

सुदर्शन ने जवाब नही दिया। एक देशद्रोही उसके विचारों में खलल डाले यह उसे अच्छा न लगा।

"सदुभाई ! तुमसे कुछ बात करना है।"

"हमारी और तुम्हारी अब बात ही क्या हो सकती है ?" सुदर्शन ने दबी हुई भावनाओ से काँपते स्वर में कहा।

"बहुत कुछ, सुनो।" सामने आकर सत्ता से पाठक ने कहा। "मैं तुम्हारा मित्र हूँ। वर्षों से मैंने तुमको पहचाना है और अपने हृदय में स्थान दिया है। इस समय तुम कुएं में कूदने के लिये तैयार हुए हो तब तुम्हे सचेत करना मै अपना कर्तव्य समझता हूँ।" कह कर पाठक ने सुदर्शन के कधे पर हाथ रखा।

"मै बिना सोचे-विचारे कुछ करता नही।" कहकर क्रूरता से सुदर्शन ने अपने कंधे पर से पाठक का स्नेह भरा हाथ खिसका दिया।

"तुम गगनविहारी हो। कल जो मिले थे वे सबके सब मूर्ख है। इन सब के लिये कल की बातें हवाई किले है—तुम्हारे लिये वे वास्तविक है। बारह महीने बाद इनमें से किसी को भी कुछ याद नही रहने वाला।"

"अश्रद्धावान को आशा नही होती—इस लोक मे या परलोक मे।" सुदर्शन ने सूत्र-उच्चारण किया।

"मुझे जो जी मे आये सो कह लो। तुम मे बुद्धि है, महत्वकांक्षा है, शक्ति है। कीर्ति, प्रताप और द्रव्य तुमको सहज में ही मिल जायगा। इन सबको छोडकर एक विकसित जीवन पर इस प्रकार पानी फेरना है, यह देखकर मेरा दिल दुखता है।" आवेश मे पाठक ने कहा।

"तुम्हारा दिल दुखता है तभी तो मै दुखी हूँ। अपने सूत्र किसी दूसरे के लिये रखो तो तुम्हारा और उसका दोनो का कल्याण होगा। 'माँ' को कीर्ति, प्रताप और समृद्धि के अतिरिक्त मुझे और किसी वस्तु की लिप्सा नही।"

"फिर क्या होगा, इसका भी विचार किया है?"

"भीख का मुझे भय नही।"

"कुमौत मरेगा तो?"

"कितने करोड़ मरते है तो एक और भी सही।"

"तुम मेजिनो जैसे स्वप्न रचते हो, पर यह इटली नही—हिन्दुस्तान है!"

"अपने स्वप्नो से मुझे जगाना ही नही, क्यो बेकार हाथ-पैर पटकते हो! कल रात से हम एक दूसरे से अलग हो गये है। तुम गुलामो की भी गुलामी कर, किसी देशी नरेश के हाथी पर चढ़कर पीछी उड़ाना। मै किसी जेल के कोने मे सड़ूँगा। नही तो कोई गिलोटीन पर मेरे शरीर को वेध देना। हम दोनो के रास्ते अलग-अलग है, वे कभी मिल नही सकते।"

"हम दोनों की मैत्री—"

"अधीरता से सुदर्शन उठकर खडा हो गया, " 'माँ' के भक्त के अतिरिक्त दूसरे की मैत्री मेरे लिये वर्ज्य है।" और पैगंबर की-सी निस्पृहता से वह वहाँ से चला गया। पाठक की आँखो से आँसू बह निकले।

दिनभर पाठक बेचैन रहा और रात को सुदर्शन जब सोने आया

तब उसके हाथ में एक कविता दी। आँसुओं से भीगे हुए पत्र पर पाठक ने हृदय की व्यथा अंकित कर दी थी।

सुदर्शन ने शांति से उसे पढ़ा —

आ प्रेमी दिल पारेवडुं
शीद पाली पोषी सोंपवुं
को खाटकी निष्ठुर नें,
जाते न कां ए रेसवुं
ममतालु भोलु बापडुं
को वज्रसम साथे मल्युं,
ना जाणतुं ज गरीबडुं
मुज नाव हा! खडके चढ्युं!
कल्व कल्वो जई मले
तों थाय कुदरत-ने वले;

---

हिन्दी रूपान्तर

यह प्रेमी उर था एक विहग
जिसको जीवन में पाला था
पर किसी निठुर के हाथों में
क्यों हमने चुप दे डाला था?
स्नेहमय भोला विचारा,
वज्र से क्यों जा मिला यों?
वह भला क्या जानता था
मृत्यु से मैं जा मिला यों?
उर उरों से जा मिले यह
प्रकृति का अधिकार है रे?

तकदीर तेनां सांपड़े !
बीजा बिचारा शूं करे ?
धारी निहाली सोंपीयुं
शाफ़ीज मे जाणी खरे !
बेमहेर जालिम नीवड्युं
ते वाँक किस्मत नो अरे !
फरियादने ते दाद शी ?
उर बागीयां हाथे कर्यां !
खमवे खरे ! छूटको थशे
दुःखो खुदे वहोरी लीधां।
देह्या आ शोर शो
खुद दोस्त केरा जोर नो ?
सकुनत थी ना सखाय तो
मृत्यु थी बहेतर तोरशो !

---

हो विधाता क्रूर तो कोई
भला फिर क्या करे ?
समझ कर संजीवनी,
सौंपा तुम्हें था हृदय यह
हाय ! यह निर्मम हुआ तो,
भाग्य की ही है प्रलय यह।
याचना कैसी करें हम ?
आँसुओं में प्राण बोरे
स्वयं बंधन में पड़े औ,
दुःख भी हमने बटोरे।
ओ विहग ! तू मौन रह
तेरा भला अधिकार क्या ?
सह सके तो वेदना सह
मृत्यु का फिर द्वार है या !

एक पल भर के लिये सुदर्शन के हृदय में मैत्री-भाव का संचार हुआ। उसने खाट पर पड़े हुए पाठक की तरफ देखा और उसकी पीठ पर हाथ रखा।

"पाठक! माफ करो। मैं जरा जंगली हूँ। हम दोनो मित्र रहे है और रहेंगे। लेकिन हम दोनो अपने भविष्य का निर्माण अलग-अलग ही करेंगे।"

"जैसी इच्छा, पर हम मित्र ही रहे बस।" दोनों ने एक दूसरे का हाथ दबाया और खंडित मैत्री को जोड़ने का प्रयत्न करते रहे।

# प्रोफ़ेसर कापड़िया की दृष्टि

१

सुलोचना माँ-बाप के साथ बम्बई पहुँची और अपना जीवन सदा की तरह शुरू करने का प्रयास किया, पर यह प्रयास जैसा सोचा था उस सरलता से सफल हुआ नही। नामदार जगमोहनलाल उसके साथ कड़ेपन से वर्ताव करते, उसकी माँ जैसे उसे फुसलाती हो इस प्रकार बात किया करती। इन सब का आशय वह समझती थी—आशय वही 'घोंचू' था।

बैठी हुई टोपी, बटन खुला कोट, और मैली धोती मे देखे हुए 'घोंचू' को बिल्कुल भुला देना आसान न था। एक तो उसकी विचित्रता ऐसी थी कि याद रह जावे, दूसरे इसकी वजह से माँ-बाप के वर्ताव मे परिवर्तन हो गया था, और तीसरे वह स्वय ऐसे 'घोंचू' के लिये है, ऐसा कोई भी सोचे पर यह हीनता उससे नही सही जा सकती थी।

इसके उपरांत सुदर्शन की अमानुषी गंभीरता जैसे उसे चारों ओर से घेर रही हो ऐसा उसे लगा करता। नामदार जगमोहनलाल के बँगले की सुंदरता में, एल्फीन्स्टन कालेज के मौजीले वातावरण मे, प्रतिदिन के अध्ययन मे और खेल-कूद तथा तफरी के तूफान मे भी, एक अकल्पित-सा काला बादल क्षितिज पर आ जाता था और उसकी गंभीर छाया में, मौज, शौक, तफरी और तूफान पहले जैसी लहर में आते हुए दिखाई न देते थे। यह परिवर्तन उस 'घोंचू' के स्मरण से ही होता है ऐसा सुलोचना को लगा और सुदर्शन को अपना दुर्दैव (evil genius) समझने लगी।

इस दुर्दैव का असर उसे एक दिन स्पष्ट दिखाई दिया। वड़ौदा से आने के बाद, आठ दिन में केकी रुख ने एक टेनिस का टूर्नामेंट जीता। टूर्नामेंट समाप्त हुआ अतः हमेशा की तरह सुलोचना के चरणों में अपनी विजय का उपहार भेंट करने के लिये वह खोजता हुआ आ पहुँचा। सुलोचना एक वास्टी पर बैठी थी।

"केकी, आज तो तुम Splendid (अद्भुत) थे। सुलोचना ने प्रशंसा-सूत्र का उच्चारण किया।

"थैंक्स नामदार!" सुलोचना को उसके मित्र 'honourable' (नामदार) के नाम से पुकारते थे। "मैंने तो तुम्हारी ओर देख कर ही खेल शुरू किया था।"

सुलोचना इस खुशामद से फूल उठी और हँसकर कहा, "तुम्हारे 'कट्' से तो हद हो गई।"

"मुझे तो केवल 'रेकेट' ही इस तरह रखना पड़ता था—कि 'बॉल' जाती सटाक से।" केकी ने रेकेट से प्रहार का अभिनय किया।

सुलोचना गर्व से हँसी, पर जैसे ही उसने ऊँची आँख कर केकी के मुख की ओर देखा—पसीना होने पर, कढे हुए घुंघराले बाल, कमीज और कोट की सफाई पर उसकी नजर पडी; और उस 'घोचू' के बेक़दरी से रखे हुए बाल, गंदा कमीज़ और बैठी हुई टोपी याद आई। "केकी कैसा स्वरूपवान हैं।" उसने सोचा; पर कौन जाने क्यों नज़र के आगे वही काला बादल प्रत्येक पल घिरता और उसके अंधकार में केकी कृत्रिम, निर्लज्ज, छिछोरा और अविचारी दिखाई देता। उसने अपने दुर्दैव को दो गालियाँ दी और हँस कर उठी।

"केकी! अब मै घर जाऊँगी।"

"मेरी गाड़ी आ गई। छोड़ आऊँ।"

"मेरी भी आ गई है।"

"तुम्हारी Carriage (गाड़ी)"—कैकी ने कहा, "पीछे-पीछे आयेगी।"

"हाँ, चलो।" कह कर सुलोचना, दौडती हुई अपनी किताबें लेने गई। रुख ज़रा उसके शरीर की सुघड़ता देखता रहा और बड़-बड़ाया: "fine girl that!"

थोडी देर मे सुलोचना झटपट जीने पर से उतरी। उसका मुंह लाल हो रहा था। उसके सुंदर नथुनो मे स्वाँस जल्दी-जल्दी आ जा रहा था। एक सुमधुर हास्य उसके मुख पर था।

जैसे ही वह आई कि सामने के दरवाज़े से गमन दलाल आया। ऊँचा और सुगठित शरीर वाला गमन सुलोचना को हँसते हँसते निर्लज्जता से देख रहा था। उसकी छोटी सी टोपी असाधारण उद्धत-पने से सिर का चौथाई हिस्सा ढक रही थी। एक छोटी सी सुनहरे किनारो वाली सिगरेट उसके हाथ में थी। उसके पंप शूज मे चारों तरफ की शोभा प्रतिबिंबित हो रही थी।

"हलो! नामदार साहब! कहाँ चल दी—इतनी उतावली से?" हँसते-हँसते वह बोला और दरवाज़े पर तिरछा हाथ रख कर खड़ा हो गया।

सुलोचना आगे बढते हुए रुकी और हँसी "दलाल! How do you do?"

"A1" गमन ने जवाब दिया। "घोचू का कुछ समाचार?" गमन ने मज़ाक मे पूछा। सुलोचना ने बड़ौदे से आकर अपने कितने ही मित्रो से अपने नवीन परिचय की बात कही थी और परिणाम में सुलोचना के मित्रो मे 'घोचू' शब्द का उल्लेख बहुत प्रचलित हो गया था।

"Waiting—waiting for the marriage day?" सुलोचना ने कहा और निर्लज्जता से हँस पडी।

लेकीन इस निर्लज्ज हास्य के साथ एक समझ में न आने वाली उदासी सी छा गई। इस 'घोंचू' को देखने के बाद से यह हिचकिचाहट क्यों हुआ करती थी ?

इतने में उनकी आवाज़ सुन कर केकी रुख आया, "नामदार ! चलो न ?"

गमन ने घूमकर देखा और केकी से उसकी आँख मिली, दोनों पर बम्बई की पॉलिश चढ़ी हुई थी, अतः वे हंसे तो अवश्य पर हृदय में बसा हुआ एक दूसरे के प्रति तिरस्कार आँख में झलक आया। सुलोचना तो पुरुष-हृदय मे प्रलय मचाने के लिये ही पैदा हुई थी, अतः वह बिल्कुल नही डरी। उसने हँस कर गमन से कहा, "आते हो हमारे साथ ? हम केकी की गाडी में जा रहे है।"

"With the greatest pleasure" गमन बोला और टोपी उतार कर, नीचे झुक कर आज्ञा पालन की।

केकी भी उस्ताद था, "चलो, दलाल, ज़रा drive ही ले आवें।"

तीनो जने हँसते-हँसते और मज़ाक करते हुए चले।

२

स्त्री के हृदय मे दो इच्छायें स्वाभाविक पाई जाती है।

पहली इच्छा है पुरुषो की प्रशंसा प्राप्त करना। इस इच्छा के संतोष के लिये धनवान स्त्रियाँ बाल सँवारने में, मुंह रँगने में, पचरगी साड़ियाँ खरीदने और पहिनने मे, अलंकारों की विविधता से अपने को सजाने में ही जीवन पूरा करती है। शिक्षित स्त्रियाँ तेजस्विता प्रदर्शन करने में, बातचीत से मोह उत्पन्न करने में, गुलामो की परपरा को जाल में फँसाये रहने में ही अपनी विद्वत्ता का व्यय करती हैं। और गरीब तथा अशिक्षित स्त्री पति या पति के मित्रो की प्रशंसा प्राप्त करने का प्रयत्न करती है और उसके लिये भोजन बनाती है, पानी भरती है, बेगार करती है, उपवास करती है, बच्चों का पालन-पोषण करती है।

उसकी दूसरी इच्छा शांति प्राप्त करने की और शांति प्रदान करने की होती है। यह इच्छा बहुधा स्पष्ट दिखाई नही देती—दबी रहती है। पर चाहे जैसी भी स्त्री क्यो न हो, उसके अंतर मे किसी जगह शांति से बैठने की और किसी को शाति प्रदान करने की हौंस होती है। अशात, बनी-ठनी, अभागिन या गरीब भिखारिन स्त्री के जीवन मे भी एक अस्पष्ट पर अचल सपना, किसी के आँचल मे शांति पाने और किसी को अपने आँचल मे शाति देने का होता है।

इन दो विरोधी इच्छाओ की खीचा-तानी मे प्रत्येक स्त्री के जीवन का जहाज डगमगाता रहता है। कभी-कभी दोनों मे से एक पवन का प्राबल्य पाते ही जहाज गति के साथ चल देता है—पर कभी दोनों पवन एक दिशा की होने पर जहाज को किसी अनुपम किनारे पर लंगर डाल कर अपनी यात्रा समाप्त कर देनी पड़ती है।

सुलोचना को दूसरी इच्छा की अनुभूति न होती थी; इस समय विकास पाते हुए यौवन मे पहली ही इच्छा ने उसे आकर्षित किया था। गमन दलाल और केकी रुख जैसे फक्कड़ सहाध्यायियो की प्रशंसा किस कालेजियन के गर्व का कारण नही हो सकती?

केकी और गमन की खुशामद में मग्न सुलोचना का कितना रास्ता हँसी-मजाक में कट गया इसका उसे कुछ भी होश न रहा, पर चर्नी रोड के आगे उनकी गाड़ी एकदम रुकी, अत. उसने चौंक कर देखा तो नामदार जगमोहनलाल दूसरी गाड़ी से उसको बुला रहे थे। सुलोचना घबरा गई। उसका पिता उसे इस प्रकार देखेगा तो क्या कहेगा, इसका विचार उसने नही किया था। उसने एकदम अपनी पुस्तकें ली और मित्रो से कुछ भी कहे बगैर ही नीचे उतर गई।

नामदार जगमोहनलाल कोर्ट से वापिस लौट रहे थे। उनकी गाड़ी की अगली सीट पर ब्रीफ बैग पड़ी थी, अत: उन्होने हाथ के इशारे से

सुलोचना को अपने पास बैठने को कहा। सुलोचना बैठी और गाड़ी आगे बढ़ी।

"यह क्या सुलोचना ?"

"क्या पापा ?" निर्दोष मुख से सुलोचना ने प्रश्न करने की हिम्मत की। उसने देखा तो नामदार के मुख पर कठोरता के बादल घिरे हुए थे।

"इन लड़कों के साथ घूमने में सार नहीं।" उन्होंने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

"यह तो हम कालेज से साथ आ रहे थे, पापा !"

नामदार के माथे पर बल पड़ गये, तू समझती है कि मैं बहुत होशियार हूँ क्यों ? पर मेरे सामने यह नहीं चल सकती। सीधी-सीधी तरह नहीं चलेगी तो कालेज से उठा लूँगा।"

"पर मैंने क्या किया पापा ?" सुलोचना ने जरा तैश में पूछा। जगमोहनलाल के परिपक्व मस्तिष्क को उसका वह तैश अच्छा नहीं लगा। उन्होंने गौर से सुलोचना की ओर देखा।

"लड़की ! अपना यह मिजाज रहने दे। लिख-पढ कर तुझे गृहिणी होना है—नाम उछालना नहीं, समझी ? जल्दी ही विवाह के बाद ससुराल जाना है।" उन्होंने आदेश दिया।

"उस बदौदा वाले के यहाँ तो नहीं।" लाडली बेटी ने जवाब दिया।

"किसके यहाँ जाना है वह मैंने तुझसे नहीं पूछा था। जो कहूँ वह किया कर। खबरदार आज से जो इन लड़कों के साथ फिर घूमने गई तो !" डाटते हुए नामदार ने कहा।

सुलोचना बाप का स्वभाव जानती थी इसलिये वह चुप हो गई। बाप और बेटी बहुत देर तक चुप रहे। नामदार जगमोहनलाल गंभीर विचारों में डूबे रहे।

थोड़ी देर में नामदार ने एकदम तनकर कहा :

"लालू !" कोचवान को पुकारा, "प्रोफेसर कापड़िया के यहाँ गाड़ी ले चल।"

"जी।" कह कर लालू ने गोवालिया तालाब की ओर गाड़ी मोड़ दी।

सुलोचना को बुरा लगा। प्रोफेसर कापड़िया नामदार का कालेज का मित्र था और बार-बार उसके यहाँ आता था। सुलोचना को उसका विशाल और कुरूप कपाल, छोटी गहरी आँखे, दुबला-पतला सा छोटा शरीर, छोटी-सी धोती या सलवटदार पतलून और दाँतो से चबाये हुए जूते देख कर हमेशा डर लगता था। उसके पिता जैसे तेजस्वी मनुष्य की ऐसे इतिहास के पुराने प्रोफेसर के साथ कैसे मित्रता हो सकती है वह उसकी समझ में नही आता था। कभी-कभी दोनो मिलते पर जब नामदार प्रोफेसर के यहाँ जायँ तो दो चार घंटो से पहले तो लौटते ही न थे। इस समय कौन जाने कैसी माथापच्ची सुननी पडेगी—उसने सोचा।

गोवालिया तालाब के आगे एक गली मे, एक घर के सामने गाड़ी खड़ी हो गई। लालू ! जा, जाकर देख आ कि कापडिया सेठ अन्दर है?

कोचवान उतर कर ऊपर गया और लौट कर कहा, "है साहब आपको बुला रहे है।"

"सुलोचना ! तू चलती है?"

सुलोचना का मन तो 'ना' कहने को हुआ पर नाराज पिता को खुश करने के लिये उसे यह तपश्चर्या स्वीकार ही करनी पड़ी। "हाँ" कह कर उतर पड़ी।

"लालू ! जा, बहूजी से जाकर कह आ कि मै और बहिन देर से घर लौटेंगे।"

३

जब नामदार जगमोहनलाल और सुलोचना ऊपर पहुँचे तो प्रोफेसर कापड़िया ने दरवाजा खोला।

कापड़िया के यहाँ आते हुए सुलोचना की अरुचि बिल्कुल स्वाभाविक ही थी यह प्रोफेसर को देखकर कोई भी कह सकता था। उन्होंने एक छोटा सा अगोछा पहन रखा था और नामदार के आगमन के मान में कंधे पर चद्दर और डाल ली थी। उनका शरीर छोटा सा और छाती की माप बिना नापे ही एक फुट बतायी जा सकती थी। बैठे हुए जबड़ों में से दांत आगे दिखाई देते थे। छोटी और धँसी हुई आँखों पर एक मोटा-सा चश्मा शोभा दे रहा था, कपाल ज्ञान के भार से आगे को लचक गया था और कुछ-कुछ हाथी के माथे की याद दिलाता था। सिर सपाट—एकमात्र पीछे चोटी के दो तीन बाल हिला करते थे।

"जगमोहनलाल, भाई आओ!" प्रोफेसर ने अपनी जानी-पहचानी मुस्कराहट मुख पर ला कर आने के लिये कहा और हाथ मिलाया।

"कापड़िया! सुलोचना को पहचानते हो न?"

कापड़िआ ने सुलोचना की ओर घूमकर देखा और बोले, "सुलोचना! पहले देखी तो थी।" प्रोफेसर ने कपाल पर हाथ रख, "मैं फरवरी में आया था—सतरह तारीख को—मुझे याद है।"

"मैंने इसको एल्फीन्स्टन कालेज मे भर्ती कर दिया है।"

"हमारा कालेज देहाती है क्यो? आओ, बैठो।" दो कुर्सियो पर से पुस्तकें जमीन मे रखते हुए कापड़िया ने कहा।

कापडिया के दीवानखाने में एक कदम भी इधर-उधर चल सकना बड़ा मुश्किल था। चारो तरफ दीवाल में आलमारियों और तख्तो पर पुस्तको के ढेर के ढेर पड़े थे। इसी में तीन टेबिल थी उनके ऊपर और नीचे किताबें ही किताबे खुली हुई, अधखुली जैसे भी हो पड़ी हुई थी। जितनी कुर्सियाँ थी उनके ऊपर, उनके नीचे उनके आस-पास भी उसी तरह दूसरी पुस्तकें पड़ी थी और इसके पीछे जहाँ घूमने की जगह थी वहाँ जमीन पर किताबों और कागजो का ढेर लगा हुआ था। इन पुस्तको से भरे हुए खंड में स्वच्छता या व्यवस्था का नाम-निशान

न था: और इन पुस्तकों को देखने पर कैसा लगता है इस प्रश्न को हल करने में तो बुद्धि को भी मूर्छा आ जाय।

इन पुस्तकों से बनाई हुई गुफा में कापड़िया जीवन बिताते थे और पिछले हिस्से में उनकी मौसी उनके लिये भोजन बनाती और एक तरह से सब काम-काज करती थी।

प्रोफेसर में जितना ज्ञान था उतनी ही जीवन की सामान्य आवश्यकताओं के प्रति उनकी अनिच्छा भी थी। कितने ही वर्ष हो गये किसी ने उनकी तनख्वाह नहीं बढ़ायी थी: साधारणतया तो तनख्वाह मिली या न मिली यह याद रखने की तकलीफ भी वह गवारा न करते थे। दिन-रात वह पुस्तकों में जुटे रहते और जिस तरह फेफड़ा हवा लेता है उसी प्रकार उनमें से तत्त्व निकाल लेते थे। उन्हें ज्ञान का प्रदर्शन करने की या उसका मूल्यांकन करवाने की परवाह न थी। और दूसरे प्रोफेसर उनके द्वारा दिये हुए आधार पर पुस्तकें लिख कर पैसा कमाते तो इससे उन्हें जरा भी असंतोष न होता था।

सामान्य व्यवहार में वह एक छोटे बच्चे जैसे थे।

"जगमोहन भाई! अच्छा हुआ तुम आ गये।" प्रोफेसर ने कहा, "मुझे एक बड़ी मुश्किल आ पड़ी है।"

"क्या? किताबें मँगवाई होंगी।"

"हाँ!" प्रोफेसर ने एक छोटे बच्चे की सी निश्छलता से हँसना शुरू किया। "और देने के लिये पैसा नहीं है।"

नामदार जानते थे कि यह पुस्तक-प्रेमी प्रोफेसर पुस्तकों की कीमत के सिवाय कभी भी भीख नहीं माँगते थे।

"कितने रुपये चाहिए।" कहकर नामदार ने जेब से चेकबुक निकाली।

"पाँच सौ उन्तालिस पंद्रह आने।"

नामदार ने चुपचाप चेक लिखा और कापड़िया को दे दिया।

"मैं फिर सब दे दूँगा।" प्रोफेसर ने कहा।

नामदार हँसे । कितने ही चेक उन्होंने कापड़िया को दिये थे ।
"चिन्ता मत करो मेरा कुछ पिछला चाहिये ही नही ।"

"अच्छा अब बोलो कैसे आना हुआ ?" चश्मा नाक पर सरकाते हुए कापड़िया बोले ।

मैं तो बैठ गया अब तुम तो बैठो, भला बिना बैठे हुए बात हो सकती है ? जगमोहनलाल ने कहा "मुझे तुमसे बहुत कुछ पूछना है ।" उतावली सुलोचना के पेट मे पानी-पानी हो गया ।

"बोलो ! प्रोफेसर एक स्टूल पर से पुस्तकें फेंक कर उस पर बैठ गये, क्या कहना है ?" हास्यजनक गंभीरता से उन्होंने कान के पास हाथ रक्खा ।

"तुम आजकल अखबार तो पढते हो न ?"

प्रोफेसर ने गर्दन हिला कर हाँ कही ।

"इस समय बगाल में जो तूफान मचा है उसके बारे मे तुम्हारी क्या राय है ?"

प्रोफेसर ने उँगली और अगूठा दोनो भौ पर रखे "किस तरह ?"

"तुम इसे क्या समझते हो ?"

"नव निर्मित राष्ट्र ने रोना शुरू कर, जीना चाहता है ।"

"पर बहुत से तो इसे संपूर्ण राष्ट्रीयता का उद्भव समझते है ।"

"मूर्ख मूर्ख !" सिर पर ऊँगुली ठोक कर प्रोफेसर ने कहा । उनकी छोटी-छोटी आँखें बिल्ली का अनुकरण करती हुई खुलने और बद होने लगी । "इतिहास का अज्ञान । संपूर्ण राष्ट्रीयता Geographical Compactness (भौगोलिक सुसंबद्धता ) के बिना संभव ही नही ।"

"तो क्या हम Ceographical unit (भौगोलिक व्यक्ति) नही है ?"

"नामदार जरा चिढ़कर कापड़िया से कहा "तुम्हारे जैसे कायदे-बाज ही तो ऐसा गड़बड़ घोटाला करते है । भौगोलिक व्यक्ति हुए कि राष्ट्र का हाड़ पिंजर तैयार हुआ । बस इतना ही । जब भौगोलिक

सुसंबद्धता आवे तब nervous system (तंतुरचना) तैयार हो। फिर जब राष्ट्रीयता का भान हो तो प्राण आये और राष्ट्र का जन्म हो।"

"पर अंग्रेजी राज्य से Geographical Comdactness तो आ गई।"

कापड़िया ने फिर सिर पर हाथ मारा, "सुनो नामदार! बीच-बीच मे अपना दिमाग मत झोको।" प्रोफेसर ने जैसे क्लास में शाति बनाये रखने के ढग से कहा। सुलोचना को चैन पड़ी। उसके बाप के साथ कोई ऐसी उद्धत रीति से बर्ताव करे यह उसको इस समय बहुत अच्छा लगा।

४

"जब राजकीय जीवन का जन्म हुआ" प्रोफेसर ने आगे कहा, "तब पहले जन्म हुआ नागरिकता का। नगर यह गाँवों की पहली भौगोलिक यूनिट हुई। एथेन्स स्पार्टी जैसे छोटे-छोटे शहरो मे भौगोलिक सुसंबद्धता तो खेल जैसी बात थी। पलक मारते ही सब लोग इकट्ठे हो सकते थे और विचार-विनियन कर सकते थे। इस सुसबद्धता से जन्म हुआ विशिष्ट सस्कार का, समझे?" प्रोफेसर ने पूछा।

"लेकिन रोम का क्या हुआ?"

कापडिया ने नाक पर उँगली रक्खी और नामदार चुप हो रहे।

"इस विशिष्ट सस्कार मे आई अस्मितता—अर्थात नागरिकता पैदा हुई। समझे! यह नागरिकता प्राचीन इतिहास की महाशक्ति है। समाज के जोवन मे it (व्यक्ति) देखे तो नगर है। उसमे रहने वालो में नगर व्यक्ति है यह भान आ जाये तो नागरिकता। राज्य-व्यवहार में युद्धो में इन्हीं व्यक्तियो की मार-काट रस्साकसी struggle for existence, जीवन विग्रह मे तड फडाहट है अब रोम का पूछते हो! प्रजासत्तात्मक रोम मे भी थी भौगोलिक व्यक्तित्व और सुसंबद्धता—और अक्षय नागरिकता Civic Romanus Sum (मैं रोमन शहरी हूँ)

इस महामंत्र की व्यतुत्पत्ति हुई समझे ? रोम का कुत्ता यह मंत्र पढ कर सीरिया और गॉल मे शेर वन वैठा । मिश्र और स्पेन के विजेता की भी दृष्टि, आशा और भक्ति रुक गई टाइवर के किनारे पर । रोम के बाजार की छोटी सी तकरार, यही उसके लिये सृष्टि-क्रम था समझे ?" कापडिया ने स्वांस लिया और सूँघनी की चुटकी भर कर उसे उँगली से नाक में रखने की क्रिया पूरी की । छींक खाई और नाक पोंछी ।

"हमारे यहाँ भी यह नगर-धर्म था और उसके फटे-टूटे चिथड़े इस रूढ़िवद्ध देश में अव भी मिल जाते है । मोढ और श्रीमाली अपनी जाति को निराला समझते है और आपस मे ही व्याह-शादी करते हैं और मोढेरा तथा श्रीमाल की नागरिकता का ही दम भरते है । बड़नगर का नाम-निशान मिट गया, सदियाँ वीत गईं, इस वात को पर वहाँ के एक समय के रहने वालो के हृदय मे वसे हुए नगर-धर्म की प्रतिध्वनि आज भी प्रत्येक 'नागर' मे मिलती है और यह भूल जाने जैसी विशिष्टता भी कभी-कभी दिखाई पडजाती है । जव दुनिया का एक वडा भाग नागरिकता छोडकर राष्ट्रीयता के पास पहुँचने लगा है वैलगाडी में यात्रा करने वाले हिन्दुस्तान ने अभी नागरिकता की सीमा पार नही की । समझे ?" कह कर अपनी होशियारी पर कापड़िया हँसे जगमोहनलाल एकचित्त से सुन रहे थे । इस विषय में सुलोचना को भी आनन्द आया ।

"पर हम लोग तो राष्ट्रीयता..." जगमोहनलाल ने पूछना आरभ किया ।

"फिर वीच मे बोले ?" कापड़िया ने उँगली ऊँची की; तुम्हे तो एकडा रटने से पहले ही गुणा का सवाल पूछना है । शाति रखो ।" हास्यजनक ढंग से प्रोफेसर ने कहा, "देखो रोम ने नागरिकता का विकास कर व्यक्तित्व प्राप्त किया पर जीवन-विग्रह मे विजेता होने के लिये Pax Romana (रोमनशाति) का मंत्र रचा Pax Romana अर्थात्

व्यवस्थित हरामखोरी। दूसरे देशो को जीतने के लिये उनको निर्वीर्य करना और उनका रक्षण करने के बहाने उन्हे निःसत्व करना, फिर उन पर रोम का जुआ लाद देना। रोम का जुआ अर्थात् दुनिया के व्यय पर एक नागरिकता को श्रेष्ठ बता कर एक नगर को समृद्ध करना। रोम का मजदूर सीरिया मे प्रीफेक्ट बने। रोमन साम्राज्य अर्थात् दुनिया की व्यवस्थित लूट करने का एक नगर के रहने वालो का षड्यत्र। दूसरे शब्दो मे कहूँ तो जैसे पहले ज़माने मे एक राजा अपनी सत्ता और शौक के लिये सारे गाँव की दूसरे राजा से रक्षा करता और अपने लाभ के लिये उसका उपयोग करता, उसी प्रकार रोम ने भूमध्य सागर के किनारे की दुनिया को दूसरो से सुरक्षित रखा, वह भी केवल अपने उपयोग के लिये ही।"

"जैसे आज इग्लैड कर रहा है उसी प्रकार..."

"अरे नामदार—"कापड़िया ने चिढकर कहा, "तुम तो दाल पीसने से पहले ही तेल पी जाते हो।" नामदार और सुलोचना हँसे।

प्रोफेसर ने फिर शुरु किया, "प्रगति का क्रम किसी को चुपचाप बैठने नही देता। रोम ने नागरिकता का सिद्धात भुला कर इटली को एक व्यक्ति करने का प्रयत्न किया। सारे देश में घोडे और बैलो के दिनो मे भौगोलिक सुसबद्धता कहाँ से आवे ? परिमाण-स्वरूप नगर-धर्म का लोप हो गया और रोम का पतन हुआ।" कापड़िया ने फिर सूँघनी सूँघी। वास्तव मे ठीक-ठीक देखा जाय तो वह सूँघनी सूघते न थे, पर यथाशक्ति सूँघनी नाक के नथुनो में उँगली से ढकेल देते थे। उन्होने पहनी हुई लुगी के सिरे से नाक पोछी।

"रोम का पतन हुआ और यूरोप में नागरिकता समाप्त हो गई। हमारे यहाँ चित्तौड़ में, पाटण में, जब पूरी तरह से मुसलमान आ गये तब तक यह रही। इस देश मे इतिहास और उत्क्रांति की चिता किये बिना ही पुरानी चीज़ो की किस प्रकार रक्षा की जाती है, यह भी

देखने योग्य ही है। रोम ने रास्ता साफ कर दिया था। भिन्न-भिन्न लोगो को इकट्ठा लाना था। और रोमन साम्राज्य के खंडहर में से नवीन घटना हुई तब भौगोलिक स्वास्थ्य का उपभोग करने वाले लोग अपने को एक मानने लगे। शीघ्र ही देश एक भौगोलिक व्यक्ति होने लगा—इटली, फ्रास, इग्लैड—"कापड़िया ने एक जोर की छीक खायी और श्वांस लिया।

"देखो, अब राष्ट्र कैसे बने ?" हाथ घिसते-घिसते कापडिया ने कहा, "इटली में छोटे-छोटे राज्य और रोमन सत्ता का वारिस कैथोलिक चर्च—इसलिये वहाँ न जाने कब तक भौगोलिक व्यक्तित्व न आया, दूसरा तो आवे ही कहाँ से ? फ्रांस में भौगोलिक व्यक्तित्व आया—सुसवद्धता आई, विशिष्ट सस्कारो का भान हुआ। राष्ट्रीय बल का जन्म हुआ। लेकिन जैसे रोम ने नागरिकता सिखाई उसी प्रकार इग्लेड ने राष्ट्रीय भान खूब कराया। क्या समझे ?"

देखो, फिर से हाथ मसलते हुए प्रोफेसर ने कहा, "प्रकृति ने इग्लैड को भौगोलिक स्वास्थ्य और व्यक्तित्व दोनो दिये। चारो ओर समुद्र। बेचारे फ्रास ने पहला कदम उठाया यह ठीक है लेकिन चारो ओर समुद्र कहाँ से लाये ? और भौगोलिक सुसंवद्धता जल्दी ही आ सके इतना छोटा-सा विस्तार। एडिनवरा से लंदन आने में देर कितनी ? लंदन तो एकमात्र अंग्रेजी फोरम है। चारों दिशा से पलक मारते ही सब आ पहुँचते हैं। राष्ट्रीय चेतना को प्रकट करने के लिये कैसा सरस स्थान है ? आवश्यकतानुसार छोटा, आवश्यकतानुसार बडा। परिणाम-स्वरूप अंग्रेज जहाँ जाय वहाँ Iam British यह चेतना और उनका यूनियन जैक God Save The king अपने साथ ले जाता है। चाहे वह अफीका के जंगलो में घुमे चाहे शिमला की शीतलता में फूला-फूला फिरे लेकिन उसकी दृष्टि टेम्स के किनारे बसे उसके राष्ट्रीय फोरम पर—लदन पर ही रहती है। वहाँ की वेषभूषा उसकी वेषभूषा वहाँ की भाषा उसकी

देववाणी, वहाँ का आनन्द उसका आनंद, वहाँ की कला वह उसके सौंदर्य की पराकाष्ठा, वहाँ माने जाने वाला वीर वह उसका देवता— और वहाँ जाकर बुढ़ापे में किसी निर्जीव मुहल्ले में गरीबी में भी मरना उसके लिये मोक्ष है। देखो कितने मुग़ल और पेशवा सरदारों ने स्वतंत्र राज्य स्थापित किये—किसी अंग्रेज-वायसराय को ऐसा सपना भी आया है? अरे, डेढ़ सौ साल पुरानी मुग़लाई की तड़क-भड़क छोड कर वारेन हेस्टिंग्ज भी अंत में वहीं सड़ने के लिये चला गया। यह है राष्ट्रीयता—संपूर्ण राष्ट्रीयता। समझे?" कहकर कापड़िया ने छींक खाई और फिर सुंघनी सूँघी। अपने विषय में वह तल्लीन हो गये थे और शब्द ऊपर-नीचे एक दूसरे से सटे हुए जल्दी-जल्दी बाहर निकलते रहे।

"अब, मापो नामदार अपनी राष्ट्रीयता। भौगोलिक स्वास्थ्य आ गया है पर फिर भी देश का विस्तार तीन चौथाई यूरोप जितना है। तीन चौथाई यूरोप में कितने राष्ट्र-धर्म हैं? चंद्रगुप्त मौर्य और चन्द्र-गुप्त गुप्त ने राजकीय एकता को लाने का प्रयत्न किया पर पता भी नहीं लगा। क्योंकि एक छोर से दूसरे छोर तक हाथी पर बैठकर जाने में कितने साल चाहिये! ब्राह्मणों की परंपरा ने बहुत प्रयत्न किया पर भौगोलिक सुसंबद्धता बिना अकेला संस्कार क्या करे—कबूतर।" कहकर प्रोफेसर हँसे, "देखो अब, संक्षेप में कहता हूँ। ब्रिटिश साम्राज्य से भौगोलिक स्वास्थ्य आया है, भौगोलिक व्यक्तित्व प्रकट हुआ है; लेकिन सुसंबद्धता सत्तर लाख चौरस मील में कैसे आये! कलकत्ते और बंबई के बीच टेलीफोन हो, मद्रास से लाहौर दो दिन में जाया जा सके, तब यह सुसंबद्धता आये। समझे! फिर एक संस्कार की चेतना आते-आते ही कितने युग बीत जायेंगे। इंग्लैंड जैसे भाग्यवान देश में नवीं शताब्दी से शुरू हो कर सत्रहवीं शताब्दी तक—एडवर्ड दी कनफ़ेसर से विलियम और मेरी तक जीवन का संचार होता रहा तब

सांस्कारिक शक्ति आई । अब अपनी कठिनाइयों पर ध्यान दो।"
प्रोफेसर ने उँगलियाँ गिनते हुए कहा, "अगणित पथो को भुलाकर राष्ट्र-धर्म स्वीकार करने में कितने वर्ष लगेंगे ? दो भिन्न-भिन्न भाषाएँ भुला कर एक भाषा कितने वर्षों में आ सकेगी ?—तीन : देशीराज्यो को मिटा कर राजनीतिक एकता कितने वर्षों में आयेगी—ये तीनों वस्तुएँ जब आवेंगी तभी संपूर्ण राष्ट्रीयता का विकास होगा। आधुनिक ढंग से तो यह पुरातनवादी देश न जाने कब राष्ट्रीयता पायेगा ? समझे ?" कह कर प्रोफेसर हंसे ।

५

"Thank you इसका मतलब यह कि ये विप्लववादी कुछ कर नही सकते । मुझे शांति हुई ।"

"मै यह नही कहता । मैंने जो बताया वह आजकल के अनुसार ही बतलाया पर कितने ही छोटे-छोटे रास्ते है । विप्लव उनमें से एक है।"

"वह कैसे ?" ज़रा चिंतातुर स्वर में नामदार ने पूछा ।

"विजयी विप्लव अर्थात् उत्क्रांति क्रम थोड़े समय में ही समाप्त हो जाने वाला प्रयोग । एक ऐसा विप्लव हो कि जो धार्मिक और जातीय भेदो का एक झटके मे विध्वंस कर दे और राष्ट्रधर्म का प्रसार करे, तो इस प्रकार राष्ट्रीयता आ जाय। विप्लववृति ऐसी है कि जहाँ भौगोलिक सुसबद्धता न हो वहाँ भी एकता उत्पन्न कर देती है, और एक प्रकार की शक्ति फौरन पैदा कर देती है। जहाँ विप्लव जागृत हुआ कि दस वर्ष में ही जो डेढ सौ वर्ष में भी न हो सके ऐसा परिणाम निकल आये ।"

"तब तो ये विप्लववादी कुछ का कुछ कर देते है ।"

कापड़िया हँसे—गर्व से, "घबराओ मत । तुम्हारा नामदार पद

और तुम्हारा हाईकोर्ट नहीं ले लेंगे। हम लोगों में विप्लव करने की शक्ति ही नही है।"

"बंगाल में यह कैसा हो रहा है?"

"उफान—दूध का। जब तक भावना के लिये दूसरे जन्म की चिंता नही चली जाती और इस जन्म मे भूखो मरने की हिम्मत नही आ जाती, तब तक विप्लव नही हो सकता। हम लोगो मे धर्मा धता है, और चैन से जीवन व्यतीत करने की लिप्सा है। यह दूसरे जन्म और इस जन्म को गठरी छूट नही सकती। और गरीब वर्ग इतना निर्बल और उत्साहहीन है कि वह तत्पर होकर विप्लव नही फैला सकता। ग़रीब वर्ग के विप्लव के लिये भुखमरी और जुल्म चाहिये। ब्रिटिश सरकार धूर्त है। वह किसी को बिलकुल भूखो नही मरने देती और तुम्हारी कोर्ट जुल्म होते हुए भी यह जुल्म नही ऐसा खयाल ठसाने के साधन हैं। अतः Sans cullote ( वस्त्रहीन व्यक्तियो ) का तो विप्लव यहाँ हो ही नही सकता।" प्रोफेसर ने एकदम खड़े होकर दीये का बढी हुई बत्ती को ठीक किया और अपनी लुंगी की आटी कसी।

"सुरेन्द्रनाथ और उसके अनुयायी विद्यार्थी विप्लव की योजना ही तो बना रहे है।"

"विप्लव के साथ-साथ राजसत्ता की ओर से जुल्म होने और जुल्म को पचा जाने की शक्ति भी हममे दिखाई देती है? विप्लव के लिये तो समस्त देश का नही तो उसके शक्तिशाली विभाग का चारों ओर से ज्वार भाटे की तरह धावा होना चाहिये। बंबई जायेगा इससे पहले वे कलकत्ते को कुचल देंगे। विप्लव के लिये थोड़ी बहुत सुसबद्धता भी चाहिये।"

"पर तुमने जो दूसरे संक्षिप्त रास्ते बताये वे कौन से है! मैंने तो जब से इन विप्लववादियो को देखा है तब से कोई रास्ता सूझता नही।" ...

एक पल भर प्रोफेसर चुप रहे।

"दूसरा रास्ता राष्ट्रीय सरकार का है।"

"यानी?" नामदार ने पूछा।

"जापान में जिस प्रकार हुआ। पांच-सात दूरदर्शी राजनीतिज्ञो के हाथ में राज्यतंत्र आ जाये तो पच्चीस वर्ष में राष्ट्रीयता आ सकती है। अत्याचार से, दबाव से, आवश्यकता पड़ने पर अन्याय से भी वे राष्ट्रीयता का प्रसार कर सकें। संपूर्ण शिक्षा को राष्ट्रीय कर दें। धार्मिक और जातीय विरोधो को भुला दें नही तो कुचल डालें। नेपोलियन या मार्क्वीस ईटो जैसा कोई प्रचंड इच्छा-शक्तिवाला सर्वसत्ताधिकारी चाहिये।"

"क्या ब्रिटिश ऐसा नही कर सकते?" नामदार ने पूछा।

कापड़िया खिलखिलाकर हँस पड़े।

"यह न्यायी है। स्वातंत्र्य प्रेमी है।" जगमोहनलाल ने कहा।

"नामदार! तुम भी मूर्ख ही रहे। मेरा अब तक का सब रोना झीकना बेकार ही गया।"

"क्यो?"

"तुम उस फीरोजशाह मेहता के अनुयायी हो। वह बेचारा अच्छे जमाने में इग्लैंड जाकर ब्रैडलो, ब्राइट और फॉसेट की नीति अपने साथ ले आया है। वह समझता है कि हम हिंदुस्तानी भी पार्नेल बन जायेंगे। उस बेचारे को तो एकमात्र विक्टोरिया युग का व्यवस्थात्मक आंदोलन का क, ख, ग घसीटना आता है।"

"तुम भी उस विप्लववादी सुदर्शन की तरह बोल रहे हो।"

"मैं बोल रहा हूँ इतिहास के अभ्यास की दृष्टि से। इग्लैंड न्यायी है और स्वातंत्र्य प्रेमी है—अंग्रेजों के लिये, दूसरो के लिये वह रोम है। वह Pex Britannica (ब्रिटिश शांति) के नाम पर अपनी शक्ति और समृद्धि बढाने के साधनो की खोज करता है। वह तुमको अफगान और रशियन से बचाता है अपनी बेगार कराने के लिये। Pax Roman की

तरह Pax Britannica यानी एक व्यवस्थित स्वार्थ। ब्रिटिश साम्राज्य यानी दुनिया के खर्च पर ब्रिटेन श्रेष्ठ और समृद्ध हो ऐसा प्रयोग। यदि शांति और व्यवस्था न रखे तो इंग्लैंडवासी चैन से दुनिया का धर्म कैसे इकट्ठा करे? नामदार! व्यक्ति, नगर और राष्ट्र के जीवन-विग्रह का विचार करते समय न्याय और स्वातंत्र्य प्रेम की बात भुला देना।"

"तुम ब्रिटेन के प्रति बहुत अन्याय कर रहे हो। वहाँ की प्रजा को क्या ऐसा समझते हो? अच्छा तो बर्क ब्रेडलो और ब्राइट क्या हुए?"

"मैं अन्याय नहीं करता, क्योंकि मुझे एकमात्र ऐतिहासिक सत्य प्रिय है। मुझे किसी प्रजा या देश का पक्षपात नहीं। मैं तो इंग्लैंड को रोम का दूसरा अवतार समझता हूँ, जन-समाज को विस्तृत जीवन का अनुभव करानेवाला एक प्रबल साधन मानता हूँ। जिस शक्ति से उसे सर्वोपरिता मिली है उसकी मैं प्रशंसा करता हूँ, जिस खूबी से वह भारत की रक्षा करता है उसे देखकर मैं मुग्ध हो जाता हूँ। System—glorious System—अपूर्व व्यवस्था। पर नामदार! मैं बर्क, ब्रेडलो और ब्राइट से प्रभावित नहीं होता। कितने ही हिंसक जीव भक्ष्य को आकर्षित करने के लिये lures (आकर्षण) का प्रदर्शन करते हैं। बर्क, ब्रेडलो, ब्राइट और अंग्रेजी शिक्षा ये सब इंग्लैंड के ऐसे ही lures (आकर्षण) है और कुछ नहीं। इग्लैंड एक राष्ट्र के नाते सर्वोपरि सत्ता प्राप्त करने का इरादा करता है। प्रत्येक वस्तु इसी प्रवृत्ति का साधन है। इसी मे इग्लैंड की महत्ता—उसकी दुर्धर्षता है और ऐतिहासिक दृष्टि मे उपयोगिता है।" कहकर कापड़िया ने फिर सूँघनी सूँघी, "फीरोजशाह मेहता समझता है कि उसके व्यवस्थित आंदोलन से ही स्वराज्य मिल जायगा। उसको न है ऐतिहासिक दृष्टि और न है मनुष्य हृदय परखने की नम्रता। सौ वर्ष हो गये पर आयर्लैंड जहाँ का तहाँ ही है। फीरोजशाह अंग्रेजो के हित के विरुद्ध जरा भी गया कि तुरन्त उसको मोसाल भेज दिया जायगा।"

"हम इंग्लैंड जाकर स्वराज्य प्राप्त कर लेंगे।" नामदार ने आवेश में कहा।

"हाँ, रोम मे भी मिश्र और गॉल के भिक्षुक दया की याचना करने जाते थे। जगमोहनभाई! तुमसे अंग्रेजो की दृष्टि सचेष्ट है। उन्हें साम्राज्य का निर्माण करना और उसकी रक्षा करना आता है। तुम चैन से रहो, इतनी शांति तो वे देंगे, सुख से टुकड़े खाकर रह सको, विप्लव न करो, इतनी व्यवस्था तो वे दे देंगे। पर स्वतंत्रता तो इंग्लैंड मे ही रहेगी; मनुष्य तो टेम्स पर ही है। तुमको बाहर खड़े रहकर नम्र याचना करने का हक वह सदा ही दे रक्खेंगे। जगमोहनभाई, ज़रा ऐतिहासिक कल्पना तो सीखो! ज़रा सोचो। महान् सूला या देवी जूलियस के आगे उस समय के ब्रिटेन के निवासी अपने हक़ की याचना करते थे कि जैसे तुम रोम ने हो वैसे ही हमे हमारे देश में होने दो! आश्रयदाता! तुम हमारी राष्ट्रीय सरकार बन जाओ! जवाब क्या मिलता था?"

कापड़िया हँसे। नामदार को भी हँसी आ गई।

"अच्छा," थककर नामदार ने कहा, "अब कोई दूसरा संक्षिप्त रास्ता भी है या सब आ गये?"

"दूसरा सक्षिप्त रास्ता यदि भाग्य से हो जाय तो एक है, और है भी ठीक। पर यह ऐतिहासिक ज्ञान का विषय है, सिद्धांत का विषय नही।"

"बताओ तो वह कौन-सा है?"

"जहाँ तक मैं समझता हूँ, वहाँ तक जिस प्रकार रोम ने बाद में इटली का नगर-सघ अपने साथ रखा उसी प्रकार इंग्लैंड राष्ट्र-संघ रखने का प्रयत्न कर रहा है। पूर्व में यदि जापान चीन से मदद ले तो एक राष्ट्र-संघ प्रगट होगा। एशिया और जर्मनी का एक संघ होता जा रहा है। इस्तंबोल से काबुल तक मुसलमान भी राष्ट्र-संघ का स्वप्न

देख रहे है। इन संघो में से यदि एक भी खड़ा हो जाय तो ब्रिटिश साम्राज्य के साथ भिड़ने के लिये—और ऐसे समय में भारत की सीमा समरागण हो जाय तो भारत को तैयार किये बिना इग्लैंड का छुटकारा नही। विज्ञान के साधन, विनाश के शस्त्र, सब यही लाकर इन करोड़ो भारतवासियो को लश्करी कोल्हू मे पीसने के लिये जो दस साल बैठा दिया जाय तो इस विग्रह के अत मे भारत प्रतापी राष्ट्रीयता या राष्ट्र-सघ की भावना का प्रतिनिधि होकर बाहर निकले, पर वह दिन कहाँ से कि मियाँ के पाँव मे जूतियाँ !" हा-हा-हा प्रोफेसर ने अट्टहास किया और नाक मे सूँघनी का सड़ाका लिया। घड़ी मे नौ के घटे बजे।

"ओ हो ! नौ बज गये !" नामदार ने कहा, "बहुत आभारी हूँ। तुम्हारे ऐतिहासिक दृष्टिकोण बहुत ही सरस है पर व्यावहारिक राजनीतिक नेता की तरह मुझे बहुत सी चीजे देखनी पड़ती है, मुझे इंग्लैड मे श्रद्धा है।"

प्रोफेसर हँसे, "मुझे अपनी बुद्धि मे विश्वास है। सतुष्ट भारत इंग्लैड का सहयोगी है—असंतुष्ट भारत इग्लैड के गले मे घटी के भूत की तरह है। यह सूत्र अग्रेजी राजनीतिज्ञ समझते है। इग्लैड के हाथों हमे लोकशासन तो अवश्य मिल जायगा !" प्रोफेसर ने हँसकर नाक पोछी।

"तुम भले ही हँसो। मैंने निश्चय कर लिया है। मै ब्रिटिश साम्राज्य मे समानता प्राप्त करने की योजना बना रहा हूँ। मे विप्लव-वादियो को जवाब दूँगा। मै तुम जैसे निराशावादियो को झूठा सिद्ध कर दिखाऊँगा और यह बात स्पष्टकर दिखा दूँगा कि भारत और इंग्लैड की मैत्री में दैवी कृपा छिपी हुई है।"

"दैवी कृपा ! बिल्कुल ठीक !" प्रोफेसर ने व्यंग्य किया।

"देखो, मैंने विचार कर लिया है, मै शान्त नही बैठूंगा।"

"बहुत-ठीक। मुद्दे स्पष्ट हो जायेगे।"

"तुम्हारे विचारो से मैंने बहुत कुछ समझा है।"

"Thank you", प्रोफेसर ने कहा।

"हाँ", खड़े होते हुए नामदार ने कहा, "सुदर्शन नाम का मेरे मित्र का लड़का अक्टूबर मे यहीं आयेगा। वह विप्लववादी है। जरा उसे कुछ सिखाना।"

"जो मेरी सुनेगा उसको सिखाने के लिये मैं तैयार हूँ।"

"अच्छा साहेबजी ! सुलोचना ! उठ झोके खा रही है क्या !"

सुलोचना आँखें मलती हुई उठी और बाप-बेटी ने बिदा ली।

जब सुलोचना दरवाजे से अदृष्ट हुई तब कापड़िया को होश आया कि वह एक सुंदर बाला के साथ दो घंटे तक रहा। उसने खिड़की में से सुलोचना को गाड़ी में बैठते हुए देखा और जब वह अपनी पुस्तकों की ओर फिरे तो उन्हे ऐसा लगा कि उनके अंतर मे भी एक रहस्यमयी तृष्णा हो।

# सुदर्शन बम्बई में

## १

प्रोफेसर कापड़िया के साथ बातचीत करने से नामदार जगमोहन-लाल का भ्रम मिट गया, और कोई रास्ता निकालने का प्रयास उन्होने आरम्भ कर दिया।

भारतवासियो की दुर्दशा का उन्हे अच्छी तरह पता था और साथ ही यह भी उन्हे पक्का विश्वास था कि भारत में अंग्रेजी अधि-कारियो की राजनीति अच्छी नही थी; फिर भी अंग्रेज प्रजा के स्वातंत्र्य-प्रेम मे उनका अडिग विश्वास था। भारत मे विप्लव हो यह उनके लिये एक बडे से बड़ा विस्मय था, और जिस राज्य ने उन जैसो को शिक्षा, प्रतिष्ठा और सम्मान दिया, वह यदि उखड जाय तो देश का भाग्य फट जायेगा यह उन्हे स्पष्ट दिखाई देता था। इस राज्य की शांति, व्यवस्था, प्रगतिशील नीति बनी रहे, अंग्रेज अधिकारियो का गर्व हल्का हो, प्रजा सुधरे और अंग्रेजी राज्य मे ही स्वतन्त्रता मिले, ऐसा कोई रास्ता वह खोज रहे थे।

वह फीरोजशाह मेहता और गोखले से मिले। उनमें से किसी को भी देश मे कोई नवीनता दिखाई नही दी। बंगाल में थोड़े से पागल विद्यार्थियों द्वारा किया हुआ विनाश उनके लिये एक निर्जीव प्रसंग था। और दोनो को अंग्रेजी प्रजा की उदार राजनीति मे श्रद्धा थी और शुरू से ही कांग्रेस द्वारा अपनायी हुई नीति की सफलता मे पूरा विश्वास था।

जब उन्होने फीरोजशाह के साथ और अधिक बात की तो बम्बई

के प्रजा-जीवन के सर्वसत्ताधिकारी की शान से वह हँसे और मेज पर मुट्ठी ठोककर जवाब दिया, "जगमोहनलाल ! अंग्रेजो के पास से अपने हक हम छीन लेंगे, तुम घबराओ मत।"

इस समय के लोग फीरोजशाह के व्यक्तित्व के प्रताप को नहीं जान सकें यह स्वभाविक ही है; पर १९०६ मे बम्बई के उनके अनुयायिओ पर और प्रजा मत-पर उनका एक अद्भुत प्रभाव था। प्रजा-जीवन के पिता, स्वातन्त्र्य सेना के नायक, देशभक्तो के शिरोमणि और राजनीतिज्ञो में अग्रणीय थे—समझे भी जाते थे। उनके सामने प्रत्येक को शैशव का अनुभव होने लगता, उनके हास्य से सब प्रसन्न हो जाते और उनका भ्रूभंग सबको कँपा देता था।

विश्वास-पूर्वक दिये हुए इस प्रतापी मनुष्य के ऐसे आश्वासन के विरुद्ध नामदार कुछ बोल न सके। उनके कान में बेचारे गरीब प्रोफेसर का अट्टहास सुनाई दिया, "क्या कोई अर्वाचीन सूला या सीजर से जाकर यह कह सकेगा कि हमे हमारे हक दो ?" यह तो केवल विक्टोरिया युग के अंग्रेजी प्रजा-जीवन की एक प्रतिध्वनि मात्र है। राजाबाई टावर के सामनेवाली गुफा में बम्बई के केसरी की गर्जना के सान्निध्य मे शका को कही स्थान मिल सकता है ? नामदार जगमोहनलाल की शंका का समाधान हो गया हो ऐसा लगा।

फिर भी उन्हें कई शकाओ ने घेर रखा था।

२

बाप की आज्ञा से पहले तो सुलोचना बहुत चिढ़ी, पर अन्त मे उसे मानना पड़ा। केकी रुख और गमनलाल के साथ कालेज के बाहर घूमना उसने बन्द कर दिया। थोड़े से शब्दो में, बिना पते की चिट्ठी से, लायब्रेरी में या टेनिस कोर्ट पर बातचीत चला करती। कौन जाने कैसे पर ज्योही वह कालेज में पाँव रखती कि दरवाजे के आगे से केकी अन्दर जाता हुआ या गमन जीने पर चढ़ता हुआ दिखाई देता था। वह

जैसे ही छात्राओ के रूम से बाहर निकलती कि उन दोनो मे से एक गैलरी में ही खड़ा मिलता था। वह लायब्रेरी मे किताब लेने जाती कि दोनो जने वहाँ भी मिल जाते। कुछ देर तक बातचीत हो जाती या दो दिन की अधूरी बात का जवाब मिल जाता, नही तो हँसी से हँसी का प्रत्युत्तर ही मिल जाता। बिना बोले हुए नामदार की आज्ञा का पालन बाह्य रूप मे तो सुलोचना करती ही रही।

नवंबर महीना शुरू हो गया और सुलोचना की परीक्षा पूरी हुई। एक दिन सवेरे जगमोहनलाल ने सुलोचना को बुलाया। ब्रीफ के ढेर और कानून को पुस्तको के व्यूह से भयकर दिखाई देनेवाली टेबल पर विराजमान नामदार ने सुलोचना के आगे एक पत्र रख दिया।

"सुलोचना! आज रात की गाड़ी से सदुभाई आनेवाले है, गाड़ी ले जाना और ले आना।"

"मै जाऊँ?" सुलोचना ने मिजाज मे कहा।

"क्यों, तू बहुत बड़ी हो गई है क्या?" कठोरता से नामदार ने पूछा, "जाकर उसे यही ले आना है। समझी?" जगमोहनलाल ने स्पष्ट आज्ञा दी।

"Alright" कहकर नाक-भौह चढाकर सुलोचना चली गई।

"इस लड़की का क्या होगा।" जगमोहनलाल बड़बडाये।

थोड़ी देर में नामदार कोर्ट गये कि तुरन्त सुलोचना बाप के कमरे मे आई। उसने टेलीफोन उठाया और दो व्यक्तियो को फोन किया। दोनों को दो ही वाक्य कहे: "Come to-night at 8-30 on the Grant Road Up Station. There is great fun."

रात के साढ़े आठ बजे केकी रुख भडकदार कपडे पहनकर ग्रांट रोड स्टेशन पर आ पहुँचा। बहुत दिनो बाद उसे सुलोचना का संदेशा मिला था, अतः उसका दिमाग आज आकाश से बातें कर रहा था।

जैसे ही वह प्लेटफार्म पर आया कि प्रकाश में उसने गमन

दलाल को खड़े हुए देखा और तुरन्त उसके पेट मे पानी-पानी हो गया। यह बनिया इस समय यहाँ कहाँ से ? गमन निश्चितता से सिगार पी रहा था। उसकी शाति देखकर केकी को एक मुक्का मारने का मन हुआ।

पल भर मे दोनो की आँखें मिली, क्षण भर के लिये गमन के मुख पर भी असंतोष के भाव दिखाई दिये, पर उसने तुरन्त मुख पर हँसी की रेखाएँ लाकर अनिच्छा से नमस्ते की।

"ओ हो ! तू यहाँ ?" केकी ने पूछा।

"मैं भी तुझसे यही पूछनेवाला था।" दोनो ने प्लेटफार्म के दरवाजे की तरफ एक साथ नजर डाली और फिर एक दूसरे की तरफ द्वेष से देखने लगे।

"नामदार से मिलने आया है ?" गमन ने पूछा।

"Mind your own business" केकी ने रोब मे उत्तर दिया।

"क्यो ?" सिगार पर की राख झाडते हुए गमन ने कहा, "तकरार करने की धुन में है क्या ?"

"लवा न बन लड़के !" केकी ने कहा।

"Physician, heal the self" गमन ने जवाब दिया, "लो, वह शिवलाल सराफ आ गया।"

दो लडके प्लेटफार्म पर आये। भीमनाथ पर इकट्ठे हुए लड़को में से—बम्बईवाले शिवलाल सराफ और अबालाल देसाई थे। शिवलाल सराफ एल्फीन्स्टन में नही पढता था, पर उसका प्रख्यात बाप एक अच्छी खासी दौलत छोड़ जाने और अपनी होशियारी से लगभग सभी कालेजो में वह नामी था। तूफानी लडको के वैसे ही सभ्य लड़कों के—दोनो वर्ग में उसका स्थान था।

"हलो-गमन !"

"कौन सराफ ?"

"अरे यह केकी रुख कहाँ से ?" सब ने शेकहैंड किया।

"यह मेरा मित्र अंबालाल देसाई, एम० ए० का विद्यार्थी। यह केकी रुख और गमन दलाल एल्फिस्टन के ornaments (आभूषण) है।"

शिवलाल हँसकर मीठे ढंग से बोल रहा था तो भी उसके अर्थ में कुछ कटाक्ष का आभास हुआ। अंबालाल देसाई गंभीर और निश्छल स्वभाव का दिखाई देता था। उसने इन दो एल्फिन्स्टन कालेज के शोहदो की ओर तिरस्कार से देखा।

केकी और गमन का इरादा इन दोनो से तुरन्त बिदा ले लेने का था पर शिवलाल के साथ उद्धतपने से बर्ताव किया जाय यह बात न थी।

"ट्रेन आने का समय हो गया।" गमन दलाल ने कहा।

"तुम्हारे फ्रेन्डस तो सेकंड या फ़र्स्ट क्लास मे होंगे, हमारा तो गटर क्लास मे आयेगा।" शिवलाल ने हँसकर कहा और दोनो शोहदों पर निर्जीवता का अनुभव कराये ऐसी एक दृष्टि डाली।

"ऐसा कौन है ?", केकी ने पूछा।

"बडौदा कलेज में पढता है।"

लेकिन शिवलाल के वाक्य पूरा करने से पहले ही गमन और केकी की दृष्टि दरवाजे पर पडी और दोनो उधर मुडे। सुलोचना प्लेटफार्म पर आ गई थी।

शिवलाल और अंबालाल शांति से उधर मुड़े।

"ये दोनो इस समय यहाँ क्यो आये है; बताऊँ ?" शिवलाल ने ज़रा हँसकर धीरे से अंबालाल से कहा। अंबालाल ने आँख से ही कारण पूछा।

"यह उन नामदार जगमोहनलाल की लड़की सुलोचना एल्फ़िन्स्टन में है।"

"समझा।" अंबालाल ने कहा। जिस शीघ्रता से केकी और गमन सुलोचना के पास गये और जिस उत्साह से उन्होंने बातें करना शुरू

की यह दोनों जने देखते रहे।

उधर सुलोचना मित्रों की तरफ देखकर हँस पड़ी, "आ गये? वह 'पोचू' आ रहा है। तुम्हें देखने के लिये बुलाया है।"

"आहा—हा—" दोनो हँसे पर अंतर में जरा निराशा हुई। इस विशेष निमंत्रण के परिणाम-स्वरूप उन्होने कुछ ऊँची तफ़री के स्वप्न सजाये थे।

"मुझे लगता है कि शिवलाल भी उसी को लेने के लिये आया है।" गमन ने कहा।

"क्या शिवलाल सराफ़ है?" सुलोचना ने पूछा, "चलो, हम उसके साथ रहें, नही तो पापा को पता चलेगा तो आफत आ जायेगी।"

"Oh these papas" केकी ने अपने उद्‌गार निकाले, और तीनों व्यक्ति शिवलाल सराफ़ के पास गये।

"शिवलाल, मिस सुलोचना को पहचानते हो?" गमन ने कहा।

"नाम सुना है, मिलने का सौभाग्य आज ही प्राप्त हुआ। कैसी हो बहिन?" कहकर शिवलाल ने शेकहैंड किया।

"यह अंबालाल देसाई।" गमन ने कहा, "यह भी शिवलाल के साथ विल्सन में ही है।"

"I see. मिलकर बहुत खुशी हुई।" कहकर सुलोचना ने शेक-हैंड किया।

"यह भी वड़ौदा के एक विद्यार्थी को लेने आया है।" केकी ने अंग्रेजी में कहा।

पर शिवलाल के जवाब देने से पहले ही गाडी आ गई और शिवलाल तथा अंबालाल वहाँ से थर्ड क्लास के डिब्बे की तरफ झपाटे से गये। नारायणभाई पटेल डिब्बे से आधा शरीर बाहर निकालकर आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। उसने शिवलाल को पहचानकर सारा स्टेशन आकर्षित हो जाये ऐसे इशारे करना आरंभ किया।

सुलोचना ने अपने मित्रो से कहा, "जरा दूर से ही देखना, फिर मैं परिचय करा दूँगी।" वह सेकंड क्लास के डिब्बे की तरफ गई। उसके परिचितो मे से कोई भी थर्ड क्लास के डिब्बे में यात्रा करे यह कल्पना तो उसने आज तक न की थी। उसने सेकड क्लास के डिब्बे मे नजर डाली पर सुदर्शन दिखाई नही दिया।

"नही आया क्या?" थोडी दूर चलते हुए उसने कहा।

"गटर क्लास मे न गे।" केकी ने हँसकर कहा।

सुलोचना की लज्जा का पार न रहा। वह जिसे लेने आई हो, जिसको उसका पिता पति बनाना चाहता हो, वह थर्ड मे आये? अपने दो मित्रो को उसने अपनी अधमता देखने के लिये बुलाया था इसके लिये उसे पछतावा हुआ। उसे लगा कि सुदर्शन को थर्ड में खोजने से तो यह अच्छा होगा कि घर जाकर कह दें कि वह नही आया।

इस विचार से चिंतित ज़रा देर वह खड़ी रही और गमन तथा केकी पास आ गये। इतने मे गाड़ी से उतरकर बाहर जाते हुए मनुष्यों के ठठ मे से शिवलाल की आवाज़ सुनाई दी।

"गमन! केकी! साहबजी!"

सुलोचना मुड़ी और एक भयंकर दृश्य उसे दिखाई दिया। एक मोटा थोदन और बडी-बड़ी आँखोवाला लड़का एक छोटी सी धोती पहने हुए शिवलाल का हाथ अपनी बगल में रखे चल रहा था। उसके पीछे वही बैठी हुई टोपी—खुले बटनो का काला कोट—फरफराती हुई मैली धोती—सिकुड़ा हुआ दक्षिणी जूता—राजाभाई मामा के यहाँ देखा हुआ दुबला-पतला छोटा शरीर! मुँह जरा और सूख गया था, आँखे ज़रा गंभीर हो गई थी, माथे पर गांभीर्य जरा और बढ़ गया था। निर्जीवता की पराकाष्ठा मूर्तिमान होकर उसकी गर्दन दबाये दे रही हो इस प्रकार सुलोचना के होश उड़ गये। उसकी आँखों

में अँधेरा छा गया। ग्राट रोड पर, अपने मित्रों के सामने, इस भीड़ में, उसके साथ जान-पहचान है, क्या यह बात स्वीकार कर लेवे? शकुंतला ने धरती माता से याचना की थी यह उसे याद नहीं था, अतः बाप के डर की प्रेरणा से उसने पुकारा—उससे पुकारा गया—'सदुभाई !'.

सुदर्शन ने ऊपर देखा, उसे सुलोचना दिखाई दी—पहचाना। उसे क्षोभ हुआ, क्या करे यह न सूझा। शिवलाल नारायणभाई का हाथ छोड़कर आगे आया।

"तुम सदुभाई को जानती हो क्या ?" उसने सुलोचना से पूछा।

"मैं इन्हीं को तो लेने आई हूँ।" सुलोचना ने उदास मुख से कहा। "चलो, पापा ने मुझे स्वयं भेजा है।"

"सुलोचना बहिन ! जगमोहन काका का मेरी ओर से आभार मानना। मैं कल अवश्य मिल जाऊँगा। इस समय मैं अंबालाल देसाई के यहाँ ही जाऊँगा।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

निश्चयात्मक आवाज में सुदर्शन ने कहा, "मुझे अंबालाल के यहाँ ही पढ़ने की सुविधा रहेगी।"

सबके साथ सुलोचना ने दरवाजे की तरफ चलना आरम्भ किया और टिकट देकर सब बाहर निकले।

"अंबालाल !" शिवलाल ने कहा, "मैं नारायणभाई को ले जा रहा हूँ।"

"अरे हाँ रे, मुझे तो पचास दूसरे मेहमान हों तो भी आपत्ति नहीं होगी।" नारायणभाई ने चिल्लाकर कहा।

"अच्छा, सुलोचना बहिन ! जय जय !" सुदर्शन ने हाथ जोड़कर कहा और अंबालाल की लाई हुई किराये की गाड़ी में बैठकर चल दिया।

सुलोचना को 'जय जय' करने की देशी रीत भी पसंद नही आई। केकी और गमन की हँसी तो नही सुनाई दी पर उसकी प्रतिध्वनि सुनाई दे रही थी।

फिर शिवलाल की गाड़ी आई और नारायणभाई घोड़े पर चढने के लिये जैसे छलाँग मारते हो ठीक उसी प्रकार, कमानीवाली गाड़ी भी लचक जाये, ऐसी छलाग मारकर ऊपर चढ गया।

"साहेबजी! सुलोचना बहिन साहेबजी! गमन! केकी! साहेबजी!" शिवलाल ने हाथ मिलाया।

"यही था क्या तुम्हारा बड़ौदे वाला मित्र?" केकी ने सुलोचना को प्रसन्न करने के लिये तिरस्कार से पूछा।

शिवलाल हंसा। अर्द्ध व्यग में, शीघ्रता से वह बोला, "केकी, अरे! हम लोग बीस भी इकट्ठे हो जाये तो भी इन दोनो में से एक की भी थाह नही पा सकते। समझा?" शिवलाल अपनी गाड़ी में बैठा और गाड़ी चली गई।

शिवलाल के इस दिये हुए प्रमाण-पत्र से तीनो जरा सहमे।

सुलोचना की गाड़ी आई और वह उत्साह रहित-सी, "साहेब-जी!" कहकर अपनी गाड़ी मे बैठी। उसकी गाड़ी चलने से पहले ही, और वह सुने इस प्रकार गमन ने कहा, "साला बिल्कुल घोचू है।"

३

किराये की गाड़ी सुदर्शन और अबालाल को लेकर गिरगाम की सडक तँकर काँदावाड़ी मे होती हुई कल्याण मोती की चाल में पहुँची। कल्याण मोती की चाल में पहली मंजिल पर अबालाल अपनी माँ और बहिन के साथ रहता था।

अंबालाल जितना होशियार था उतना ही गरीब भी था, अतः लड़को को पढाकर अपना पालन-पोषण करता था और पढता भी था।

इसकी विधवा माँ सदा ही बीमार रहती। इसलिये अंबालाल पाँच बजे उठकर चौदह वर्ष की बहिन को नल से पानी लाने मे मदद देता। फिर स्वयं अपना विस्तर उठाकर, धनो बहिन को अँगीठी सुलगाने में मदद करता—इतने में बहिन चाय कर देतीं, वह चाय पीकर नहा-धोकर, डेढ़ घटे डिट्मार के लैंप में पढता।

साढ़े सात होने पर वह कपड़े पहनकर बाहर निकलता, और एक लड़के को मैट्रिक और दूसरे को पाँचवे स्टैंडर्ड का अभ्यास कराता और रोज डेढ़ रुपया कमाकर दस बजे वापिस लौटता। इसके बाद खाकर वह कालेज जाता और लैबोरेटरी मे संध्या के साढ़े चार बजे तक प्रयोग करता।

पाँच बजे वह एक तीसरे शिष्य को एक रुपये रोज पर पढ़ाता और शाम को चौपाटी पर घूमकर आठ बजे घर आता। माँ-बहिन ने जो तैयार किया होता वह खाता और दस बजे तक अपने अध्ययन में लगा रहता।

अंबालाल होशियार और दृढ़ था। उसके अंतर में अन्याय का भान बहुत ही तीव्र था; ईश्वर ने उसके साथ अन्याय किया था—क्योंकि उससे बिना पूछे ही उसे जन्म दिया, और बिना उसकी आज्ञा के निर्धन बाप और बीमार माँ दी थी। समाज ने भी अन्याय किया था—क्योकि इतनी बुद्धि होने पर भी जैसे वह रास्ते का कूडा-करकट हो, इस प्रकार उसके साथ वर्ताव करता था। विधाता ने भी उसके साथ अन्याय किया था—क्योकि भाग्यवशात् जो लड़के पढाने के लिये मिलते थे वे सब पत्थर के लट्टू निकलते। स्वभाव ने भी उसके साथ अन्याय किया था-क्योकि इन सब अन्यायो को सहने की उसमें सहिष्णुता नही थी। इन सब अन्यायो का पात्र वह स्वय होने के कारण उसे समस्त सृष्टि के प्रति द्वेष था। इतना द्वेष अंतर में पेंग मारता था, फिर भी वह सीधा, सरल, भावुक और परदु:ख-भंजक था; एकमात्र

इस द्वेष ने उसकी जीभ का मिठास छीन लिया था।

अन्याय के विरुद्ध सतत विग्रह चलाते हुए उसके दो विश्राम-स्थान थे। एक उसकी खिलौने जैसी हँसमुख बहिन और दूसरी उसकी सहपाठिनी मिस वकील। मिस वकील और अंबालाल मैट्रिक से साथ थे और एक पारसी तथा दूसरा हिंदू होने पर भी एम० ए० के अध्ययन तक उन्होंने मैत्री बनाये रखी थी। विज्ञानशाला में पाँच घंटे का प्रयोग यह अभ्यास न था, लेकिन विलक्षण सहाध्यायिनी के साथ किया हुआ आनन्दमय साहचर्य था। इन पाँच घंटों में वह अन्यायों की स्मृति भुला देता और काँच की शीशियों और नलियों में जैसे अमृत भरा हो ऐसी मुमधुरता फैली रहती थी। सन् १९०७ में वह और मिस वकील एम० ए० में बैठनेवाले थे।

सुदर्शन इसके यहाँ आया और कपड़े खोलकर जीमने बैठा। धनी बहिन परोस रही थी। जिस कठिन परिस्थिति में अंबालाल अपने जीवन का ध्येय साधे जा रहा था उसका उसे इस समय स्पष्ट भान हो गया। और ऐसे साहसी और भावनाशील पुरुष का मित्र होना वह अपना सौभाग्य समझने लगा। ऐसी कठिनाइयों में, ऐसी गरीबी में और जीवन के ऐसे विग्रहों में वास्तविक मानवता का निर्माण होता है यह विचार करते हुए अंबालाल की अँधेरी कोठरी एक महल के सौंदर्य से चमक उठी और इधर-उधर फिरती हुई, कोयल की-सी कुहुक करती हुई धनी बहिन में दैवी तेज दिखाई देने लगा।

धनी दुबली-पतली, ऊँची और सलोनी थी। वह रंग में बहुत गोरी नहीं थी, उसे सुन्दर नहीं कहा जा सकता, फिर भी बड़ी-बड़ी आँखें भरावदार जूड़ा, छोटी नाक और सदा ही हँसता हुआ मुख उसके व्यक्तित्व को आकर्षक बनाता था। फुरसत के समय अंबालाल उसे थोड़ा बहुत पढ़ाता। उसकी स्वाभाविक चञ्चलता जितनी थी उससे कहीं अधिक दिखाई देती थी। सहानुभूति प्रदर्शन की कला

उसने पूरी तरह से हाथ कर रखी थी और समझे या बिना समझे ही अंबालाल की कठिनाइयों तथा उसके स्वप्नों में हिस्सा बटाने की उसे कुछ आदत सी पड़ गई थी।

"सद्भाई, बहुत होशियार है धनी बहिन।" अंबालाल ने हँसते-हँसते कहा, "और इनकी मेहमानदारी अच्छी तरह करनी है। नामदार जगमोहनलाल का बँगला छोड़कर ये यहाँ आये हैं।"

"हमारे यहाँ तो शबरी के बेर मिलेंगे।" धनी ने कहा।

"मैं रामचन्द्र, नहीं बल्कि गरीब विद्यार्थी हूँ, इतना ही भेद है।" सुदर्शन ने कहा।

"रामचन्द्रजी भी विद्यार्थी ही थे।" धनी ने कहा।

सब लोग हँसे और हँसते-हँसते रोटी, दूध और शाक खतम हो गये।

"अच्छा, हमारा मंडल कैसे चल रहा है?"

"अब तो ये सब परीक्षा में जुटे हुए है, फिर देखा जायगा।" सुदर्शन ने कहा और किताब निकालकर पढ़ना शुरू कर दिया। अंबालाल ने सोरठ मल्हार का सुर निकालना आरंभ किया। अंदर धनी बर्तन मांज रही थी, वह सुनाई दे रहा था और थोड़ी-थोड़ी देर मे वह किसी कारण से बाहर आ-आकर अपनी काकली सुना जाती थी। सुदर्शन अध्ययन में व्यस्त था, फिर भी इस छोटी-सी कोठरी मे छिपी हुई भावुकता का प्रभाव उसके कोमल अंतस्तल पर होने लगा।

धनी ने खाट बिछायी, देसाई सो गया। सुदर्शन पढ़ता रहा। बारह बजे उसने किताब बंद की और खाट पर लेटा। मच्छर भिनभिना रहे थे, कांदावाड़ी की गदी हवा चारो ओर फैल रही थी, पढे हुए विषयो के मुद्दे उसके मस्तिष्क में तैर रहे थे, फिर भी इस स्थिति में सपने सिद्ध करना आसान लगने लगा।

४

वह सवेरे उठा तब अंबालाल बाहर जाने की तैयारी कर रहा था।

"मैं अपनी मजदूरी पर जा रहा हूं; खाने के समय तक आऊँगा। धनी बहिन ! सदुभाई को चाय देना।" कहकर अंबालाल चला गया।

सुदर्शन उठा। बंबई की घनी बस्तीवाले मुहल्ले का प्रभात गाँव के रहनेवाले को विचित्र लगे बिना नहीं रहता। पानी भरती स्त्रियाँ; दातुन करते पुरुष; छज्जों में पड़े हुए देर से उठनेवाले; धीरे-धीरे फिरते हुए हज्जाम; नल के आगे का जमघट; नीचे से आनेवाले प्रचंड घोष 'नल बंद करो'; रास्ते में चिल्लाते हुए तरकारी वाले—यह दृश्य, यह नाद, यह गड़बड़ संस्कृति के कलंक रूप इन चालों के अतिरिक्त और कहीं भी नहीं मिलता; सुदर्शन को यह अनुभव उत्तेजक लगा। इधर-उधर फिरता हुआ मानव-समूह उसकी दृष्टि में तो उछलते हुए उत्साह और बढ़ती हुई शक्ति की मूर्ति लगा।

उसने दातुन-कुल्ला किया और धनी चाय लायी। कमर पर हाथ रखकर वह सुदर्शन की ओर देखने लगी।

"तुम पास हो जाने पर क्या करोगे?" उसने पूछा।

"मैं देश-सेवा करूँगा।"

"भाई भी तो यही करेंगे। यदि तुम दोनों मिलकर काम करोगे तो देश के दिन अवश्य फिरेंगे। तुमने स्वदेशी व्रत लिया? भाई ने तो लिया है।" सुदर्शन ने ऊपर देखा। यह छोटी-सी लड़की स्वदेशी व्रत की बात करे? कैसी छोटी-सी लड़की और कैसा उसकी आँखों में चमकता हुआ उत्साह!

"मैंने भी लिया है।"

"मैंने भी लिया है, मैं कांच की चूड़ियाँ पहनती ही नहीं।" कहकर उसने सींग की चूड़ियाँ दिखाई और वह हँसी।

"तुम तो बड़ी देश-भक्त हो !" सुदर्शन के मुँह से निकल ही पड़ा।

"नही, भाई देश-भक्त बनेंगे, मैं उनकी सेवा करूँगी।" धनी ने कहा।

"अंबालाल की शादी नही हुई क्या ?" सुदर्शन ने पूछा।

"भाई भी शादी नही करेंगे और मैं भी नही करूंगी।"

"ठीक बात है।" इस लड़की द्वारा पैदा किये हुए भावो के वशीभूत हो सुदर्शन ने कहा, "जिसने देश-भक्ति से विवाह कर लिया हो वह दूसरे से क्यो करे ?"

"तुम्हारा भी विवाह नही हुआ ?"

"नही।" सुदर्शन ने कहा।

"अच्छा अब पढो," धनी ने कहा, "भाई आयेंगे तो नाराज होगे।"

सुदर्शन पढने बैठा पर धनी की बोली और उसका हास्य उसके कानो में सुनाई देता रहा।

५

पाँच दिन तक सुदर्शन ने परीक्षा दी। पहले दिन उसने रावबहादुर प्रमोदराय को पत्र लिखा। उसमें लिखा था कि मैं अपने मित्र के यहाँ ठहरा हूँ। यह खबर जानकर रावबहादुर के गुस्से का पार नहीं रहा और उन्होंने तुरन्त जाकर नामदार से मिल आने के आशय का तार दिया।

सुदर्शन को अंबालाल की संगति से और धनी की प्रेरणा से कहीं अलग जाना अच्छा नही लगा, अतः परीक्षा पूरी होने तक उसने बाप की आज्ञा पर अमल नही किया। लेकिन पाँचवें दिन अंतिम विषय की परीक्षा होने पर वह और अंबालाल नामदार जगमोहनलाल का चेंबर ढूंढने निकले। थोड़ी-सी मुश्किल से नामदार का चेंबर तो मिल गया पर वहाँ अर्दली ने खबर दी कि साहब फीरोजशाह मेहता के

चेंबर गये है और एक घंटे से पहले नही आयेगे । सुदर्शन और अबालाल टावर के सामने फीरोजशाह मेहता के चेंबर के आगे जा खडे हुए।

सुदर्शन ने एक बार अहमदाबाद कांग्रेस के समय फीरोजशाह को दूर से देखा था। वह फीरोजशाह की राजनीति का विरोधी था फिर भी उनके पास जाते हुए उसे जरा भी क्षोभ नही हुआ। ये दोनो फूटपाथ पर खडे थे कि एक गाड़ी आकर खड़ी हुई और मूँछो की भव्यता तथा चमकती हुई पगड़ी की तेजस्विता मे फ़ीरोजशाह गाडी से उतरकर आफिस मे गये। सुदर्शन ने आदर से प्रेरित होकर प्रणाम किया; फीरोजशाह ने अपना दुर्जय हास्य मुँह पर लाकर प्रणाम स्वीकार।

"तीस वर्ष तक इसने बम्बई मे एकचक्र राज्य किया है।" सुदर्शन ने कहा।

"बेकरो का बादशाह है।" कडवाहट से अंबालाल बोला।

"अपने समय के अनुसार इसने भी ठीक किया है।"

"सदुभाई, इसका प्रेसीडेन्सी एसोसिएशन प्रतिवर्ष पचास प्रार्थनापत्र सरकार को भेजता है। यह तो इस देश का दुर्भाग्य है कि ऐसे लोग देश के नेता हो जाते है। चलो ऊपर चलें।"

दोनो ऊपर गये और फीरोजशाह के चपरासी की मार्फत रावबहादुर का तार जगमोहनलाल को भेजा। तुरन्त नामदार बाहर आये।

"कौन सदुभाई! वाह! इतने दिन से आये हुए हो और आज मिले?"

"परीक्षा में फँसा हुआ था।" सुदर्शन ने जवाब दिया।

"पद्रह मिनट बैठो। अभी जरा मैं काम मे हूँ। सिपाही! दो कुर्सियाँ यहाँ ले आओ। चले मत जाना, बैठना।" कहकर नामदार चले गये। अर्दली ने दरवाजे के आगे दो कुर्सियाँ डाल दी और दोनो जने बैठ गये। जहाँ वे बैठें थे वहाँ उनके सामने पर्दे पड़े हुए थे और पर्दों के फटने से अंदर बैठे हुए सब दिखाई दे रहे थे।

"सदुभाई !" धीरे से अबालाल ने कहा, "ये सब देश के उद्धारक देखने योग्य हैं। बेंगारियो का बादशाह तो नीचे देखा। वह दीनशा वाच्छा. बादशाह का वजीर—वह चिम्मनलाल सीतलवाड; सेनापति—उस कोने में जो बैठा है गोल पगड़ी पहनकर वह हरि सीताराम दीक्षित—गोकल काका तो पहचान ही लिया—साधारणतया इनकी आँखे ही नही खुलती !" इतने में दो आदमी नये आये।

"यह तो गोखले है न ?" सुदर्शन ने एक की ओर उंगली उठायी और अबालाल के कान मे पूछा, "और दूसरा कौन ?"

यह दूसरा व्यक्ति ऊँचा, दुबला-पतला और सुंदर था। अंग्रेजी ढंग के कपड़े बेचनेवाले के साइन बोर्ड पर चित्रित नमूना सजीव होकर चला आ रहा हो, ऐसी उसकी वेश-भूषा थी। एक बड़ी सिगार उसके मुँह में थी।

"यह जीन्ना बैरिस्टर है।"

सुदर्शन ने नि श्वास छोड़ी।

'देखे बबई के महान् व्यक्ति ?" कटाक्ष मे अबालाल ने कहा।

"कैसी आफत है !" सुदर्शन ने कहा, "राष्ट्र की महत्ता से कहीं अधिक इन सब को सरकार की महत्ता मे अधिक विश्वास है।"

"हमारा भी कोई राष्ट्र है, यह इनमें से अभी कोई नही जानता।" अबालाल ने कहा।

"फिर इनको यह भी कहाँ से खबर होगी कि राष्ट्रीयता जागी है, गलियो-गलियो में और गाँव-गाँव मे—और इनका—इन जैसो का तख्ता उलट देगी।"

इतने मे अंदर वाद-विवाद इतना अधिक होने लगा कि उसके सुनने मे दोनों रुक गये। अंदर चर्चा चल रही थी आनेवाली कांग्रेस की और बगाल आंदोलन, स्वदेशी व्रत, बॉयकॉट, वदे मातरम् इत्यादि विषयो की—जिन्हें सुदर्शन प्राणो से प्रिय समझता था, उनकी ये लोग थोड़े या बहुत अंश में मजाक उड़ा रहे थे। कमरे में व्यावहारिक

वातावरण फैला हुआ था। सुरेन्द्रनाथ अविचारी है; राष्ट्रीय आंदोलन एकमात्र लड़कों की मूर्खता है; वंदेमातरम् बचपन की उद्दण्डता है; बॉयकाट एक पाप है; ऐसे-ऐसे अभिप्रायों पर वहाँ विचार हो रहा था। प्रश्न केवल इतना ही था कि सब की आँखों में धूल झोंककर इस आने-वाली कांग्रेस में कैसे काम किया जाय।

सुदर्शन का खून खौलने लगा। ये सब उसकी दृष्टि में देशद्रोही दिखाई पड़े। इन सब की दृष्टि पर पड़े हुए भ्रम के परदे को फाड़कर इन सब को कहने का मन हुआ कि जिसको वे मजाक उड़ा रहे हैं वह राष्ट्रीयता विजय के प्राबल्य से बाहर प्रकाश मे आ गई है और इन जैसे सैकड़ो के हाथ में भी रहनेवाली नहीं।

आखिर सभा विसर्जित हुई और नामदार ने आकर सुदर्शन से अपने यहाँ आ जाने का आग्रह किया। सुदर्शन मना न कर सका। नामदार ने गाड़ी काँदावाड़ी की ओर मुड़वायी और सुदर्शन ने आवश्यक सामान ले लिया और अंबालाल को उतार दिया।

जैसे जेल जाता हो ऐसी मनोदशा का अनुभव करता हुआ सुदर्शन काँदावाड़ी से वालकेश्वर गया।

६

सुदर्शन ने जब से नामदार के बँगले में पैर रखा तब से उसे ऐसा लगने लगा जैसे वह एक अक्षम्य पाप कर रहा हो!

काँदावाडी की गवाती कोठरी में निर्धनता थी, भावना थी, देश-भक्ति थी, स्वदेशी व्रत था, आत्मत्याग था। उन्हे छोड़कर जहाँ वैभव और स्वच्छता साथ ही विहार करती हो, जहाँ अभिमान और स्वार्थ का दर्शन हो, जहाँ विदेशी सामग्री और राष्ट्रद्रोह पग-पग पर दिखाई देता हो वहाँ आने पर उसका हृदय विदीर्ण हो गया। गोल्डस्मिथ का वाक्य उसे स्मरण हुआ. The nackedness of the nidigent world can be clothed from trimming of the rich

(निर्धन दुनिया की नग्नता धनवानों के कपड़ो की कतरनों से ढाँकी जा सकती है) और उसके अंतर में 'माँ' की आवाज सुनाई दी, "ऐसे मेरे पुत्र विदेशी विलास में लुभाकर मेरी पराधीनता को चिरंजीवी करते हैं। सुदर्शन, तुझे ऐसे कपूत से क्या आशा ?"

सुदर्शन को एक कमरा दिया गया। उसने वहाँ रखे हुए शीशे में अपने बाल, वेशभूषा तथा मुँह देखा और साथ ही चारो ओर देखने से पता चल गया कि उसका स्थान इस सोफियानी दुनिया में नही लेकिन कांदावाड़ी में, गाँव मे, गंदगी में जहाँ उसके देशबधु सड़ रहे थे, वहाँ था। वह यहाँ स्वयं कलंक-रूप था, वह विदेशी चमक-दमक भारत में कलंक-रूप ही थी।

ऐसे अनेक विचारो के भँवर में उसने कपडे निकाले, मुँह धोया और वह बाहर आया तो नामदार और सुलोचना उसकी प्रतीक्षा में थे।

"सदुभाई, तुम यहाँ नही आये यह तुमने बहुत बुरा किया, अच्छा ! मै और रावबहादुर तो बचपन के मित्र है।" नामदार ने पुराना सबंध निकाला।

"मुझे लगा कि यहाँ ठीक नही रहेगा।"

"अरे, कोई बात है ? सब सुविधाएँ हो जाती !"

"काका ! मुझे यह सुविधा और यह सुख परिचित नही।" सुदर्शन ने नीचे देखते हुए कहा।

"तो परिचय हो जायेगा। तुम पास हो जाओ फिर यही रह-कर एल-एल० बी० करना।"

सुदर्शन ने हँसकर गर्दन हिला दी।

"क्यो ?" नामदार ने आश्चर्य-पूर्वक पूछा।

"इतने सुख में मुझसे पढा नही जा सकता और विचार भी नही हो सकता। मुझे तो कठिनाइयो में ही आनन्द आता है।" सुदर्शन ने जवाब दिया। उसकी नजर सुलोचना पर पड़ी। कहाँ यह अकड़ और

अभिमान मे बैठी हुई, विदेशी ठाठ मे सजी हुई सुलोचना का शांत और कृपापूर्ण स्वागत और कहाँ मजदूरी करती, फटी धोती मे भी गर्व का अनुभव करती हुई, देश-प्रेम में डूबी हुई, हँसमुख धनी बहिन का स्नेहमय आतिथ्य ? उसे लगा कि इस घर का वातावरण यदि तीन दिन उसके आस-पास रहे तो जरूर आत्मघात करना पड़े।

"बड़ौदा मे बैठे-बैठे तुमने भी जीवन के सिद्धात खूब गढ निकाले है।" नामदार बड़ी मुश्किल से झिझक को दूरकर हँसे।

सुदर्शन चुप रहा।

"अभी तक कापड़िया क्यो नही आया ?" नामदार ने पूछा।

"मैं समझती हूँ कि यह जो गाडी खड़ी है उनको ही लेकर आई होगी।" सुलोचना बोली।

सुदर्शन के गंभीर व्यक्तित्व की छाप नामदार पर पडी। उन्हें लगा कि इस छोटे से लड़के मे घुटन पैदा कर दे ऐसा वातावरण पैदा कर देने की शक्ति है।

इतने में प्रोफेसर कापड़िया ऊंची धोती, हाफ़ कोट और टोपी पहने आ पहुँचे।

"अच्छा, कापडिया आ गये क्या !" नामदार ने कहा।

"आया—यह आया !" सूँघनी की एक चुटकी नाक में रखते हुए कापड़िया आये।

"सुलोचना! जा जीमने की तैयारी कर।" नामदार ने आज्ञा दी। "कापडिया ! यह मेरे मित्र का लड़का सदुभाई है—जिसके बारे में मैंने बात की थी न वह।"

कापड़िया कमरे के बीच खडा रहे। उन्होने नाक पर चश्मा धीरे से बढाया और सुदर्शन जैसे कोई अजीब जानवर हो इस तरह ऊपर से नीचे तक देखने लगे।

"ठीक ! सदुभाई कैसे हो ?"

"सब कुशल मंगल है।" खडे होकर विनय-पूर्वक सुदर्शन ने कहा।

"बी०ए० की परीक्षा देने आये है।" नामदार ने कहा, "बड़ौदा कालेज में है, विप्लववादी है और अरविंद घोष के भक्त है।"

कापड़िया एक सोफा पर बैठ गये, नाक पोछी और बोले, "कालेज में सब विप्लववादी, मध्यावस्था मे सब कांग्रेसवाले और बुढापे में सब सरकार के सेवक। बचपन में कुछ बिगडता तो है नही इसलिए विप्लव-वाद अच्छा लगता है, मध्यावस्था में आगे बढने के लिये व्यवस्थित आन्दोलन की आवश्यकता दिखाई देती है; बुढ़ापे में जो कुछ इकट्ठा किया है उसकी रक्षा के लिये कानून और व्यवस्था की मदद की पुकार पड़ती है। हा . हा ...! समझे!" कापड़िया ने कहा।

"इसका मतलब यह कि सदुभाई भी बुढ़ापे मे कानून और व्यवस्था की हामी भरने लगेगा यही न?" नामदार ने पूछा।

सुदर्शन को ये वाक्य झुलस देनेवाले लगे। उसने ऊपर देखा और यथाशक्ति नम्रता से पूछा, "मेजिनी का क्या हुआ था?"

"यूरोपवालो की बात जाने दो।" कापड़िया ने कहा, "भारत की बात करो।"

"इसका मतलब यह कि हम मनुष्य नही?" सुदर्शन ने पूछा।

"एक तरह से—एक विज्ञान-शास्त्री के अनुसार Featherless biped तो ही है। समझे?" कापडिया ने जवाब दिया।

"तब दूसरे दो पैरवाले करें और हम नही, यह क्यों? यह सदुभाई का कहना है।" सोफे पर लेटते हुए नामदार ने कहा। जमाई प्राप्त करने के इस प्रयोग से उन्हे जरा दुःख हो रहा था।

"यदि विप्लववादी है तो—" कापडिया ने उँगलियो को अलग-अलगकर गिनती आरंभ की, "निर्धन होना चाहिये, भावुक होना चाहिये, स्वप्नों में जीवित रह सके ऐसा होना चाहिये और किसी एक महाद्वेष से सदा ही जलता रहना चाहिये। भारतवासी के लिये निर्धनता इतनी

साधारण है कि उसे कुछ कठिनाई नही पड़ती और परिणाम-स्वरूप उसे असतोष होता नही। उसकी भावुकता व्यावहारिक जीवन से इतनी निराली है कि दोनो नदियाँ विना मिले निराली बही चली जा रही है। उसकी स्वप्नदृष्टि इतनी सूक्ष्म और अवास्तविक होती है कि तुरन्त वैकुठ और राधाकृष्ण का नही तो ब्रह्म का साक्षात्कार करने के लिये ही छलाग मारती रहती है और अहिंसा परमो धर्म: उसकी धमनियो मे इस प्रकार वहता है कि चालीस घटे तक भी द्वेष का आवेश वह सहन नही कर सकता। समझे! केशवचन्द्र ने धार्मिक विप्लव आरंभ किया और अत मे उसने महाराजा को लड़की दी और नरसिह मेहता की तरह करताल वजाने लगा। नर्मदाशकर ने सामाजिक विप्लव शुरू किया और अत मे धर्म और वर्ण के रहस्य परखने के लिये जा बैठा। बीस वर्ष बीतने दो फिर तुम्हारा सदुभाई तो आडबरी धनाढ्य होगा या एक पहुँचा हुआ भक्त हो जायगा। समझे!"

कापड़िया का भाषण नामदार को फुर्सत के वक्त बहुत अच्छा लगता था, अत. धीरे से सिगार का धुआँ मुँह से निकालते हुए सुनते रहे। सुदर्शन को भी इस प्रोफेसर की बात मे आनंद आया; उसने आतुरता से प्रत्येक शब्द सुना इससे उसमे परिचित विचार सकल्प और सिद्धात जागे और कापड़िया के समाप्त करने पर उसकी बुद्धि सतेज हुई और उससे टक्कर लेने के लिये वह तैयार हो गया।

पर इतने मे सुलोचना आई, "पापा! समय हो गया।" चलो, कहकर नामदार उठे और अनेक विद्या के वाक्चतुर की तरह उन्होने नवीन विषय निकाला, "इस आनेवाली कांग्रेस में वड़ी गड़वड होनेवाली है प्रोफेसर, आज हम उस पर विचार करने के लिये इकट्ठे हुए थे।"

"और तुम्हारे dictator ने क्या किया? हँसकर कापड़िया ने पूछा।

"हमारी कोई सुनता ही नही?"

"क्यो ? हाः हा' हा ! बंगाल के उपद्रव से मालूम देता है तुम सब बहुत अकुला गये हो ।"

"Not a pit" पटले पर बैठते हुए नामदार ने कहा ।

"तूफान शुरू हुआ कि ओस्ट्रीच ने सुरक्षित रहने के लिये रेत में सिर दिया, यही न !"

"अरे ये Idiots क्या कर सकते थे ? इन बाबुओ के दिमाग ठिकाने नही । सदुभाई ! जरा तो लो !"

"जी, मुझसे और नही खाया जाता ।"

"सुलोचना, कल सवेरे सदुभाई को घुमाने ले जाना ।"

"मुझे कल रात मे चले जाना है इसलिये मुझे अपने मित्रो से मिलने जाना पडेगा ।"

"सवेरे घूम आना ।"

"जी ।" सुदर्शन ने कहा ।

और फिर दूसरी अनेक बातो में भोजन समाप्त हुआ । कापड़िया ने विदा ली और नामदार अपने काम में लगे ।

सुदर्शन अपने कमरे में जा बैठा । कापड़िया के शब्दो ने उसकी कल्पना-शक्ति उत्तेजित कर दी थी । प्रोफेसर भी जैसे 'माँ' के शब्द ही बोल रहा हो ऐसा लगा । क्या 'माँ' के पुत्र मानवता में ही नही ? क्या 'माँ' का प्राण वापिस नही लौट सकता ?

पाँच दिन के सतत परिश्रम के बाद सुदर्शन की स्वप्नदृष्टि थक गई थी । वह सो गया और जब आँख खुली तो सवेरा हो गया था ।

७

सुलोचना सुदर्शन को लेकर घूमने निकली तब गाड़ी में क्षोभ का वातावरण छाया हुआ था । इस 'घोचू' के साथ घूमने जाने से सुलोचना के अभिमान को आघात पहुँचा, और ऐसा न हो कि इस लडके के साथ उसे कोई देख ले, यह डर उसे हमेशा लगा रहा । शिवलाल,

नामदार और कापडिया पर वह अपना सिक्का जमा सका था इसका रहस्य वह न समझ सकी, फिर भी उस अदृष्ट रहस्य की धाक उस पर भी जमने लगी। सुदर्शन को लग रहा था, जैसे सुलोचना से विवाह करने की योजना मे यह एक प्रयोग हो, अतः जैसे कोई ऋषि-राज किसी अप्सरा से सावधान होकर चले "से ही सुदर्शन भी चल रहा था। इस तड़क-भड़कवाली, अभिमानी और उद्धत लड़की के प्रति उसे तिरस्कार हो रहा था।

कुछ उलटी-सीधी बातें करता हुआ वह चौपाटी पर आया।

"यह तुम्हारे शिवलाल सराफ का घर है।" सुलोचना ने कहा।

"हम यहां से घूमना बन्द कर दें तो कैसा?" सुदर्शन ने कहा, "मुझे शिवलाल से मिलना है।"

"पापा नाराज होंगे, फिर जैसी इच्छा।" सुलोचना ने अनिच्छा से कहा।

"वक्त थोड़ा है और मुझे काम बहुत है।" सुदर्शन ने जवाब दिया, "मेरा सामान कांदावाडी में भेज देना, नही तो मै शिवलाल की गाड़ी भेज दूँगा।"

सुलोचना ने गाड़ी रुकवाई और सुदर्शन उतरकर चला गया।

सुलोचना थोड़ी देर विचार-मग्न सी देखती रही। एक छोटा-सा लडका भी कितना भद्दा वातावरण पैदा कर सकता है? अन्त में मुँह बिचकाकर उसने कोचवान से गाडी घर ले जाने के लिये कहा।

सुदर्शन ने शिवलाल के यहाँ भोजन किया, दोपहर को कालेज में जाकर अंबालाल से मिलकर मिस वकील से परिचय किया; फिर कालबादेवी पर थोड़ी सी पुस्तके खरीदी और शाम को अंबालाल के यहाँ गया।

"सदुभाई! तुम्हारे लिये मैंने एक रूमाल बुन रखा है।" धनी ने यह कहकर डोरो का एक छोटा सा रूमाल आगे रख दिया।

सुदर्शन ने रूमाल में कढ़ा हुआ "वंदे मातरम्" पढ़ा। उसका हृदय उछलने लगा। प्रेरणा की कैसी अप्रतिम मूर्ति! उसने स्नेहार्द्र नयनों से रूमाल ले लिया। और अपना सामान बाँधने लगा।

शिवलाल और नारायणभाई भी आज अंबालाल के यहाँ ही जीमनेवाले थे। वे सब जीमे और रात की गाड़ी से सुदर्शन के बंबई छोड़ने से पहले ही जब वह बम्बई में पढ़ने के लिये आये तो अंबालाल के यहाँ ही पैसा देकर रहे ऐसी व्यवस्था उन्होंने कर दी थी।

---

# बंबई में निवास

१

सुदर्शन अपने गाँव पहुँचा, और दूसरे ही दिन रावबहादुर प्रमोदराय के महान् क्रोध का भाजन बना। इस क्रोध का कारण नामदार जगमोहनलाल का पत्र था।

बंबई...११-१९०६

रा० प्रमोदभाई,

चि० सुदर्शन बंबई आ पहुँचा—और बहुत आग्रह करने पर भी हमारे यहाँ नहीं उतरा। कुछ अभिमान, कुछ गलत धारणाओं, और कुछ मूर्खों जैसे आदर्शों ने इस आशास्पद लड़के को बिगाड़ दिया है। बुरा तो नहीं मानोगे—मैं भी इसे अपने लड़के की तरह ही समझता हूँ, इसलिए लिख रहा हूँ। ये सब बातें देखते हुए हमें अपने सम्बन्ध गाढ़े करने के प्रयत्न स्थगित ही रखने पड़ेंगे बस—गंगा भाभी को प्रणाम !

तुम्हारा
जगमोहन

"तूने यह क्या किया मूर्ख !" प्रमोदराय ने घुड़ककर सुदर्शन से कहा, "दिन पर दिन बुद्धि खराब ही होती जा रही है। बंबई जाकर क्या-क्या कर आया ?"

"बाबूजी, कुछ नहीं। अपनी जिंदगी अपने ढंग से व्यतीत करने योग्य अब मैं हो गया हूँ।"

"इसका मतलब यह कि जो जी में आये वह करने का अधिकार मिल गया, है न !" लाल-पीले होकर रावबहादुर ने कहा।

"मैंने नामदार साहब का जरा भी अपमान नहीं किया। जहाँ मुझे अच्छा नही लगे वहाँ मैं उतरता किस लिये ? और उनकी सुलोचना का मैं करूँ क्या ? विवाह तो मुझे करना नही है। उसको रखने के लिये मैं काँच की आलमारी कहाँ से लाऊँ ?" खीझकर सुदर्शन ने कहा।

"इसका मतलब यह कि तू सुलोचना से शादी नही करेगा।"

"मेरी इच्छा नही है—सुलोचना की मर्जी नहीं। अब जगमोहन-लालजी के भी विचार बदल गये, फिर बेकार किस लिये आशा रखते हो ?"

"तुझे करना क्या है ?"

"मुझे पैसा नही चाहिये, मुझे प्रतिष्ठा की जरूरत नहीं, मुझे कन्या भी नही चाहिये।"

"फिर राख लपेटकर फिरना है ?"

"मैंने तो बहुत दिनो से राख लपेट रखी है।"

"लड़के, तू मुझे जला मत। ज्यादा गड़बड़ करेगा तो घर से बाहर निकाल दूँगा।"

"जब तुम कह दोगे तो मैं भी दूसरे क्षण यहाँ नही रहूँगा। बाबूजी! किस लिये गुस्सा होते हो ? मैं खराब हूँ ? मैं दुर्गुणी हूँ ? मैं पापी हूँ ? मेरा क्या अपराध है ? मुझे अपना जीवन अपने ढंग पर निर्माण करना है, तुम्हारे ढग पर नही।"

"तू बहुत बुद्धिमान हो गया है !"

"मैं तो बालक हूँ।"

"इससें क्या ? यह पागलपन तो तुझे छोड़ना ही पड़ेगा। नही तो—"

"बापू ! मेरा पागलपन जोर-जुल्म से कभी जानेवाला नहीं।" जरा जोर से सुदर्शन ने कहा।

"नही-जायगा, नही जायगा क्यो?" चिल्लाकर रावबहादुर बिस्तरे पर से उठे और सुदर्शन के पास जाकर एक तमाचा जड़ दिया। "नही जायगा !" दाँत किचकिचाकर रावबहादुर ने फिर कहा, "खबरदार जो ऐसी बेशरमी मेरे मुँह पर जतायी तो ! जा मुँह काला कर !"

सुदर्शन की आँखो में पल-भर के लिए द्वेष झलक आया, पर अपने बाप के प्रति उसके हृदय मे इतना सम्मान और प्रेम था कि वह हमेशा ही पुत्र के आदर्शो की रक्षा करने के लिये यथाशक्ति प्रयास किया करता था। वह चुपचाप नीचे देखता रहा, उसके हृदय में कुछ-कह डालने का आवेश हो आया था, पर उसने उसे दबा दिया।

नीचे मुँह झुकाकर वह चला गया। उसे लगा कि उसकी मानवता की कसौटी शुरू हो गई थी। वह अन्दर गया और कोने में बैठकर सकल्प किया कि जिस घर मे उसे अपनी इच्छानुसार जीने का अधिकार नही—जहाँ उसको 'माँ' की भक्ति करने का हक नही, वहाँ रहना बेकार था। जीवन के आदर्श और बसाये हुए स्वप्न उसे घर से निकल जाने की प्रेरणा दे रहे थे। निरंकुश देश-भक्ति को अपनाने के लिये उसे स्वतत्रता की आवश्यकता दिखाई दी।

उसने घर से बाहर जाने का निश्चय किया। उसने अपनी धोती, एक कमीज़, दो किताबे, एक डायरी और पास में पड़े हुए चौदह रुपये बाँधे और आधी रात के बाद घर से निकलकर दो बजे की गाड़ी से बबई जाने का निश्चय किया।

माँ-बाप उसका इरादा जान न जायें इसलिये हमेशा की तरह दस बजे बिस्तर पर जाकर वह सोया। ग्यारह बजे के लगभग सारा घर शात हो गया तब उसने उठने का विचार किया और तीसरी मजिल से रावबहादुर के आने की आवाज सुनाई दी। वह जैसे सो रहा हो इस प्रकार पीठ फेरकर सो गया।

प्रमोदराय और गंगा भाभी धीरे-धीरे उसके पास आये। दोनों खाट के पास बहुत देर तक खड़े रहे। कही ऐसा न हो कि वे जान जायँ कि वह जाग रहा है इसलिए सुदर्शन खर्राटे भरने लगा।

"मैंने बड़े जोर से मार दिया है।" प्रमोदराय ने गंगा भाभी से कहा। उनकी आवाज मे स्नेह और खेद दोनो थे। "लड़का हीरा है।"

"तुम व्यर्थ ही गुस्सा हो जाते हो।" गंगा भाभी ने धीमे जा-से जवाब दिया, "बड़ा होने पर स्वयं सीधा हो जायगा। यह तो जगमोहनभाई के मिजाज का ठिकाना नही जो ऐसा लिखा। उसकी सुलोचना नही मिले तो हमारा लड़का जैसे क्वाँरा ही रह जायगा?"

सुदर्शन को यह भावयुक्त प्रदर्शन देखकर रुलाई आ गई। उसे लगा कि बहुत देर तक माँ-बाप उसे स्नेह से देखते रहे; एक बार तो जैसे दोनो ने एक ही भाव के आवेश मे एक दूसरे का हाथ पकडा हो, ऐसा लगा; एक बार प्रमोदराय ने उसके शरीर पर प्यार से हाथ फेरा। थोड़ी देर बाद दोनो धीरे-धीरे ऊपर चले गयें।

उनके चले जाने पर सुदर्शन ने आँखें खोली—उसकी आँख में आँसू थे, उसका गला रुँध गया था। वातावरण में अपार्थिव मृदुला तथा स्नेहशीलता थी। इस जादू भरे वातावरण में फिर उसकी आँखो के सामने वूढे माता-पिता खाट के पास खड़े उसकी ओर ममता की वर्षा करते दिखाई दिये। इन दोनो के जीवन का वह आशातंतु था। यदि वह चला जाय तो जैसे श्रवण के वियोग में उसके माता-पिता मर गये थे वैसी ही दशा इनकी भी हो जाय। क्या इनको वेमौत मरने देने में मानवता थी? क्या उनको खुश रखकर 'माँ' की भक्ति नही हो सकती? क्या इस समय माँ-बाप की सेवा और 'माँ' की सेवा के बीच विरोध था?

बहुत देर तक वह विचार करता रहा। उसने कई बार गठरी उठायी, कपडे पहनने का विचार किया पर मन दृढ़ नही हुआ।

बारह बजे, एक बजा, गाड़ी का वक्त हो गया, सारी रात सुदर्शन जागता हुआ खाट पर पड़ा रहा। उषःकाल हुआ तब उसने नि.श्वास छोड़ी।

"माँ! माँ! इन दोनो को इस तरह मरते हुए छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ? माँ! इनको छोड़ने की जरूरत हो तो आज्ञा देना।"

वह खाट पर पड़ रहा और थोड़ी देर मे उसे नीद आ गई।

२

दूसरे दिन प्रमोदराय और सुदर्शन—दोनो ने कल की बात भुला दी और हमेशा की तरह काम चलने लगा। जगमोहनलाल, सुलोचना और थप्पड़—सब स्वप्न जैसे लगने लगे।

थोड़े दिनो मे सुदर्शन बी० ए० द्वितीय श्रेणी मे पास हुआ इसकी खबर मिली। समस्त कुटुम्ब ने आनन्द महोत्सव मनाया। पेड़े बाँटे गये, चाय पिलाई गई, मुबारकबादी के पत्र आये। रायबहादुर गर्व से घूमने लगे। गंगा भाभी की आँखो मे हर्ष के आँसू आये, और अपने जीवन के द्वार खुलने से सुदर्शन को भी हर्ष हुआ। अंबालाल का साहचर्य, बम्बई का शक्तिप्रेरक वातावरण, ध्येय को विकसित करने का अवसर, साथ ही मडल को सजीव बनाने का लक्ष्य और धनी की स्नेहभरी सहानुभूति से युक्त प्रोत्साहन—इस प्रकार के नवीन और रमणीय जीवन के स्वप्नो का आनन्द अनुभव करने मे वह व्यस्त हो गया।

भीमनाथ के तालाब के किनारे पर स्थापित मंडल के विषय मे वह दिन मे अनेक बार विचार करता, और उसके सदस्यो की प्रवृत्ति किस प्रकार केन्द्रस्थ होकर देश में राष्ट्रीयता और स्वातंत्र्य ला सकती है इसका विचार तो वह करता ही रहता था। उसे एक

ख्याल आया। मंडल का प्रत्येक सदस्य एकदेशीय दृष्टि से राष्ट्रीय प्रश्न पर विचार करता था। एकमात्र वह अकेला ही भिन्न-भिन्न दृष्टियो को समग्र रीति से देख सकता था और एकमात्र उसकी ही योजना सर्वग्राही थी। प्रत्येक सदस्य की एकदेशीय प्रवृत्तियो के एकीकरण से एक सर्वदेशीय आदोलन का कैसे जन्म हो.इसका विचार वह किया करता था। इन विचारो के कारण उसको स्वप्न अनुभव करने-की शक्ति पर अंकुश रख गया। प्रत्येक प्रवृत्ति का पोषण करने के लिए आवश्यक सावन क्या-क्या चाहिये और वह कैसे प्राप्त किये जायँ इसका विचार करते हुए स्वप्न-विस्तार की व्यवहारिक मर्यादा हो गई।

इनमें से सबसे कठिन प्रश्न तो 'माँ' के 'प्राण' को पहचानकर उसे वापिस लाना था। प्रोफेसर कापड़िया के शब्दो ने उसके हृदय पर आघात किया था। 'माँ' का प्राण वही कापड़िया की विप्लवात्मक मानवता! और यह 'प्राण' 'माँ' को पुन. नही मिलेगा, क्योकि कापड़िया के अनुसार, क्या हिन्दुस्तानी निर्वन, भावुक, स्वप्नदृष्टा और महाद्वेषी होने के लिये अशक्त थे?

जनवरी आई और नरम पड़ गये राववहादुर ने, सुदर्शन कानून का अध्ययन करे इस इरादे से अंबालाल के यहाँ पैसा देकर रहने की आज्ञा दे दी। जगमोहनलाल के प्रति राववहादुर को भी अरुचि हो गई थी, अतः उनके विषय में कुछ नही कहा।

जाड़ों में एक दिन सवेरे सुदर्शन एक ट्रंक और एक विस्तर लेकर चर्नीरोड स्टेशन पर उतरा। और बुलाने आये हुए अंबालाल से मिला। दोनो मजदूर के सिर पर सामान रखा कर कांदावाड़ी गये और धनी का स्नेहमय स्वागत स्वीकार करते हुए सवेरा वीत गया। सुदर्शन लॉ कालेज में जाने लगा और सारा समय पीटीट लाइब्रेरी में व्यतीत करना आरम्भ कर दिया। उसे लगा कि इतिहास

और जीवन-चरित्रो मे भरे हुए रहस्यों का अध्ययन किये विना 'माँ' का 'प्राण' पुनः लौटाने की समस्या हल नही हो सकती।

ज्ञान-सचय के साथ-साथ उसने विचार भी अधिक करना आरंभ कर दिया और समय मिलने पर अंबालाल, शिवलाल या मिस वकील के साथ बातचीत करता था। उन सब का विषय एक ही था—मातृभमि। लक्ष्य एक ही था—माता का उद्धार।

साथ ही साथ वह मंडल के सदस्यो से भी गाढा सम्बन्ध रखने लगा। केरशास्प रुई बाजार में व्यस्त रहता था, पर सुदर्शन उससे बार-बार मिलता और घडी दो घडी अलग-अलग प्रश्नो पर चर्चा करता। अबालाल और मि० वकील गुप्तरूप से बम तैयार किया करते और यह प्रयोग थोड़े समय मे सफल हो जायगा ऐसा विश्वास सुदर्शन को दिलाते रहते। शिवलाल सीनियर बी० ए० मे था पर भिन्न-भिन्न सस्थाओ और उनके संचालको के संपर्क मे आकर प्रत्येक की चाबी क्या है यह निश्चय करने में ही प्रवृत्त रहता।

मगन पड्या बी० एस-सी० के अतिम वर्ष के लिए बड़ौदे में मेहनत कर रहा था और पास हो जाय बड़ौदा राज्य की ओर से उसे विदेश भेजा जायगा, इस धुन मे लगा हुआ था।

पाठक एम० ए० हो गया था और किसी अच्छी नौकरी में व्यवस्थित हो जाय इसी उधेड़बुन में इधर-उधर चिट्ठी लिखने में, लोगो को प्रसन्न करने मे फँसा रहता था।

धीरू शास्त्री बी० एस-सी० में पास हो गया था और कैसे भी आर्य समाज की प्रवृत्ति का अभ्यास हो सके ऐसे अवसर की खोज मे था।

सनत्कुमार जोशी ने इन्टरमीडियट पासकर अखाड़ो के लिए संचालको को शिक्षित करने की योजना हाथ मे ली थी।

गिरजाशंकर शुक्ल सीनियर मे आया था, लेकिन अभ्यास को उपेक्षाकर सैनिक-कार्रवाई के बारे में बड़े-बड़े विचार कर रहा है, इस तरह खबर दिया करता था।

नारायणभाई पटेल ने बी० ए० मे गणित मे फर्स्ट क्लास पाया और एम० ए० होना या आई० सी० एस० होने के लिए विलायत जाना इसका विचार किया करता था।

मोहनलाल पारेख विप्लववाद का प्रसार किया करता था।

३

लेकिन सुदर्शन के मस्तिष्क मे इन सब बातो में प्रमुख स्थान धनी बहिन लेने लगी थी। अंबालाल की तरह वह भी घर के काम में मदद करता और दोपहर भर फुरसत होने के कारण उसको पढ़ाने और उसके साथ बातचीत करने का अवसर मिलता। धनी आतुर शिष्या थी और छोटी उम्र में भी उसे दूसरे को आकर्षित करने की कला आती थी। वह मीठा हँसती और बार-बार हँसी भी करती। धीरे-धीरे इन दोनो का समागम बढ़ता गया और दो घंटे धनी के साथ पढ़ने मे या बात करने में व्यतीत होना प्रति दिन की दिनचर्या का एक आवश्यक अंग हो गया।

सुदर्शन धनी से विदेशी और स्वदेशी महात्माओ की जीवन-कथा कहता, मातृभूमि के प्रति की गई सेवाओ के विविध प्रसंगो का वर्णन करता, अर्वाचीन देश-भक्तो के जीवन का परिचय देता। उससे अपने बचपन के सपने कहता और कालेज मे अपनाये हुए स्वप्नो की रूपरेखा के विषय मे कुछ बताता। आँखें खोले, होठ बंद किये धनी सब कुछ सुना करती और सुदर्शन बोलता हुआ रुके कि 'फिर ?' कहकर कोयल की तरह कूक उठती। यह 'फिर ?' सुदर्शन के कान में एक सुमधुर प्रति-ध्वनि गुंजा देती।

स्त्री के आगे अपना हृदय खोलकर रख देना पुरुष को मोक्ष से भी अधिक आकर्षक होता है—सच्चिदानन्द से भी अधिक आह्लाददायक होता है, पर जो स्त्री शिष्या हो—जो उस पुरुष को पूजती हो—जिसमें किसी का खोट देखना आता न हो और स्वतंत्र धारणा बनाने का ज्ञान न हो—जिसमे पुरुष के शब्द-जाल की मोहिनी मे परवश होने की निर्बलता हो, तो वह पुरुष को पल भर के लिए एक अद्भुत प्रेरणा देती है, उसके व्यक्तित्व को विकसित करती है, उसके स्मरणो को महाकाव्य का रूप देती है, उसके भविष्य को भव्य बनाती है—उसे ऐसी प्रचड महत्ता का भान कराती है कि उसकी मानवता स्वाभाविक स्वरूप को छोडकर दैवी विस्तार ग्रहण कर लेती है; और पल भर के लिए जैसे वह देवो के समान बन गया हो ऐसा अनुभव करती है। कोई कह सकता है कि यदि मेरी मोडलीन न होती तो ईसू खिृस्त पैगम्बर हो सकता था ?

ऐसा ही कुछ सुदर्शन को भी हुआ। अपने विचार और अपने स्वप्नो को इस छोटी सी नासमझ लडकी के आगे व्यक्त करते हुए उसे अपनी मानवता की माप का पता चला और जैसे वह पैगम्बर होने के लिए पैदा हुआ हो, ऐसा कुछ ख्याल आने लगा; और साथ ही धनी का भी दैवी स्वरूप उसे दिखाई दिया। वह एक साधारण लडकी नही थी, वरन् उसकी आँखो मे अगाध गाभीर्य उसने देखा और उसकी वाणी में एक अनोखी प्रेरणा उसे सुनाई दी। उसे इधर-उधर फिरती, काम करती, बात करती हुई देखता कि उसके छोटे से शरीर मे तेजस्वी पारदर्शकता उसे दिखाई देती। वह अपने भविष्य का विचार करता तो उसमे धनी की स्वर्णमयी देहलता अद्भुत रूप से लिपटी हुई दिखाई देती, अपने को देश-नायक समझता तो धनी हाथ मे माला लेकर उसे बधाई देने के लिए तैयार दिखाई देती, और अपने को गुप्त मडल का नायक समझता तो धनी उसके पास खडी हुई

मंडल को प्रेरणा देती हुई दिखाई देती। वह अपने को कारागृह में पड़ा हुआ समझता तो धनो बाहर व्रतकर उसकी प्रतीक्षा करती हुई दिखाई देती। अपने को सूलि पर चढाये जाने की कल्पना करता तो दूर न दिखाई दे इस प्रकार खड़ी हुई धनी के दिव्य चक्षुओं से शक्ति प्राप्तकर अपने अंतिम पलो को गौरवान्वित होते हुए देखता।

इन सब स्वप्नों में पार्थिव तत्व तो नाम को भी न था। धनी उसकी स्वप्न-सृष्टि मे देवी की तरह विराजमान थी। वास्तविक जीवन में चाहे अच्छी भी न लगे तो भी स्वप्न-जीवन मे वह अपूर्व देवी बनकर सब को शासित करने लगी। इतना सब होने पर भी यह भावुक विद्यार्थी उसके प्रति सगे भाई से भी बढकर निर्मल स्नेह और मान से बर्ताव करता था। उदीयमान, निर्दोष, संस्कारी, मानव-हृदय भावनाशील कल्पना की दृष्टि से विकास पाता हुआ स्त्रीतत्व देखे इस प्रकार सुदर्शन धनी को देखता था।

एक सप्ताह मे दो दिन लॉ क्लास से वापिस आते समय फणसवाड़ी के चौराहे पर से सुदर्शन 'वंदेमातरम्' खरीदकर घर ले आता तब अंबालाल के छोटे से कमरे में राष्ट्रीय महोत्सव होता। अबालाल या सुदर्शन जोर से सारा पत्र पढ जाते। जो खाने का तैयार हो तो कभी कभी जीमते-जीमते दो कौर खाने के बीच में भी उसके वाक्य अधीर देश-भक्त पढते रहते। अरविंद बाबू की संजीवनी भाषा का प्रसाद वे चखते, बगाल में छायी हुई राष्ट्रीय भावनाओ की बौछारो में भीजते ; राष्ट्रीय उर्मियाँ उनके हृदय मे तूफान मचाती; देश-भक्ति से पागल होकर वे चुपचाप बैठ जाते या उसका प्रदर्शन करने के लिए मार्ग खोजते ; अंग्रेजो की ओर उनका द्वेष-विष और भी हलाहल हो जाता; और 'माँ' आमेय अंतर से स्वसंस्कार और आत्म-सिद्धि के संदेश स्पष्टतया उनको सुनाती।

४

१९०७ की कथा एक महाकाव्य है।

सितवर १९०६ मे सुरेन्द्र बाबू ने अभिषेक कराया था ; विद्यार्थी वर्ग नें उसे राज्याभिषेक का नाम दिया और नये वर्ष से जैसे ब्रिटिश शासन नष्ट हो गया हो सुदर्शन और उसके मित्र अनुभव करने लगे थें।

दिसंबर १९०६ मे दादाभाई नवरोजजी ने स्वराज्य का मंत्र देश को दिया और अबालाल देसाई ने देश मे अंग्रेज रहते है यह विचार ही मस्तिष्क से निकाल देने का प्रयत्न किया।

प्रतिदिन बंगाल मे स्वयंसेवक-समिति से खबरे आती। नवीन युग शुरू होता हुआ जान पड़ा। नवयुवक कटिबद्ध होकर स्वातन्त्र्य युद्ध मे कूदने के लिए तैयार हो रहे थे।

कोमिला मे हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ; मारामारी हुई; थोडा बहुत खून भी बहा। वायु मे समरागण की ध्वनि गूंजने लगी और सुदर्शन के नथुने युद्ध तत्परता के गर्व से फटने लगे।

पंजाब से भी रणभेरी की आवाज आई। लाहौर में 'पजाबी' पात्र के संपादक को राजद्रोह के अपराध में दड दिया गया। जेल जाते हुए संपादक को लोगो ने बधायी दी। स्वतंत्रता के लिए सब कुछ सहना यह एक आदत-सी हो गई।

रावलपिंडी मे सरदार अजीतसिह और लाला लाजपतराय गरजे। पंजाब, अर्थात् सिक्ख; सिक्ख अर्थात् सेना; सेना अर्थात् युद्ध, युद्ध अर्थात् विजय। अब क्या रह गया ?

लोगो ने सत्ता के विरुद्ध विद्रोह किया। देश में अफ़वाह उड़ी कि १०वी मई अर्थात् सन् सत्तावन के विद्रोह की वर्षी। उस दिन जरूर स्वातंत्र्य युद्ध होगा। बाल-हृदय आशा से पागल हो उठे।

छठी मई को विद्यार्थियो को राजनैतिक प्रवृत्ति में भाग लेने से रोक दिया गया। "सरकार झूठ बोलती है।" घनी ने कहा।

९वी मई को लाला लाजपतराय और अजीतसिंह को डिपोर्ट (समुद्र पार) किया गया। अब क्या रह गया ?

११वी मई को बंगाल और पंजाब में पब्लिक मीटिंग पर नियंत्रण लगा दिया गया। कुछ पर्वाह नहीं, जाहिर में नहीं तो छिपे तौर से एक हुआ हिंद कही अलग-अलग रहनेवाला है ?

सितंबर में विपिनचन्द्र पाल पकडे गये। "जहाँ तीस करोड़ जेल जाने को तैयार है वहाँ कितनो को पकड़ेंगे ?' मिस वकील ने सूत्र उच्चारण किया।

सितंबर मे महायोगी सदृश समझे जाते अरविंद घोष अपने ऊपर चलाये गये केस से मुक्त हुए। स्वतन्त्रता का सूर्य तप रहा था इस बात से कौन इन्कार कर सकता है ?

केर हार्डी और नेविन्सन् विलायत से भारत की अशांति का रहस्य जानने के लिए आये। इग्लैंड भी काँपने लगा था, इसे कौन नही मानेगा ?

पहली नवबर को राजद्रोही सभा पर पाबंदी का कानून काम में लाया गया। डा० रासबिहारी घोष और गोखले ने अपने भाषणो में बहुत क्रोध प्रदर्शित किया। भाषणो से कही स्वतंत्रता मिलनेवाली है।

मोर्ली साहब पुस्तको मे निहित स्वातंत्र्य के शौकीन थे। प्रधान होते ही कहने लगे कि कैनेडा जैसा स्वराज्य भारत में ठीक नही रह सकता, कैनेडा का फर कोट दक्षिण में सुखप्रद कैसे हो ? विप्लववादी भारत की हँसी उडाने लगे,'मोर्ली के अभिप्राय के अतिरिक्त अंग्रेजो के पास से और क्या मिलेगा ?'

इस प्रकार रोज कुछ न कुछ नवीन बात होती और सब 'वंदे-मातरम्' जैसे राष्ट्रीयता को प्रोत्साहन देनेवाले संजीवन मंत्रो का

उच्चारण करने लगे। कर्मयोग—अशांति—स्वदेशी—बायकॉट—विनाश—विप्लव और अंत में स्वातंत्र्य। कैसी भव्य परंपरा है!

सुदर्शन और अंबालाल की मनोकामना बढने लगी। धनी की आँखो का तेज प्रतिदिन अधिक और अधिक बढा। मिस वकील के होठ आवेश में और भी जोर से बंद होने लगे।

५

आन्तरिक संघर्षो मे एक दिन सुदर्शन को प्रोफेसर कापड़िया से मिलने का मन हुआ। उस दिन जगमोहन के यहाँ दो घंटे उनके साथ बात की तभी से सुदर्शन उनसे मिलना चाहता था। उस दिन से उसे ऐसा लगने लगा था कि वेद-पंडित की तरह लगनेवाले कापड़िया की बातो मे गंभीर विचार और अध्ययन समाया हुआ था और कही ऐसा न हो कि उसकी अपनी तैयारी मे कमी रह जाय अतः इस भय से उसने उनके ज्ञान के उपयोग करने की बात सोची।

एक दिन शाम को उसने प्रोफेसर का दरवाजा खटखटाया और वही हाथी के सदृश सिर और दुबले-पतले शरीर वाले—एक अँगोछा पहने हुए कापड़िया ने दरवाजा खोला।

"साहब, आ सकता हूँ?" नम्रता से सुदर्शन ने पूछा।

"क्या काम है?" उसे ठीक से न पहचानते हुए प्रोफेसर ने बीच में ही खडे रहकर पूछा।

"आपने मुझे नही पहचाना क्या? नामदार जगमोहनलाल के यहाँ नवंबर महीने मे हम मिले थे न?"

"हाँ, हाँ!" प्रोफेसर ने माथा खुजलाते हुए कहा।

"आपको अवकाश हो तो एक बात पूछनी है।"

"अंदर आओ फिर तो तू मिला ही नही।"

"जगमोहनलाल बड़े आदमी ठहरे, उनके यहाँ मुझ जैसे को स्थान कहाँ।"

"तू तो विप्लववादी है न? हा, हा हा! तुझको शोभा दे ऐसा ही जवाब है।" कहकर प्रोफेसर ने सुदर्शन को अंदर बुलाया और दरवाजा बंद कर दिया। पुस्तकों से भरे हुए कमरे को देखकर सुदर्शन पल भर दंग रह गया। इतना सारा कोई पढ़ सके यह उसके ख्याल में न था। उसने सम्मानपूर्वक प्रोफेसर की ओर देखा।

"आपका समय तो नहीं ले रहा हूँ?" सुदर्शन ने क्षोभ से पूछा।

"क्या बात करने के लिये तू आया है उस पर ही तो समय का आधार है।" कहकर एक कुर्सी खाली कर दी, उससे बैठने के लिए कहा।

सुदर्शन को जरा क्षोभ हुआ। इस छोटीसी निर्बल मूर्ति के भद्दे कपाल पर शोभायमान बुद्धि के तेज ने और सरस्वती के मंदिर के समान इस कमरे ने उसे जरा देर के लिये घबरा दिया। पर उसकी माँ की आज्ञा उसे याद आई। उसके प्रतापी शब्दों की प्रेरणा ने उसे उत्साहित किया।

"प्रोफेसर साहब! आपने उस दिन कहा था कि भारतवासी विप्लववादी नही हो सकते, आपके इसी सिद्धांत के विषय में मैं पूछने आया हूँ।"

"अच्छा, तो तेरे सिद्धांतो मे भूल हुई है क्यो?" कहकर कापड़िया ने सूँघनी का सटाका लगाया।

"आपका सिद्धांत मुझे झूठा लगता है।" सुदर्शन ने कहा।

"लगता है और पाँच वर्ष तक लगेगा, समझा?"

१७८९ से पहले फ्रांस में कोई यदि आप जैसा होता तो इस प्रकार कह सकता था?"

"मुझे विश्वास नही My boy! १७८९ से पहले फ्रांस राष्ट्र था। उसके राज्यकर्ता अंधे थे, उसकी प्रजा में शक्ति थी, वह धार्मिक नहीं थी और न वह निर्बल ही थी। उसमे व्यवस्था और शक्ति दोनो थी, फिर भी वह भूखो मरती थी। क्या अपने यहाँ इनमे से कुछ भी दिखाई देता है? समझा!"

कापड़िया ने जैसे जैसे घटनाये कहना आरंभ की, वैसे-वैसे सुदर्शन में अश्रद्धा का संचार होने लगा। घबराहट में उसके रोम-रोम खड़े हो गये।

"आपको नही दिखाई देता?" उसने सम्मान-पूर्वक प्रश्न किया। "लार्ड कर्जन क्या आँखोवाला दिखाई देता है? क्या बंगाली अशक्त हैं? क्या हमारे यहाँ भुखमरी नही है?"

"मूर्ख! कर्जन अंधा हो पर ब्रिटिश प्रजा अंधी नही। अंग्रेजी प्रजा का इतिहास पढा है? यह प्रजा मे कोई न कोई रास्ता खोज निकालने में अति कुशल है।"

"अमेरिका गँवाते समय यह कुशलता कहाँ चली गई थी?"

"तरकीब तो खोज निकाली थी पर उसका अमल देर में हुआ। बर्क और चेथाम के भाषण पढ़े है? तरकीब तो तैयार ही थी, लेकिन राजा खराब था। अमेरिका खोया इसीलिये तो अंग्रेजो ने तरकीब निकालकर राजा को अशक्त कर डाला। अब वह भूल नही हो सकती, और अगर ये करे भी तो उसका लाभ उठाना हम लोगो को कहाँ आता है?" प्रोफेसर ने सूँघनी सूँघी।

"आप तो बिल्कुल निराशावादी है।"

"नही, मै तो उनकी और तुम्हारी आलोचना तटस्थ रीति से कर रहा हूँ।"

"इसका क्या प्रयोजन? मै तो आपके पास रास्ता खोजने आया

हूँ। मां फाँसी पर चढ़ेगा; पर यहाँ आया है तो एक बात सुनता जा।
होवे कैसे समझ—चेतावनी समझ—चाहे जो समझ, समझा?
"हा ! एण्ट्रवाद' या विप्लववाद जो भी समझता हो और उसे
"फिर भी हो या उसका प्रचार करना हो तो उसको धार्मिक
" My boy "
योजना। जो पुरुषत्व ये सब धार्मिक ही है।
पैदा कर दिखाना उसका परिणाम यह होगा कि तुम जहाँ थे वहाँ के
पर बीस गुना आवेश चढ़ना चलोगे तो फिर कर्मकांडी बन जाओगे।
टता बीस गुनी बढ़नी चाहिये, यह पहले। गुनगुनाने मे ही विराम पा
से होनी नही। प्रत्येक वर्ष लड़के बी० ए० होते हुए, मरी हुई जूं के
नाई हुई भावनाओं का शताश भी छ: महीने नहीं करना हो तो शुद्ध
अशक्त बनकर संसार के साथ समझौता कर ले
सुदर्शन मन मे हँसा। इस पुस्तक-प्रेमी प्रो
वह और अंबालाल देसाई जैसे भावनाशील युवा पुराने ब्राह्मणों का
परिपक्व हो रहे थे। वे अपने प्राण दे देंगे पर। जाओ, My boy.
"प्रोफेसर, माफ करे। आप हमारे साथ मे बैठा हैं।"
अब हम ऐसे नही रहे।'
"My boy! जितने लड़के मैंने पढ़ाये है, उतने
नहीं। तू पास हो जा फिर बताऊँगा। स्त्री होगी तो जाने कर, सुदर्शने
माँ होगी तो कमाने के लिये भेजेगी, बाप होगा तो
और किसी आफिस में ५०) मासिक लेकर तेरी भावना ..ह करने-
देगा। हा, हा, हा?"
सुदर्शन को यह हँसी चाबुक के सड़ाके की तरह लगी। इ
आडंबर मे यह प्रोफ़ेसर अधम से अधम निराशावाद को अपनाये सर
था। उसकी बात में केवल तिरस्कार ही नही बल्कि देशद्रोह के बी
भी दिखाई दिये। क्या यह आदमी युवकों को अश्रद्धावान बनाने का

नही तो फाँसी पर चढेगा; पर यहाँ आया है तो एक बात सुनता जा। सिद्धांत समझ—चेतावनी समझ—चाहे जो समझ, समझा? कर्मयोग, राष्ट्रवाद या विप्लववाद जो भी समझता हो और उसे अमल में लाना हो या उसका प्रचार करना हो तो उसको धार्मिक स्वरूप मत देना।"

सुदर्शन हँसा, "ये सब धार्मिक ही है।"

"इस देश मे इसका परिणाम यह होगा कि तुम जहाँ थे वहाँ के वही रहोगे। गीता मे से कर्मयोग लोगे तो फिर कर्मकांडी बन जाओगे। वेदांत मे से लोगे तो 'अहं ब्रह्मास्मि' गुनगुनाने मे ही विराम पा जाओगे। योगसूत्र में से लोगे तो अहिंसावादी बनकर, मरी हुई जूं के लिए भी मदिर बनवाओगे। राष्ट्रवाद स्वीकार करना हो तो शुद्ध और अमिश्रित हो।"

"हमारा राष्ट्रवाद ही धर्म है।"

"लेकिन तुम्हारा धर्म ही राष्ट्रवाद है, ऐसा पुराने ब्राह्मणों का प्राचीन सिद्धांत फिर से प्रकाश में नही लाओगे। जाओ, My boy, अब तो तेरा भाग्य तुझे जेल मे ले जाने के लिए बैठा है।"

"वह सौभाग्य का दिन कब आये।"

"माँ-बाप से भी पूछ लिया है?"

"विप्लववादी के माँ-बाप भी होते है क्या?" हँसकर सुदर्शन ने कहा।

"तू तो नामदार जगमोहनलाल की सुलोचना से विवाह करने-वाला है न?

"नही, उससे विवाहकर मैं क्या करूँगा?"

"विवाह नही करेगा?" प्रोफेसर ने चकित होकर पूछा। प्रोफ़ेसर की आवाज में आश्चर्य के अतिरिक्त कुछ और भी ध्वनि थी। सुदर्शन उसे परख न सका।

"नही साहब नही।"

"अच्छा आना भाई।" प्रोफेसर ने दरवाजा खोलते हुए कहा। सुदर्शन ने आज्ञा ली।

प्रोफेसर ने दरवाज़ा बंद कर दिया और आकर सामने दीवार पर लटकते हुए नामदार जगमोहनलाल का सकुटुंब फोटो देखने लगे। फ़ोटो मे आठ-नौ वरस की सुलोचना बाप के पास खड़ी थी। सब कुछ भूलकर वह सुलोचना को देखते रहे। थोड़ी देर बाद वह बड़-बड़ाये, 'अच्छा ही है, यह पागल उससे विवाह न करे।' फिर एक मैले से आइने में अपना प्रतिबिम्ब देखने लगे—यह कुरूप और बेडौल शरीर, आँखो मे पड़े गड्ढे, पिचके गाल और फीके होठ, हाथी की तरह उभरा हुआ कपाल, दो मिनट तक देखने के बाद उन्होने निःश्वास छोड़ी। आज-रात मे उनसे पढ़ा नही गया।

६

सुदर्शन कापड़िया के यहाँ से निकला, उस समय उसकी उलझनें और बढ़ गई थी। जिन सिद्धान्तो को वह निर्वाद मानता था, प्रोफेसर ने उनकी उपेक्षा की थी। जो विप्लववाद उसे चारो ओर प्रसरित होता हुआ जान पड़ता था, कापड़िया को उसकी सम्भावना के विषय में सन्देह था। उसकी भावना, उसके सिद्धान्त, उसका कर्मयोग—क्या ये सब केवल स्वप्न मात्र थे?

प्रोफेसर के दृष्टिकोण ने उसके हृदय मे अश्रद्धा का संचार कर दिया था। इस अश्रद्धा से उसका मन क्षुब्ध हो उठा। क्या वह गलत था? क्या उसका कार्यक्रम निष्फल होगा? क्या 'माँ' के भाग्य मे सदा निराशा ही रहेगी? पराधीन भारत स्वाधीन होने के लिए उत्पन्न ही नही किया गया?

उसे अपने आस-पास बहती मानव-सरिता का भान ही नही रहा। दौड़ती हुई ट्रामें और गाड़ियाँ जैसे थी ही नहीं। उसे लगा कि

वह शंकाओं के सागर में डूब रहा था। अश्रद्धा ने उसे जकड़ लिया—उसके प्राण लेने के लिये तत्पर हो गई। पृथ्वी, भारत — यह सारा ब्रह्मांड उसे डगमगाता जान पड़ा।

भावनाहीन को अश्रद्धा के समान सुख नहीं, और भावनाशील को अश्रद्धा के समान कोई दु:ख नहीं। उसके लिये भावना ही जीवन है—उसमे निहित श्रद्धा ही उसे जीवन के साथ शृंखलाबद्ध करती है। इस श्रद्धा के नष्ट होते ही वह अंधा बन जाता है। जड़ हो जाता है—फिर उसे मृत के अतिरिक्त दूसरा रास्ता दिखाई नहीं देता। क्राइस्ट मृत्यु से भयभीत न हुआ, पर पिता के अविश्वास के ख्याल से वह दुखी रहने लगा। गाधीजी उसके स्पर्श का अनुभव करने से कठिन तपश्चर्या द्वारा प्राण त्यागने के लिए तैयार हो जाते है।

अश्रद्धा के संचार से घबराये हुए सुदर्शन का मस्तिष्क ठिकाने नहीं रहा। उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया। उसकी आंखे देख रही थी पर उसे कुछ दिखाई न देता था। परिचित रास्ते से उसके पैर उसे कांदावाडी ले गये। वह चाल की सीढियाँ चढा। उसके क्षुब्ध अंतर से निराशा की हाय—उसके प्राण साथ लेकर—बाहर निकलने की तैयारी करने लगी।

उसके पैर रुके, अंबालाल की कोठरी की देहली पर और टेबिल पर बैठी हुई धनी को उसने सूरत से प्रकाशित होनेवाले पत्र 'शक्ति' को पढते हुए देखा। उसकी गर्दन एक अद्भुत छटा से झुकी हुई थी, उसके मुख पर तेज—जैसे देवी हो ऐसा—दीप्त हो रहा था।

"धनी बहिन ! क्या कर रही हो ?"

"शक्ति, पढ रही हूँ।"

सुदर्शन थोड़ी देर खड़ा रहा, फिर जैसे उसके हृदय का तार टूट रहा हो इस प्रकार निराशाभरे स्वर में उसने पूछा, "धनी बहिन ! माँ स्वतंत्र होगी ?"

धनी ने ऊपर देखा तो सुदर्शन को घबराहट की दशा मे पाया। स्त्री-हृदय की स्वाभाविक समझ से उसने सुदर्शन को ओर सहानुभूति से देखा और उठकर पास आई।

"सदुभाई! क्या पूछ रहे हो? होगा क्या? हम 'माँ' को स्वतंत्र करेंगे।"

७

तिलक महाराज प्रकाश रूप मे केवल एक ही वस्तु मे विश्वास रखते थे—और वह थी राजनीति। निःशस्त्र भारतवासियो के स्वातन्त्र्य युद्ध मे प्रत्येक प्रकार से, प्रत्येक रीति से, प्रत्येक बात मे सरकार को परेशान करने मे ही उनकी नीति और राजनीतिज्ञता समाई हुई थी। इनसे परे उनका कोई सिद्धान्त न था।

१९०७ मे कांग्रेस नागपुर मे होनेवाली थी। नागपुर अर्थात् पूना का मुहल्ला—तभी था और कितने ही अशो मे आज भी है। खापरडे अर्थात् तिलक का सेनानी।

बंगाल का राष्ट्रवाद एकमात्र भावनामय था, पूना का राष्ट्रवाद संकुचित और व्यवहारशील था। राष्ट्रवाद को बंगीय भावना का स्वरूप मिला: लाल, पाल और बाल एक ही भावना की त्रिमूर्ति हो इस प्रकार उनकी पूजा आरंभ हुई; और कांग्रेस को इस त्रिमूर्ति के पूजक बनाये जाने का प्रयत्न शुरू हुआ और पूना की आज्ञा नागपुर ने सिर माथे पर रक्खी।

कलकत्ते मे पाल और सुरेन्द्रनाथ के बीच भारी विरोध हो गया था। नरमदल को समूल नष्ट करने के लिए पाल और अरविंद घोष ने निश्चय कर लिया था। विरोध में वैर का जन्म हुआ, द्वेष प्रकट होने लगा और 'वंदे मातरम्' पत्र आठ दिन में दो बार इस क्रोध की जलती हुई आग को देश मे फैलाने लगा।

नामदार जगमोहनलाल यह सब चिंताग्रस्त हृदय से देख रहे थे।

लन्हे लगता था कि राष्ट्रवाद प्रबल होता जा रहा था। लोग Nation—राष्ट्र, Liberty–स्वातन्त्र्य, और Independence–स्वाधीनता की जगह-जगह चर्चा करते रहते थे। अरविंद बाबू की भयानक लेखन-विद्वत्ता, राजनीतिज्ञता, अंग्रेजो के साथ सहचार, व्यवस्थित राजकीय प्रगति जैसे प्राचीन आदर्शों पर तलवार चलाती रहती थी और बायकाट, लोक-सत्ता, त्याग और विप्लव की प्रेरणा का प्रसार करती हुई दिखाई देती थी। उन्हे तिलक के प्रति अरुचि थी, विक्टोरिया-युग की नीति से अस्पष्ट-सी उनकी राजनीति को वह धिक्कारते थे। जिस प्रकार अज्ञानी और छोटी बुद्धि के आदमियो की मदद से नया सम्प्रदाय सभाओं को अपने पक्ष मे लाता था उसकी ओर वे तिरस्कार से देखते थे। उन्हें चारो ओर प्रलयकाल प्रवर्तित होता हुआ लगा।

पहले तो विलायत भारत के राजनैतिक आदर्शों को समझे ऐसी एक योजना उन्होंने गढ़ ली। पर इस समय ऐसा लगा कि वह योजना अमल में नही लाई जा सकती। देश मे अंग्रेजो के प्रति तिरस्कार बढ़ता गया, विलायत मे भारतवासियो के प्रति अविश्वास बढ़ता गया; फिर क्या हो? लेकिन इस समय महान् भय तो गरमदल का था। अंग्रेजो को मात देने से पहले इसके विनाश की आवश्यकता उनको दिखाई दी।

राजाबाई टावर के सामनेवाली गुफा मे भारतीय पंच—सर सिंह—की अध्यक्षता मे नरमदल बार-बार मिलता। इस सभा में नामदार जगमोहनलाल ने प्रथम नेता का खिताब प्राप्त किया था, पर नागपुर और कलकत्ते के वातावरण से सर फीरोजशाह भी चिंतातुर होने लगे। इसलिए उनकी सलाह या चेतावनी को योग्य मान दिया जाने लगा।

किसी प्रकार कांग्रेस को 'गरमदल' के हाथ में जाने से रोका जाय। यह सर फीरोजशाह ने निश्चय कर लिया। कांग्रेस जल्दी-जल्दी पास आने लगी। सर फीरोजशाह गरम दल की शक्ति में संदेह मानने लगे

पर उन्हें अपने प्रति और अपनी सर्वाधिकारिता के प्रति संपूर्ण विश्वास था। फ्रांस का चौदहवाँ लुई यह मानता था कि "मै राज्य हूँ", सर फीरोजशाह यह मानते थे कि "मै राष्ट्र हूँ" और इस राष्ट्र ने फरमान निकाला कि कांग्रेस नागपुर के बदले सूरत मे—बम्बई के पास होना चाहिये और गोखले सुषुप्त सूरत में जाकर राजनैतिक चेतना उत्पन्न करे और त्रिभुवनदास मालवीय सोलिसिटर का पद त्याग कर स्वागतकारिणी के अध्यक्ष बने। इस फ़रमान को आलइन्डिया कांग्रेस कमेटी ने स्वीकार कर लिया। बम्बई और सूरत के प्रतिष्ठित वर्ग ने सिर माथे रखा। सूरत मे दौड़ा-दौड़ होने लगी। फीरोजशाह ने डा० रासबिहारी घोष जैसे अप्रतिम धाराशास्त्री, विचारक और नेता को प्रमुख पद का निमंत्रण दिया।

इन फरमानो ने पूना, नागपुर और कलकत्ते मे हलचल पैदा कर दी। पिछली कांग्रेस द्वारा निश्चित किये हुए स्थान को एकमात्र स्थानिक मत से डरकर बदल देना खुदमुख्तारी की पराकाष्ठा लगी। १७८९ मे फ्रांस के राजा ने सार्वजनिक सभाओ पर पाबंदी लगा दी थी और उसका जो प्रभाव पडा था, कुछ-कुछ वैसा ही प्रभाव इन फरमानो का हुआ। गुफा मे का सिंह और उसकी सभा के सदस्य फूले नही समाये, बाहर खूनी विरोध की धमकियाँ बढ़ने लगी। जगमोहनलाल और उसके मित्र इस फरमान पर बलिहारी गये। अरविंद बाबू की कलम ने फ़ीरोजशाही फरमानो का तिरस्कार किया, हँसकर टाल दिया; राजनैनिक पत्रकारो के इस शिरोमणि ने अपने अग्रलेखों से उनको धमकाया, कार्टूनो से हँसी उड़ायी और सक्षिप्त टिप्पणियो मे अवज्ञा की। 'Pherozeshahı at Surat' (सूरत मे फीरोजशाही) 'Evey dog ıs a lion ın his street' (प्रत्येक कुत्ता अपनी गली मे शेर होता है), *'My will is law'* (मेरी इच्छा ही कानून है) ऐसे अनेक वाक्य—भव्य गर्जना से लेकर क्षुद्र हँसी तक—प्रत्येक रूप मे प्रतिदिन प्रकाशित हुए, और उत्साहित भारत उन्हें रट-रटकर प्रजा-जीवन

मे जहाँगीरी चलानेवाले के प्रति द्वेष भावना प्रदर्शित करने लगा। 'गरमदल' वालो ने मांडले से वापस आये हुए लाला लाजपतराय को प्रमुख पद पर बैठाने का निर्णय किया।

सर फ़ीरोजशाह को मीजी सूरत की राजनैतिक दुर्बलता में विश्वास था—सर्वाधिकारियो को अपने खास अनुयायियो मे होता है बिल्कुल वैसा ही। पर जूलियस सीजर की तरह वह भी भूल गये कि उनका जानी दुश्मन तो ब्रुटस की तरह उनके अनुयायिओ में से ही निकलेगा।

सूरत मे और खासकर गोपीपुरा मे गली-गली में, घर-घर में दोनो पक्ष ठहेरे। 'गरमदल' और 'नरमदल' ने स्थान-स्थान पर समरांगण रचा। नरमदली बाप के गरमदली बेटे ने बाप को त्याग दिया। गरम दल और नरम दल के भाई-भाई खाना खाते-खाते थाली और कटोरी से मारामारी करने लगे। चबूतरे पर बैठकर गप्पे मारनेवाली सहेलियो ने बोलचाल बंद कर दी। गरमदली बाप की बेटी को नरमदली पति ने पीहर जाने से रोक दिया। 'शक्ति' पत्र ने नरमदलियो को आदेश दिया— 'सुधरो या मरो।'

स्वाभाविक रीति से सुदर्शन और उसके मित्रो का फीरोजशाह के प्रति द्वेष बढ गया। राजाबाई टावर के सामने से जाते हुए सुदर्शन और अंबालाल की मुट्ठियाँ काल्पनिक कटार से अन्यायी के टुकडे-टुकडे कर डालने के लिए अधीर होने लगी। शिवलाल सराफ़ रात-दिन फ़ीरोज़शाह के जीवन की छोटी से छोटी बात की हँसी उड़ाने लगा। धनी पड़ोसी के घर में जाकर बिना पूछे एक कैलेंडर पर छपी हुई फीरोज़शाह की तस्वीर फाड़ आयी। यह बात मालूम होने पर चाल के प्रत्येक घर मे धनी की वाहवाही हुई और जिसका कैलेंडर फाड़ा गया था उसके यहाँ 'लाल, पाल और बाल' की तस्वीरो से सुशोभित दस कैलेंडर भेंट

के तौर पर भेजे गये। सुदर्शन की छाती बालिश्त भर फूल गई। कैसी थी उसकी जान आफ आर्क !

इस तूफानी वातावरण मे सुदर्शन के मंडल का कोई भी सदस्य योजना नही तैयार कर सका और सर्वसम्मति से योजनाएँ ३१ जनवरी, १९०८ के दिन मिलकर तय की जायेगी, यह निश्चय हुआ। समस्त देश सूरत की बाट अधीरता से देख रहा था। वहाँ देश की आतरिक व्यवस्था मे से जीहजूरी दूर होनेवाली थी, फिर अग्रेजो की जीहजूरी के विषय में विचार करने की फुरसत किसे हो ?

नानपरा मे केरशास्प का एक बड़ा-सा घर था, वही सब उतरें ऐसा निमंत्रण उसने दिया। लाइट ब्रिगेड जैसे आक्रमण करने के लिए तैयारी कर रही हो इस प्रकार सुदर्शन और उसके मित्र सूरत जाने के लिए तैयार हुए। सुदर्शन को केवल इतना ही दु.ख था कि धनी साथ नही जा सकती थी।

---

# सूरत कांग्रेस की तैयारी

१

२० दिसंबर १९०७ के दिन शाम को सूरत स्टेशन पर सुदर्शन, अंबालाल देसाई, मगन पंड्या और शिवलाल सराफ उतरे और गाड़ी किराये पर कर नानपुरा में गये।

सुदर्शन का हृदय कांग्रेस के लिए उत्साही था किन्तु उसका उत्साह उतना प्रबल न था जितना चाहिये। धनी बंबई में रह गई थी। पाठक ने ठंडे दिल से लिखा था कि वह नौकरी ढूंढने के काम में उलझ गया है, अतः सूरत नहीं आ सकता। जब देश पर संकट के बादल मँडरायें तो उसका प्रिय मित्र नौकरी खोजे!

धीरू शास्त्री गुरुकुल कांगड़ी देखने गया था और अभी वापस नहीं लौटा था। गिरिजाशंकर शुक्ल को पारेवड़ी संस्थान के ठाकुर ने बुलाया था, अतः वह भी नहीं आ सकता था। सनत्कुमार जोशी अपने अखाड़े के साथ बड़ौदे से पावागढ़ पहुँच गया था और अभी तक उसका कोई पता न था। इन सब की गैरहाज़िरी से सुदर्शन के हृदय को आघात पहुँचा। कांग्रेस की प्रवृत्ति इसके लिए पानीपत थी अवश्य परन्तु उसका छोटा-सा मंडल उसके लिए प्राणों से बढ़कर था। सब के साथ पत्र-व्यवहार रखकर सब के बीच एकता को चिरजीवी रखने का उसने जो भगीरथ प्रयत्न किया था वह जितना सफल होना चाहिये उतना होता दिखाई न देता था और ऐसी कांग्रेस के अवसर पर भी सब इकट्ठे न हुए यह बात इसके मन में खटकती रही।

फिर उसने अपनी योजना को तैयार करने के लिए सतत अध्ययन

तथा कठिन परिश्रम भी किया था, लेकिन दूसरे इस विषय मे क्या करते है वह उसकी समझ मे कुछ स्पष्ट नही आता था। ३१वी जनवरी पास आ रही थी और 'माँ' का भाग्य सफल होने की यह घड़ी इससे अधिक पीछे हटा दी जाय इसका विचार मात्र भी उसे असह्य था। यह अधीरता भी उसके उत्साह को प्रफुल्ल नही होने देती थी।

इन चारो मित्रो का ऐसा खयाल था, ज्योंही नानपरा आयेगा कि केरशास्प का घर—कौन जाने कैसे—तुरन्त ही दिखाई देगा और चबूतरे पर खड़े हुए आतुर केरशास्प को सब कूदकर अपनी बाँहो मे भर लेगे। रात के आठ बजे, अपरिचित अँधेरी गलियो मे, व्यूह जैसे नानपरे मे केरशास्प का घर खोजते हुए इन देशभक्तों की देशभक्ति और विजयोत्साह ठंडा होने लगा। वे थके हुए भूखे अपरिचित गाँव मे थे। उन्हें मालूम हुआ कि इस नानपरा मे एक हजार पारसियो घर और सत्रह के लगभग कुछ केरशास्प और सोलह केरशास्पजी फिरोजशाह थे। नौ बजे रात को ही आधीरात समझनेवाले कृपण पारसी कब के अपनी खिडकी दरवाजे बंदकर बिस्तरो पर पड़ रहे थे। किराये की गाड़ीवाला, गली-गली भटकने से थककर इन सबको सुनाते हुए सूरती सड़ाकों से भरपूर स्वागत कर रहा था।

रात के पौने दस बजे के लगभग देशभक्त सुलभ तपस्या करते हुए इन मित्रो को अपनी भग्न आशा का फिर से सधान करने का कारण मिला। मुहल्ले के किनारेवाला एक बड़ा मकान केरशास्प का है, यह खबर मिली और पारसी के घर के चबूतरे पर हुक्का पीते पाटीदारो को देखकर, यही राष्ट्र-सेवको के ठहरने की जगह होगी, ऐसी कुछ-कुछ आशा हुई। मगन पंड्या ने सभ्यता को ताक पर रखकर किराये की गाडी की खिड़की मे से बुलंद आवाज से पुकारा, "केरशास्प फीरोजशाह !"

"कौन है ?" चबूतरे पर बैठे हुए एक जवान 'बापा भायडा' ने मुँह से हुक्के की नली निकालते हुए कहा।

"केरशास्पजी सेठ है ?"

"बबई गये है।"

शिवलाल सराफ की सौतेली माँ को गोपीपुरा मे जगाने की किसी को हिम्मत न होती थी, इसलिए केरशास्प का घर न मिले तो अपरिचित सूरत मे रात कहाँ बितायी जाय इसका निर्णय पहले से वे न कर सके थे। इसलिए चारो बिना बोले हुए निर्णय किया और गाडी से उतरे ।

मगन पड्या हिम्मत से चबूतरे पर चढा, "केरशास्प सेठ कब आयेगे !"

"कौन जाने ?" दरवाजे के पास एक छोटी-सी खाट पर सोये हुए एक सज्जन ने कहा। "नारायणभाई !" कहकर उसने आवाज दी। अंबालाल ने जैसे-तैसे मनमानी गालियाँ खाकर गाडी का किराया चुकता किया और इन लोगो ने अपने हाथ से ही ट्रंक उठाकर चबूतरे पर रख दिये और घबराते हुए अदर घुसे, यह केरशास्प का घर—कौन से केरशास्प का—इसमे जगह है या नही—ये सब प्रश्न उनके हृदय में कूद रहे थे।

मगन पंडया शुद्ध देहाती था। उसे प्रत्येक कमरे मे बैठे हुए, पड़े हुए, सोये हुए लोगो की बातो में, बीड़ी के धुंएँ मे और हुक्के की गड-गडाहट में अपने बपौती के गाँव के प्रोत्साहक वातावरण की प्रेरणा हुई। प्रत्येक को "क्यो भाई साहब कैसे हो ! कब आये ?" कहकर वह प्रत्येक कमरे के सामने हाथ मे ट्रक और बगल मे बिस्तरा लिये फिरने लगा और इसके तीन मित्र जैसे कोई महाप्रतापी वीर नायक के पीछे मरणोत्सुक वीर सैनिक चले इस प्रकार हाथ में पेटी और बगल मे बिछौना लेकर चलने लगे।

प्रत्येक कमरे मे प्रत्येक मजिल पर ये देशभक्त नर्मदा से साबर-मती तक के भिन्न-भिन्न गाँव की बोली बोलते—अच्छी लगे या न लगे—वही पढ़कर कांग्रेस की गप्पे मारते थे, और कौन से हक से

कौन वहाँ था, इसकी पूरी जानकारी किसी को हो ऐसा न लगता था। बीच के चौक मे भोजन हो रहा था और तीन रसोइये पत्तलो पर पत्तले रखकर काग्रेसवालो को दाल और भात परोस रहे थे। यह घर इनके केरशास्प का ही हो ऐसा लगा। सुदर्शन और उसके मित्र दूसरी मजिल पर गये, वहाँ छज्जेवाली एक कोठरी में तीन जने बैठे थे और सामान आठ आदमी का पड़ा था। सामान अभी खुला नही था। क्योकि उसके मालिक आखिरी गाड़ी से आये थे और जीमने गये हों ऐसा लगता था।

उद्धतपन से मगन पंड्या ने पैर से एक आदमी का सामान खिसकाकर पेटी और बिस्तरा रखा और संकोची सदुभाई से अवसर न चूकना चाहिये, इस विचार से दूसरे का सामान खिसकाकर कहा, "सदुभाई! रखो यही। यह कोठरी हमारी ही है।"

सुदर्शन ने वैसा ही किया और अंबालाल देसाई तथा शिवलाल भी बिना पूछे जगह कर, बिस्तरे बिछाकर कपड़े निकालने बैठ गये।

खिसकाये गये सामान के मालिक धोती से मुँह पोछते हुए आने लगे और इन चारों को मालिकी हक से कब्जा किये हुए देखकर, अपना सामान लेकर, केरशास्प के विशाल घर का कोई खाली कोना खोजने के लिए बाहर चल दिये।

"अंबालाल!" मगन पंड्या ने कहा, "भोजन भी ऐसे ही करना पडेगा।"

"अरे चलो भी!" कहकर चारो कोठरी से बाहर निकले। पंड्या ने अपनी पेटी का ताला निकालकर कोठरी में लगाया और नीचे उतरा।

नीचे उतरकर भोजन किया और प्रत्येक कोठरी मे अपने परिचितो को खोजने निकले। दूसरी मंजिल के एक कमरे मे से आवाज आई, "अरे पंड्या काका! सदुभाई!"

"कौन नारायण पटेल ?" पंड्या ने आवाज़ दी, "कहाँ छिपे हो भाई ?"

कमरे मे खिड़की के आगे खाट पर पड़ा-पड़ा नारायण पटेल हुक्का पी रहा था और एक आदमी उसके पैर दवा रहा था।

"इधर आओ, इधर !" कहकर दवाये जाते हुए पैर की धोती घुटनो से नीचे उतारकर नारायण पटेल ने आने के लिए कहा और मुह से धुएँ का गुब्बार निकाला, "अरे कहाँ थे अब तक ?"

"यहाँ तो घर खोजते-खोजते प्राण निकल गये, और केरशास्प ने यह कर क्या रखा है ?" शिवलाल सराफ ने कहा, "ऐसा मालूम होता तो मैं अपनी माँ के यहाँ ही उतरता।"

"खबरदार !" नारायण पटेल ने कहा, "फ्रेंच विप्लव के समय ऐसी बात कही तो बिजली के खभे पर लटका दिये जाओगे। Mr. Aristrocrat—यही प्रजा—यही demos—जिसके लिए हम युद्ध कर रहे है वह; नपोलियन जिसकी तलवार थी वह !"

"लेकिन केरशास्प क्या हो गया ?" सुदर्शन ने पूछा।

"पाँच दिन पहले मुझे एक तार मिला था।" नारायण पटेल ने पास वाले को हुक्का देते हुए कहा, "come with all friends. Housesc at Nanpura ready, (सब मित्रो के साथ आना, नानपरा का घर तैयार है।"

"इसलिए ये सब तुम्हारे मित्र है। केरशास्प उनको पहचानता नही।"

"नही।" गर्व से नारायण पटेल ने कहा, "मैंने अपने जितने मित्र थे उन सबको आने के लिए लिख दिया। वे अपने मित्र ले आये। सारा घर भर गया। प्रमुख कोई बेकार के लिए होता है। सदुभाई ? Secret Societier—गुप्त मंडल— ऐसे ही शुरू होते है।"

सुदर्शन क्रोध से देखता रहा, "ये सब क्या तुम्हारे गुप्त मंडल के सदस्य हैं?"

"हुक्का पीना बंद करो, नही तो सब में दुर्गन्ध आने लगेगी।" कटाक्ष से अंबालाल देसाई ने कहा।

"बिना हुक्के के कोई रह सकता है?" नारायणभाई ने जवाब दिया।

सुदर्शन के अंतर मे अँधेरा छा गया था। कितने ही आये न थे, केरशास्प—प्रमुख—का पता न था, और यह हुक्का गुडगुड़ाने वाला नारायणभाई गुप्त मंडल चलायेगा! उसने तो कठोर, गभीर, एकनिष्ठ सदस्यो का संघ स्थापित करने की आशा रखी थी। यहाँ यह हाल! उसे अपने प्रति तिरस्कार हुआ। क्या इन लोगो का अपराध था? नही, यह अपराध मेरा ही था। मुझमे इतना आध्यात्मिक बल नहीं था कि इन सब को एक नवीन चेतना से प्रेरित कर देता। बुद्ध ने कैसे किया? शिवाजी ने कैसे किया? क्या उसे माँ की मदद नही थी? ऐसे ही विचारो में डूबे रहकर उसने किसी तरह रात बिता दी।

२

सुबह केरशास्प आया। नारायणभाई की सर्वव्यापी यजमान-वृत्ति से अपना घर भरा हुआ देखकर उसके गुस्से का पार नहीं रहा। पर उसका स्वभाव नम्र था। उसकी यजमानवृत्ति की भावना विचित्र थी, इसलिए उसने सबके सम्मान की व्यवस्था करना आरंभ किया।

जिस कोठरी में मगन पड्या ने डेरा डाला था उसके अतिरिक्त बाकी सारा घर उसके मेहमानों को दे दिया गया। इसी प्रकार उसने अपने मित्रो के लिए सब प्रकार की सुविधा कर दी और एक ख़ास आदमी उनको दे दिया। अपने मित्र-मंडल के लिए उसने भोजन का प्रबंध भी अलग किया। किन्तु निराशा मे डूबे हुए सुदर्शन को

कुछ अच्छा नही लगा। चारो ओर आदमियो से भरे हुए घर मे काम क्या हो, बाते क्या हो और योजनाये क्या गढी जाये? काग्रेस की चहल-पहल मे मंडल की बाते सब भूल गये से लगते थे।

सवेरे सब सूरत शहर की शोभा का निरीक्षण करने निकले। चीटियो की चाल से चलते हुए—लेकिन चीटियो की सी व्यवस्थित रीति के बिना ही—परदेशियों से रास्ता पूछते जाते थे। किसी-किसी स्थान पर 'वंदे मातरम्' 'तिलक महाराज की जय' 'लाल-पाल-बाल की जय' के घोष हो रहे थे।

हरिपुरा मे घी-कांटा की वाडी मे 'गरमदल' का निवास-स्थान था, वहाँ सुबह, दोपहर और शाम को उस पक्ष की सभा हुआ ही करती थी। रात को बालाजी के चकले पर सभा होती और वहाँ पर लाजपतराय, अजीतसिह, तिलक, खापरडे और अरविंद घोष गरजते। इन सभाओ मे इन मित्रो ने जाना आरंभ कर दिया। एक चित से सुदर्शन इन नेताओ को सुनता और उनके मुख से झरता हुआ प्रेरणामृत पीता। लाजपतराय के शान्त वचन, अजीतसिह के ज्वाला सदृश जलते हुए शब्द, तिलक के व्यंग्य और आक्षेप, खापरडे की वीभत्स टिप्पणियों, और अरविंद का अतरवेधी उद्‌गारो से भरा हुआ वाग्पाटव उसे विभिन्न भावो के झूलो मे झुलाया करता। उसके हृदय की व्यथा जरा दूर हुई। उसमें उत्साह जाग्रत हुआ। उसे यह काग्रेस ही स्वातत्र्य युद्ध के सदृश दिखाई दी। इस पर देश के उद्धार का भार है ऐसा विश्वास उसे हो गया। धीरे-धीरे वह अपने मडल की बात भूल गया और कांग्रेस मे रमने लगा।

शिवलाल सराफ सूरत के कितने ही नेताओ को पहचानता था। डाक्टर मोहननाथ दीक्षित के साथ भी उसने कुछ जान-पहचान निकाल ली थी, इसलिए वह स्वयसेवक हो गया। वह मात्र रात को सोने के लिए नानपरा में आता था और नरमदल की बहुत-सी गप्पें

ले आता। लाइन्स के बँगलो मे उतरे हुए नरमदल के महारथी, सवेरे, दोपहर और सध्या को मशविरा करते और हरीपुरा के गरम दली नेताओ के साथ मसलत चला करती। नरमदली नेताओं की घबराहट का पार न था, यह बात उड रही थी। नामदार जगमोहन-लाल रात-दिन काम कर रहे थे यह भी खबर मिली थी।

केरशास्प के घर के प्रत्येक कमरे मे सभा होती और उनमें हर बात को चर्चा होती। गरमदली हज्जामो को डेलिगेट्स के रूप मे ले आये थे, उसमें से कितने ही अपना धधा कर सूरत से पैसा कमा कर ले जाने की हिम्मत रखते थे, और उनमें से एक ने अपने उस्तरे से एक नरमदली वैरिस्टर की गर्दन धड़ से अलग करने की धमकी दी थी। इस गप्प ने तो एक दिन केरशास्प के सारे घर को हँसी से भर दिया था। 'गरमदली' प्रतिनिधि कारीगर के हाथ से 'नरमदल' वाले की गर्दन उडे इससे अधिक गौरवशाली देशभक्ति का नमूना क्या हो सकता था ?.

केरशास्प के घर मे थोड़े से 'नरमदली' थे वे अपने पक्ष की बाते चलाते और उनके साथ वाद-विवाद रात-दिन चला ही करता। सारा घर एक समरांगण हो गया।

२४ तारीख को 'नरमदल' और 'गरमदल' के बीच चली हुई बात-चीत का समाचार आया। फीरोजशाह ने कलकत्ता कांग्रेस के चारो प्रस्ताव गोखले के पास से वापस ले लिये।

स्वराज्य, स्वदेशी, बायकाट और राष्ट्रीय शिक्षा इन चारो बातों मे फीरोजशाह कांग्रेस को सुधारने बैठे ! फ़ीरोज़शाह कौन होता है ? सुदर्शन की आँखो मे खून उतर आया। किसी ने फीरोजशाही सूत्र का उच्चारण किया "राष्ट्रीय शिक्षा कैसी, यह मेरी समझ में नहीं आया।' अंबालाल देसाई ने इसके विरुद्ध प्रश्न पूछा, "बेगारियो का बादशाह शिक्षा क्या है यह कभी समझ सकता है ?" किसी ने बात चलायी कि फीरोजशाह बायकाट के विरुद्ध है। "हाँ भाई !"

शिवलाल ने कहा, "उसे मखमल का कालर फिर कहाँ से मिलेगा ?"

नारायणभाई पटेल, अंबालाल, मगन पंड्या और सुदर्शन चौबीस की शाम को हरिपुरा गये। मोहन पारेख वहीं ठहरा था, क्योंकि वह अरविंद घोष का अंगरक्षक था और हर समय इसी काम मे फंसा रहता था।

नारायणभाई पटेल १९०७ मे डा० परांजपे के पास एम० ए० की गणित की शिक्षा के लिए पूना रहा था और वहाँ रहकर गणित से अधिक राजनैतिक आदोलन मे ध्यान देना सीखा था। पराजपे तिलक के भक्त थे और केसरी के दरबार के सब दरबारियो के साथ उन्होने दोस्ती गाँठ ली थी। दाखिल होते ही, हो, 'हो कसा काय, हो, हो, कुठे चालले रावसाहब, हो-हो पटेल साहब बरा हाय ना ?' की हुंकारो से बधाई देते हुए और लेते हुए, मित्रो को साथ रखकर वह आगे बढे।

सभा मे अरविंद घोष प्रमुख स्थान पर थे। बड़ौदा छोड़ने के बाद सुदर्शन ने उन्हे फिर नही देखा था। इस समय छोटी-सी धोती और शाल मे खुले सिर बैठे हुए प्रमुख को अपने पुराने, विलायती पोशाक में सजे हुए प्रोफेसर को पहचानने मे ज़रा भी देर नहीं लगी।

तिलक बोले—चार प्रस्तावो पर कलकत्ते के प्रस्ताव कैसे बदले जायँ ? और बदलने वाला कौन ? यदि 'नरमदल' न माने तो रास-बिहारी घोष को प्रमुख ही नही चुनने दिया जाय। नही, नही, कभी नही। क्या लाला लाजपतराय का त्याग कम था ? वह क्यो नही ? "तिलक महाराज की जय" नारायणभाई ने जोर से जय-घोष किया। सारी सभा गूँज उठी। सभा ने प्रतिशब्द किया, "तिलक महाराज की जय।"

फिर अरविंद बाबू बोले। उनकी आँखो मे भविष्यवेत्ता की चमक थी। उनके शब्दो में रुद्र के शासन के समान निश्चलता थी। हमने अपना

र्जवन सर्वस्व दे दिया है; दिसवर की छुट्टियों मे मौज उड़ाने के लिए ग्राये हुए की क्या हिम्मत थी कि हमारा कार्यक्रम रोके ? सुदर्शन ने देव-सदृश प्रोफेसर को सुना ग्रोर सर्वस्व अर्पण करने की प्रेरणा उसके हृदय मे हुई।

वहाँ से रात को सब लोग बालाजी के टीले पर गये। अरविंद बाबू के भाषण ने उनके हृदय खोल दिये। क्रोध मे उबले हुए विभक्त बगाल से उनकी जननी काग्रेस विश्वासघात करेगी ? मातृहीन असहाय फिर वह कहाँ जायेगा ? बगाल के प्रश्नो—स्वदेशी, बायकाट ग्रार राष्ट्रीय शिक्षा को राष्ट्रीय प्रश्न बनाने की उन्होने प्रार्थना की। अरविंद की ग्रावाज मे ग्राँसू थे। उनके शब्दो मे ग्राक्रद की प्रतिध्वनि थी। सुदर्शन की ग्राँख भर ग्राई। जब उसके प्रोफेसर ने याचना की, "हमारे स्वदेश में हमको—बगालियो को—परदेशी मत बनाग्रो——" तब उसे रोमाच हो ग्राया।

देश-प्रेम की ग्राग मे जलते हुए वे ग्राधी रात को शहर मे—नानपरा मे ग्राये। मोहन पारेख हमेशा हरिपुरा मे अरविंद बाबू के पास रहता था, इस समय यहाँ सोने के लिए ग्राया था। उसने समाचार कहा, "ढाका के कलक्टर एलन को बंगालियो ने पिस्तौल से मार दिया।" जैसे बम्ब पड़ा हो, पहले तो सब चौंके, फिर कितने ही नाचने लगे ग्रौर कितने ही क्या परिणाम होगा इसकी चिंता करने लगे।

"सदुभाई!" अबालाल ने दुखी होकर कहा, "ये बंगाली हमसे ग्रागे ही रहेगे!" सुदर्शन थोडी देर विचार करता हुग्रा चुप रहा ग्रौर फिर बोला, "उतावला सो बावला, धीरा सो गभीरा।"

ग्राधी रात के बाद दो बजे जब ये सब सो गये तब मोहन पारेख ने सुदर्शन से धीमे से कहा, "कल सवेरे मुझे लाला लाजपतराय के साथ स्टेशन पर जाना है। तुम्हे चलना है?"

"जरूर मुझे जगा लेना।" कहकर सुदर्शन ने करवट बदली।

३

हठवा लाइन्स में नौरोजी वकील के बंगले मे सर फ़ीरोज़शाह मेहता ठहरे हुए थे। नामदार जगमोहनलाल भी पासवाले बंगले में ही उतरे थे और सारा वक्त फीरोज़शाह के साथ ही विताते थे।

व्यवस्थित आंदोलन के सब शस्त्रों के गर्व मे फीरोज़शाह को 'गरमदल' की सूचनाएँ हास्यास्पद लगी। जैसे वह पार्लमेन्ट के एक सदस्य हो इस प्रकार सपूर्ण आंदोलन का मूल्यांकन वह विलायत की पार्लमेन्ट के दृष्टिकोण की कसौटी पर चढाकर देखते थे। कनाडा या आस्ट्रेलिया जैसा स्वराज्य भला कही यहाँ शक्य है? कोई दे सकता है? स्वदेशी से कुछ हो सकता है? सब पहिन सकें इतना कपडा कौन बनायेगा? और सस्ता परदेशी कपडा छोडकर भला कोई स्वदेशी मँहगा कपड़ा पहन सकता है? और बायकाट कैसी मूर्खता! उन्होने आयरिश आंदोलन देखा था, पार्वल से साक्षात्कार हुआ था। उसकी प्रशंसा भी की थी पर बायकाट अर्थात् विरोध—विरोध अर्थात् अराजकता—अराजकता अर्थात् विनाश। जो प्रवृत्ति आयरलैंड में विजयी न हो सकी वह अशक्त, नि शस्त्र हिन्द मे होगी? और राष्ट्रीय शिक्षा—इसका अर्थ क्या है? इसका तरीका क्या है? इसकी व्याख्या क्या है? इतने वर्ष की मेहनत से बबई यूनिवर्सिटी ने जिस शिक्षा की नीव डाली वह गलत और राजकीय आदोलन के अँधेरे में स्थापित किये गये राष्ट्रीय कालेज है? Absurd!' पचीसवी दिसम्बर को सवेरे फीरोज़शाह बड़बड़ायें—मूँछो पर धीरे-धीरे ताव देते हुए।

इतने मे उनका बाय आया, "गोखले साहब और नामदार जगमोहनलाल आये है।"

"बुलाओ।" फीरोज़शाह ने आज्ञा दी।

गोपालकृष्ण गोखले का मुख चिंतातुर दिखाई दे रहा था। नाम-दार जगमोहनलाल तो हमेशा ही चिंताग्रस्त रहते थे।

"चिमनलाल कहाँ है?"

"पारेख और वह स्टेशन पर सीधे जानेवाले है।" जगमोहनलाल ने कहा।

"मुझे ज़रा देर लगेगी।" फीरोजशाह ने कहा, "तुम चलो।"

गोखले के मुख पर ज़रा हँसी आई। फीरोजशाह को तैयार होने मे हमेशा देर लगती थी।

"मैंने ऐसा सुना है कि लाजपतराय कुछ समझौते की बात लेकर आनेवाले है।"

"इस समय समझौते की बात नही हो सकती।" फीरोज़शाह के मुख पर प्रोत्साहक हास्य छा गया। "फिर हम Subjects Committee (विषय निर्धारिणि समिति) में समझौता किया करेंगे। गोखले! इन लोगो को constitutional तरीके से काम लेना सिखाना चाहिए। तब इनके साथ विप्लववादी भी ठीक हो जायेगें।"

"लेकिन कुछ योजना आये भी?"

"अभी सारा दिन पड़ा है। जाओ!" कहकर उन्होने गोखले और जगमोहनलाल को विदा किया।

यह बातचीत अधखुले दरवाजे से एक स्वयंसेवक सुन रहा था, उसकी आँखे फीरोज़शाह की बातो से चमक उठी। वह—शिवलाल सर्राफ—गोखले और जगमोहनलाल की बग्घी पर कोचमैन के साथ चढ बैठा और बग्घी स्टेशन गई।

फीरोज़शाह ने अपनी तैयारी चालू रखी। बाइस वर्ष तक उहोंने कांग्रेस को अपनी तर्जनी पर नचाया और अनेक प्रश्नों का निर्णय किया था। अपनी राजनीतिज्ञता, बहादुरी, वाक्पटुता और दुर्जय व्यक्तित्व से उन्होने अनेको सभाएँ जीती थी। सूरत उनकी

थी, मालवीय उनके थे, गोखले, पारेख, चिमनलाल, जगमोहनलाल इत्यादि नेता चारो ओर काम कर रहे थे। फिर चिन्ता की क्या बात थी?

और उनकी विचारसरणी क्या गलत थी? अंग्रेजी साम्राज्य जैसी सबल सत्ता को डराने से कुछ हो जाय ऐसी आशा न थी। साम्राज्य का मूल एक ही था — स्वातंत्र्य प्रेम, व्यवस्थित आंदोलन से उस प्रेम को प्रभावित करने का कांग्रेस एक महान् कार्य कर रही थी— "Broadening down from precedent to precedent के मार्ग से। इस बात को ये छोटी बुद्धि के 'गरमदली' रोकने के लिए तैयार हुए थे और उनको सीधा करने के लिए व्यवस्थात्मक नियम ही एक रास्ता था।

उन्होंने कपड़े पहनना आरम्भ किया।

आठ बजे कांग्रेस स्पेशल में कलकत्ते से डॉ० रासबिहारी घोष आनेवाले थे। स्टेशन पर भीड़ का पार न था। चिंतातुर नेता क्या हो रहा है, यह जानने के लिए डेलिगेट, उत्साही वालंटियर और चमकते दुपट्टे तथा भड़कदार अंगरखों में सुशोभित सूरत के नागरिक वहाँ इकट्ठे हुए थे।

गोखले और जगमोहनलाल के पीछे उनकी छाया के समान शिवलाल सराफ सब से आगे आया। प्लेटफार्म पर बीच में स्वयं-सेवक द्वारा रखी हुई खुली जगह में नेता लोग खड़े थे।

शिवलाल ने चारो ओर दृष्टि दौडाई। मालवीय, चिमनलाल और पारेख एक ओर थे। थोड़ी दूर लाजपतराय सादगी और सरलता के अवतार जैसे खडे थे। उनके पीछे थोडे से कागज हाथ में लेकर खड़े हुए मोहन पारेख और सुदर्शन को उसने देखा। सँपोलिये की तरह भीड में सरकता हुआ शिवलाल वहाँ गया और मित्रो के कान में कहा, "कुछ हो नही सकता, बादशाह का हुक्म हो गया है।"

मोहन पारेख कृतनिश्चय विप्लववादी की शाति से हँसा।

इतने मे लाजपतराय सुदर्शन की ओर मुड़े, "ज़रा मि० गोखले से कहना कि मुझसे मिल जायँ।" सुदर्शन दौड़कर गोखले को बुला लाया। गोखले मन्द-मन्द मुस्काते हुए आये।

"Good Morning मि० लाजपतराय! बताइये क्या है?"

"कल रात मै तिलक इत्यादि से भी मिला था।" अत्यंत गभीरता से लाजपतराय ने कहा, "पाँच ये लोग और पाँच तुम मिलकर प्रस्तावो का निर्णय कर दे तो फिर इन लोगो को कोई आपत्ति नही होगी।"

"यह कैसे हो सकता है?" गोखले ने दयनीय चेहरे से पूछा, "प्रस्तावो का फैसला तो विषय-समिति करेगी न? Cart befote the horse कैसे हो सकता है!"

"हम लोग निश्चय करने के लिए तैयार होंगे तो विषय-समिति मना थोड़े ही कर देगी!"

"यह कैसे कहा जा सकता है! सोचूँगा। अच्छा, मै फ़ीरोजशाह से पूछ लूँगा।"

लाजपतराय ने कन्धे उचकाये और कांग्रेस स्पेशल का सिग्नल हुआ।

"अच्छा हुआ इसे फटकार दिया।" मोहन पारेख ने सुदर्शद के कान मे कहा, "यह बहुत दिनो से अपनी योजनाओ पर ठंडा पानी उँडेला करता था।"

स्टेशन पर इकट्ठे हुए शिक्षितो ने 'वन्दे मातरम्' का जयघोप किया और कांग्रेस स्पेशल स्टेशन पर आई। सब दौडे। लोगो के धक्कम्‌धक्के से ट्रेन के नीचे नेताओ की आहुति हो जाती, लेकिन स्वयसेवको ने जैसे-तैसे उन्हे रोका। चारो ओर उत्साह फैल रहा था। किसी ने रूमाल तो किसी ने दुपट्टे फहराये, किसी ने 'रासविहारी की जय' बोली तो कुछ लोगो ने 'शेम शेम' की आवाज लगाई और ट्रेन मे से

रासबिहारी घोष बाहर आये। उनके साथ सुरेन्द्रनाथ, डा० रुथर-फोर्ड, नेविन्सन, मोतीलाल घोष और अपूर्व यूरोपीय ठाठ में पंडित मोतीलाल नेहरू थे ... और टिकट के दरवाजे की तरफ से आवाजे सुनाई दी 'वंदे मातरम्' "कोकस की पी—शेम "फीरोज-शाह की जय' के मिश्रित उच्चारणो से स्वागत कराते हुए हँसते हुए चमकते हुए फीरोजशाह स्टेशन पर आये। वालंटियरो ने राजमार्ग बनाया और जैसे स्वदेश का सम्राट् परदेशी मेहमान को लेने आया हो इस प्रकार फीरोजशाह ने रासबिहारी का स्वागत किया। फीरोज-शाह देर में आये—अभिमान से अपनी सत्ता दर्शाने के लिए—इस ख्याल ने वहाँ आये हुए विप्लववादियो के हृदय मे जहर घोल दिया।

चारो तरफ़ डके बजे। प्रमुख के आगमन की सूचना हुई। मार्ग-पर ध्वजा-पताकाओ ने विजय फहराई। हार और फूलो की वर्षा से प्रमुख की गाड़ी भर गई। सूरत की सड़को की खिड़कियों से उत्साह और आनंद दिखाई दिया। रासबिहारी की लोकप्रियता में किसी को सदेह नही था। यह उत्साह देखते हुए हरिपुरा क्या कर सकता था ? जगमोहनलाल की चिंता अदृष्ट हो गई। फीरोजशाह ठीक थे। 'गरमदल तो नाम का ही था, उसकी लोकप्रियता एक मात्र विद्यार्थियो में ही थी ; उनके व्यक्तित्व का कोई हिसाब न था।

"हम सब आज शाम को मिले।" शिवलाल ने नामदार गोखले को गाड़ी पर चढ़ते हुए, लाजपतराय के पीछे चलते हुए-मोहन पारेख से कहा।

"साडे सात बजे।" पारेख ने जवाब दिया।

४

शाम को सवा सात बजे केरशास्प के यहाँ अंबालाल देसाई केरशास्प और मगन पंड्या, मुर्मुरे, सेव और भजियो की दावत

जमीन पर बैठे हुए उडा रहे थे। साधारणतया केराशास्प और पंड्या तो घर ही बैठे रहते थे। अंबालाल के पैर में मोच आ गई थी।

कोई धबधब करता हुआ जीने पर चढा और नारायणपटेल, कछोटा मारकर, खुली हुई अपनी थौंद के गौरव का भान कराते हुए हाथ मे डडा लेकर—जैसे छोटा रूपवाला भालू हो आया।

"मेरे लिए भी कुछ रखा है क्या ?" सेव, मुमुंरो की थाली की ओर देखते हुए उसने पूछा।

"बहुत है।" केरशास्प बोला।

नारायणभाई पसरकर बैठ गया, "आज तो सारे कैम्प मे हो आया। नागपुर, पूना और गुजरात सब पर रंग चढ़ाया है। साले नरम-दलवालो के बारह बजा दिये।"

"केरशास्प ने जरा मजाक में पूछा, "अच्छा, यह बात ?"

"अरे हाँ ! और महाराष्ट्रीय डेलिगेटों के आगे हमारी सीटें है और दूसरी पंक्ति में अपने सब लोगो के लिए जगह कर आया हूँ। गुजरातियो को बिल्कुल पीछे रखा है।"

"यह ठीक किया।" मगन पड्या ने कहा।

"क्यो तुम्हे क्या करना है ?"

"आगे तिलक महाराज बैठेंगे और पीछे मै। केलकर दादा भी आगे ही है। मेरा तो पान खा-खाकर मुँह आ गया।"

"क्यो ?"

"पान खाये बिना दक्षिणियो से साहचर्य हो ही नही सकता।"

"यह कौन ? सदुभाई है क्या ?"

"कैसे हो भाई ?" मोहन पारेख का शरीर जीने पर दिखाई दिया, केरशास्प ने पूछा।

मोहन पारेख का मुख निराशा से बंद हो गया था। सुदर्शन गुस्से में हो ऐसा दिखाई दिया। दोनो आकर बैठे।

"क्या है ? ऐसे क्यों हो रहे हो जैसे अभी मुर्दा फूंककर आये हो !" नारायण पटेल ने मुमूरो की फंकी मारते हुए पूछा।

"गरमदल खतम हो गया।" मोहन पारेख ने निश्वासें छोड़ते हुए कहा।

"फ़ीरोजशाह के अनुयायी बहुत होशियार है। तिलक को इतना दूर रखा कि बेचारा मारे घबराहट के मरा जा रहा है।" सुदर्शन ने कहना आरंभ किया, "और आज सवेरे इस बात का विश्वास हो गया कि गरमदलवाले गिने-चुने ही है।"

"कौन कहता है ?" नारायणभाई ने जोर से पूछा।

"कौन क्या कहता ?" मोहन पारेख बोला, "खापरडे और केलकर ने सात बार हिसाब लगाया। अब तो इन लोगो की किसी भी तरह आबरू रह जाय ऐसे समाधान की जरूरत है। इस समय तो सब बिल्कुल निराश हो बैठे है।"

"तो अब ?" केरशास्प ने पूछा।

"अब क्या ? कोई समाधान का मार्ग खोज रहे है !" सुदर्शन ने कहा।

"तो जाकर फीरोजशाह से मिला जाय।" केरशास्प ने कहा।

"यह उसी की तो उस्तादी है। वह तिलक से मिलता नही। दूसरे को माथे पर हाथ रखने नही देता। रास्ता चलनेवाला बादशाह के दरवाजे पर आसन जमा दे ऐसी दशा तिलक और खापरडे की हो गई।"

"ओत्तेरी की !" मगन पंड्या ने कहा।

"अरविंद बाबू क्या कर रहे है !" केरशास्प ने पूछा।

"क्या करें !" मोहन पारेख ने कहा, "वह तो एकमात्र इतना ही कहते है कि कोई नही होगा तो मैं अकेला खड़ा होकर विरोध करूँगा। उससे कुछ हो सकता है !"

"तब एक दूसरा रास्ता है।" केरशास्प ने कहा।

"क्या !" सब बोल उठे।

"किसी दूसरे को बोलने ही न दिया जाय।" कहकर केरशास्प ने जाँघ पर हाथ मारा, "नारायणभाई यह काम तुम्हारा। तुम अपने सवा सौ भाईबन्धुओं को सारे मंडप में बाँट दो और नागपुर तथा महाराष्ट्र कैम्प में संदेशा पहुँचा दो कि अपने पक्ष के सिवाय किसी दूसरे को बोलने ही न दिया जाय।"

"शाबाश—शाबाश!" कहकर नारायणभाई कूदा, "यह तो एक सेकंड का काम है, बेकार झख मारते हैं ये लोग। शिवाजी महाराज की जय!"

"अरे भाई!" केरशास्प ने हँसकर कहा, "कांग्रेस तो कल मिलेगी।"

"लेकिन मुझे तो डर लगता है कि कहीं तिलक और खापरडे इतने में मान न जायें।"

"अरविंद बाबू किसी तरह नहीं मान सकते।" मोहन पारेख ने जवाब दिया, "पर केरशास्प की बात सच्ची है।"

"आ सकता हूँ क्या?" शिवलाल सराफ का हँसता हुआ चेहरा जीने पर दिखाई दिया।

"आओ आओ, तुम्हारी क्या खबर है?"

"ठहरो, कहता हूँ।" कहकर शिवलाल ने थोड़े से मुर्मुरे फाँके।

सब चुपचाप देखते रहे। "ये सब तो बड़े जबरे हैं भाई।"

"क्यों?" केरशास्प ने पूछा।

"इस समय मस्कती के बँगले पर सब इकट्ठे हुए थे।"

"कौन-कौन?" अंबालाल, जो अब तक चुपचाप सुन रहा था, बोला।

"सुरेन्द्रनाथ, नासबिलाड़ी घुस †, फीरोजशाह, वाच्छा, गोखले

---

† रासबिहारी घोष का द्वेष से बिगाड़ा हुआ नाम।

गोकल काका, चिमनलाल, मालवीय, मोतीलाल नेहरू, अंबालाल, साकरलाल और हमारी सुलोचना के बाप !"—वह हँसा।

"फिर क्या हुआ ?" केरशास्प ने पूछा।

"और वे दो अंग्रेज—रूथर फोर्ड और नेविन्सन।"

'बिना अंग्रेजो के भला कही हम लोगो से विचार हो सकता है ?" तिरस्कार से अंबालाल ने कहा।

"फिर !" मोहन पारेख ने पूछा।

"आज इन लोगो को विश्वास हो गया कि तुम्हारे गरमदली कुछ नही कर सकते। फीरोजशाह ने साफ कह दिया कि हमे किसी तरह का समाधान नही करना। क्या हुआ और होनेवाला था ? सदुभाई, तुम्हारे would have been श्वसुर साहब ने सरस भाषण दिया। पर कुछ भी कमजोरी बताई नही। उन्होने कहा कि गरमदल का मुद्दा साम्राज्य के बाहर स्वाधीनता प्राप्त करने का है।

"छी: छी:" नारायणभाई ने कहा।

"सुनो तो सही" केरशास्प ने कहा।

"यही कि इन लोगो को जबरदस्ती कांग्रेस से बाहर निकाला जाय।"

"निकालो तो सही बेटे !" नारायण ने धमकी दी।

"ऐसा किये बिना ये लोग ठिकाने नही आ सकते।"

"देखूँगा, देखूँगा।"—नारायणभाई ने गुस्से में कहा।

"अब यह अपना बैल हाँकना बंद कर न।" मगन पंड्या ने नारायण की पीठ पर एक हाथ मारकर चुप रहने को कहा।

"एकमात्र लालाजी के लिए यह समाधानवृत्ति बतानी पड़ती है।"

"यह पंजाबी उस्ताद है।" मोहन पारेख ने कहा।

"मुझे लगता है कि कल सारा गरमदल ढल जायगा। तिलक और खापरडे थक रहे है।"

"एक ही रास्ता मुझे दिखाई देता है।" सुदर्शन, जो अब तक चुप था, माथे का पसीना पोछता हुआ बोला।

"क्या ?" पारेख ने पूछा।

"समाधान होने ही न दिया जाय।" सुदर्शन ने अपने होठ कठोरता से बंद करते हुए कहा।

"सदुभाई! यह कहना आसान है। तुम लालाजी को जानते नहीं।" केरशाश्प ने कहा।

"और तिलक, खापरडे!"—मोहन पारेख ने कहा।

"देखो," सुदर्शन ने आगे आकर कहा शिवलाल सराफ गोखले की तैनात मे है। शिवलाल, चाहे जैसे भी हो तू अंबालाल को फ़ीरोज़शाह की तैनात में स्वयंसेवक की जगह करा दे।"

"किस तरह ?"

"वहाँ वह तेरा दोस्त नरोत्तम है न उसके बदले—"

"अच्छा, फिर?"

"लाजपतराय के पास मोहन पारेख तो है ही और पारेख मुझे तथा पड्या काका को तिलक-खापरडे की तैनात मे करा देगा।"

"फिर क्या होगा!" मोहन पारेख ने आतुरता से पूछा।

"संदेशा कौन लाये और ले जायगा, हम ही न! फिर तो 'माँ' का भविष्य—"

"आबाद!" कहकर केरशास्प ने ताली पीटी, "शाबाश दोस्त, इस तरह से हम लोग काम करेंगे तो किसी दिन भी समाधान होने वाला नहीं। मैं तथा नारायणभाई कैम्प में चले। सारीरात है। देखें कौन सा नरमदलवाला बोलता है।" एक पल भर के लिए सब एक दूसरे की ओर देखते रहे।

"मैंने कहा नहीं था कि हमारा मंडल क्या नहीं कर सकता!" नारायणभाई ने कहा, "शिवाजी महाराज की जय!"

"सदुभाई !" मोहन पारेख ने कन्धे पर हाथ रखकर कहा, "तुम्हारी योजना मेरी समझ मे आ गई। अब देखना !"

५

सूरत शहर में चिंता का वातावरण छाया हुआ था। क्या होगा इस ख्याल से बड़े-बडे बहादुर दिल भी कांपने लगे। रात भर सलाह-मशविरे चले, प्रत्येक कैंप मे वाग्युद्ध हुए।

लाला लाजपतराय जल्दी से आठ बजे उठे और दो बजे तक तिलक और अरविंद बाबू से सलाह की। वह स्वयं नरमदल के थे, फिर भी गरमदल के आदर्शों का समझ सकते थे।

उनकी राय थी कि दोनो पक्ष कांग्रेस में रहे।

इसी मुद्दे को लेकर ये सब परिश्रम कर रहे थे। आखिर उन्होंने तिलक, खापरडे और अरविंद बाबू से इतना स्वीकार करा लिया कि यदि कलकत्ता कांग्रेस के चारो प्रस्ताव ज्यो के त्यो कायम रहें तो प्रमुख के चुनाव मे गरमदल को भी सम्मिलित होना चाहिए। अब केवल रह गया एक सवाल—चारो प्रस्तावो के स्वरूप का।

जैसे ही लालाजी उठे वैसे ही उनकी नज़र मोहन पारेख पर पड़ी। दातुन पानी लेकर वह हाजिर था। लालाजी हँसकर बोले 'Thank you.' यह आदमी कितना काम कर रहा था ? रात को उनके सो जाने पर वह सोया और उनके उठने से पहले वह हाजिर था।

"चाय, अगर हो तो।"

"हाज़िर है।" कहकर मोहन पारेख प्रसन्न मुँह से दौड़ता हुआ चाय ले आया। लालाजी ने चाय पीकर कपड़े पहने।

"गाडी मँगाओ।"

"जी अभी मँगाता हूँ।" थोड़ी देर मे मोहन वापस आया। "गाड़ी लाने के लिए कह दिया है।"

पाँच—दस—पंद्रह मिनट बीत गए। आठ बज गए। लालाजी

घबरा उठे। मोहन ने भी पाँच-सात बार दौड़ादौड़ी की पर गाड़ी का कही पता ही न लगा।

"किसको भेजा है ?"

"एक स्वयसेवक को। जरा ठहरिये साहब ? मै लिये आता हूँ।" कहकर मोहन पारेख वहाँ से निकला। उसके मुख पर मुस्काराहट थी। नौ बजने से पहले गोखले के पास से प्रस्तावो को ले आने का लालाजी ने तिलक को वचन दिया था और इस समय लगभग सवा आठ हो गये थे। मोहन पारेख रास्ते मे गाड़ी खोजने के बजाय चैन से एक पेड़ के नीचे जा बैठा।

लालाजी बेचैन हुए। मिनट पर मिनट बीत रही थी और कोई गाडी लाता न था। क्या हुआ ? वह अपने एक पंजाबी मित्र के साथ बाहर निकले। साढ़े आठ हो गये थे।

पारेख ने लालाजी को निकलते देखा और वहाँ से दौडा। थोड़ी ही दूर पर एक गाडी हाथ लगी। उस पर चढकर वह सामने आया।

"गाड़ी मिलने मे बडी देर हो गई।" वह बडबडाया।

"फ़िकर नही। मि० गोखले के यहाँ चलो।" कहकर लालाजी गाडी मे बैठे।

सूरती घोड़े को समझाते-समझाते तोबा हुई, पर नौ बजने मे दस मिनट पर वह लालाजी को गोखले के यहां ले आया। शिवलाल सराफ द्वार पर स्वयंसेवक की पोशाक मे हाजि़र था। लालाजी आगे और मोहन पारेख पीछे—दोनो दो-दो सीढियाँ पार करते हुए ऊपर चढ़े। लालाजी अंदर गये और मोहन पारेख दरवाज़े पर शिवलाल के साथ खड़ा रह गया।

"क्यो, क्या हो रहा है ?" शिवलाल ने हँसते हँसते पूछा।

"लालाजी तिलक से नौ बजे तक समाधान का संदेशा लेकर मिलनेवाले है।"

"पर नौ तो बज गये ।"

"क्या करें ? इस सूरत शहर में गाड़ी ही नहीं मिलती । Shame."
-कहकर मोहन हँसा ।

घड़ी में नौ के घंटे बजे ।

"पहला दाँव तो सफल हुआ ।" उसने धीमे से सराफ के कान में कहा । इतने में एक स्वयंसेवक दौड़ता हुआ ऊपर आया ।

"क्या है ?"

"सिंधी कैंप में एक डेलिगेट मरनेवाला है, घड़ी दो घड़ी का मेहमान है । कैम्प में से सब ने कहलाया है कि कांग्रेस देर में आरंभ होगी ।"

"ठीक, मैं गोखले से कह दूंगा । पर यह काम तो त्रिभुवनदास मालवीय का है । उनसे कहने जाओ न । यहाँ क्यों आये ?"

"वहाँ जाना पड़ेगा ?" उस स्वयंसेवक ने पूछा ।

"पारेख, तुझे शांति हुई ।"

"क्यों ?"

"अब लालाजी को कैम्प में ले जा ।"

"वह मरनेवाला है, इसलिये ?"

सराफ अपने मित्र की मूर्खता पर हँसा, "पारेख ! तुझे हो क्या गया है ? सिंध अर्थात् पंजाब कैंप में कोई मरनेवाला हो तो लालाजी के जाये बिना काम चल सकता है ?"

"शिवलाल !" अंदर से नामदार जगमोहनलाल की आवाज आई ।

"जी !" कहकर शिवलाल अंदर गया । गोखले, लालाजी और मोहनलाल बातें कर रहे थे । गोखले ने शिवलाल से कहा, "कल रात के प्रस्तावों की कापी तुमने प्रेस में दे दी है न ?"

"जी हाँ ।"

"अभी फौरन जाकर उनकी नकल मि० तिलक के पास पहुँचाओ ।"

"और जल्दी !" जगमोहनलाल ने कहा।

"अभी साहब !"

"तुरन्त !" लालाजी ने कहा, "मै भी अभी तिलक के पास जाता हूँ।" लालाजी उठे।

घडी मे नौ बजकर दस मिनट हो गये थे।

लालाजी आये और पारेख के साथ सीढियो से उतरे।

"लालाजी ! पजाब कैम्प मे से आपको कोई बुलाने आया था।"

"मुझे ! क्यों ?"

"जी हाँ, कोई पजाबी डेलिगेट मरनेवाला है और आपको सब बुला रहे है। सब नेता वही है।"

"कौन होगा ?" लालाजी ने गाड़ी मे बैठे हुए पंजाबी से पूछा।

"कौन जाने।" उसने कहा।

लालाजी गाडी मे बैठे।

"साहब गाड़ी कहाँ ले चलूँ ?" पारेख ने हाँकनेवाले के पास बैठकर पूछा।

"पंजाब कैम्प।" लालाजी ने कहा।

मोहन ने घड़ी निकाली। सवा नौ हो गये थे। उसके मुख पर एक रहस्यमय हँसी थी।

शिवलाल सराफ प्रेस के लिए रवाना हुआ। कांग्रेस की बहुतसी गाडियाँ थी, पर फिर भी धीरे धीरे अजब तरीके से चलकर वह नानपरा मे केरशास्प के घर आया। धीरे-धीरे नहाया। भोजन किया और कपड़े पहने। ग्यारह के घंटे बजे। धीरे-धीरे क़दम रखता हुआ वह प्रेस की ओर चल दिया।

६

तिलक महाराज और खापरडे हरिपुरा मे बैठे-बैठे चिंता कर रहे थे।

फ़ीरोज़शाह और गोखले ववई और पूना के—अर्थात् भारत के—प्रतिष्ठित नेतओ के सर्वाधिकारी ; फ़ीरोज़शाह अर्थात् कांग्रेस के और प्रजाजीवन के सूत्रधार ; गोखले अर्थात् सुरेन्द्रनाथ और लाजपतराय का विश्वस्त मित्र—सत्यता और सौजन्य की मूर्ति। सूरत अर्थात् फीरोजशाह का घर और सारे हिन्दुस्तान मे स्वयं वह खापरडे और अरविंद तीन क्रातिकारी, डीग हांकनेवाले, कांग्रेस के विध्वंसक। ऐसे विचारो की परम्परा से तिलक घवरा उठे।

तिलक महाराज के राजकीय जीवन मे दो उद्देश्य—दो अटल लक्ष्य—सरकार का विरोध और सुख का त्याग। कार्य करते समय इन दो लक्ष्यो पर दृष्टि रखते हुए भी उनका मन डगमगाता। ऐसी डगमगाहट उन्हे दो दिन से परेशान कर रही थी। सौ पूना के, सौ नागपुर के और पचास बंगाल के और अधिक से अधिक हुए तो सौ बंवई और गुजरात के प्रतिनिधियो पर उनका आधार था। विरोधी पक्ष मे पन्द्रह सौ प्रतिनिधि, चुने हुए नायक, पार्लमिंट के अग्रेजी पत्रकार-जीवन के प्रतिनिधि, फीरोज.शाह की राजनीतिज्ञता, गोखले की न्यायवृत्ति, सुरेन्द्रनाथ की वाक्पटुता।

एकमात्र गरमदल का सम्मान रखने के लिए कलकत्ते के चारों प्रस्ताव रह जाये तो वस था पर वे रहें तो कैसे ?

जिन सुरेन्द्रनाथ ने इन प्रस्तावो को रखा था वह इस समय प्रतिपक्षी हो बैठे थे।

क्या किया जाय ?

उनकी बाईं आंख पल-पल में फडक रही थी। उनका मुख व्याकुलता से पान चबा रहा था। साढ़े आठ वज गये थे।

मोतीलाल घोष—कलकत्ते के प्रमुख गरमदली और अरविंद वाबू आ पहुंचे। वहुत देर तक सब चिंतित रहे। डेढ़ वजे कांग्रेस मिलनेवाली थी और घड़ी की सुई जल्दी-जल्दी वढ़ी जा रही थी।

अरविंद बाबू के मुख पर निराशामय शांति थी। 'लाभालाभौ जयाजयौ' की उनको परवाह न थी। हार ही जायेंगे न? इस शांति से तिलक महाराज को गुस्सा आता था। जय की आकांक्षा से रहित उत्साह उनकी समझ में नहीं आता था।

पौने नौ बज गये। सब ने घड़ी की ओर देखा। लालाजी अभी आये नहीं थे। या तो उन्होंने सलाह-मशविरे का काम छोड़ दिया था मिनट की सुई बहुत ही धीरे-धीरे आगे बढ़ रही थी। नौ बजने में दस मिनट कम—आठ कम—पाँच कम हुए इतने में गाड़ी की गड़गड़ाहट सुनाई दी, सब बात करते चुप हो गये।

"देखो तो कौन है?" खापरडे ने सुदर्शन से कहा। सुदर्शन बाहर देखकर लौट आया; "कोई नहीं, ये तो स्वयंसेवक आये हैं।"

"लाजपतराय को क्या हो गया?" मोतीलाल घोष ने कहा। घड़ी ने नौ के घंटे बजाये।

"Lajpatrai has failed" अरविंद बाबू ने कहा।

"क्या करें तब?" तिलक ने पूछा।

"युद्धस्व विगतः।" ज़रा हँसकर अरविंद बाबू ने कहा।

सुदर्शन और मगन पंड्या ने संतोष की मुस्कराहट से एक दूसरे की ओर देखा।

"एक काम करें; अंतिम उपाय है।" मोतीलाल घोष ने कहा।

"क्या?"

"सुरेन बाबू से मिला जाय। उन्हें हाथ में लेना चाहिये।"

"वह नहीं मानेंगे।" तिलक ने कहा।

"वह तो अब पुलिस सुपरिन्टेंडेंट का मित्र है।" अरविंद बाबू ने ठंडे दिल से कहा।

"फिर भी हम और तुम दोनों चलकर यदि उनसे कहें तो

सुरेन बाबू इन्कार नही कर सकते।" उत्साहवृद्ध मोतीलाल ने सुरेन्द्रबाबू का तीस वर्ष का अनुभव बताया।

"चलो तब।" खापरडे ने कहा और सब उठे। मगन पंड्या और सुदर्शन गाड़ी ले आये और चारो व्यक्ति उसमे बैठे। हाँकनेवाले के साथ मगन पंड्या और सुदर्शन दोनो बैठे।

जब वे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के स्थान पर पहुँचे तो पौने दस बज गये थे। चारों 'गरमदली' नेता अंदर गये। मगन पंड्या और सुदर्शन बाहर खड़े रहे।

"पंड्या काका! साढ़े दस हो गये। सारा काम इस समय तक तो ठीक चल रहा है।"

"मुझे तो ऐसा लगता है कि मोहनभाई ने कोई उस्तादी अवश्य की।"

"देखो।" सुदर्शन ने कहा।

दस बजकर चालीस मिनट पर चारों 'गरमदली' नेता बाहर निकले। सुरेन्द्रबाबू उनको विदा करने आये। वह बैठे गले से बोल रहे थे।

"मालवी के पास जाओ, वह चेयरमैन है। कोई रास्ता ढूँढ निकालेगा।"

"लेकिन तुम पर हमारा भरोसा है।"

"बिल्कुल, घबराने की कोई जरूरत नही।"

चारो 'गरमदली' नेता फिर गाड़ी मे बैठे और त्रिभुवनदास मालवीय के यहाँ गाड़ी ले जाने का हुक्म दिया। गाड़ी चली और मगन और सुदर्शन ने अंदर क्या बातचीत चल रही है यह सुनने का प्रयत्न किया। जो बात चल रही थी वह ऊपर से इतनी ही समझ में आई कि कलकत्ते के चारो प्रस्तावो को उसी स्वरूप में रखने के लिए सुरेन्द्रनाथ तैयार थे; यदि ऐसा हो जाय तो रासबिहारी घोष को सर्व-

सम्मति से अध्यक्ष होने देने के लिए 'गरमदली' नेता तैयार थे; एकमात्र अध्यक्ष के चुनाव के समय लालाजी को अध्यक्ष नियुक्त करने की इच्छा कितनी थी यह उल्लेख करना था। पर प्रस्ताव ज्यों के त्यों रहेंगे इसका क्या विश्वास ? गोखले के यहाँ जाना तो बेकार था ; क्योंकि लालाजी वापिस नही आये इसलिए गोखले तो समाधान के विरुद्ध होने ही चाहिये।

त्रिभुवनदास मालवी इस समय सत्ताधीश थे। वही कुछ विश्वास दे या दिला सकते थे।

साढ़े ग्यारह बजे मालवी का घर आया। सुदर्शन ऊपर पूछने गया।

एक लड़के ने कहा कि मालवी पूजा मे बैठे है , अतः अभी नही मिल सकते।

सुदर्शन के मुख पर विजय हर्ष था।

"मालवी आप से मिल नही सकते।"

"क्यो ?" तिलक ने पूछा।

"पूजा में बैठे है।"

"कब उठेगे ?"

"कहा नही जा सकता, कांग्रेस शुरू होने से पहले मिल सकें ऐसा नही मालूम देता।"

तिलक महाराज के मुख पर खेद छा गया। अरविंद बाबू हँसे।

"अब जो हो वह ठीक।" हाथ के दुपट्टे का किनारा जोर से पकड़ते हुए खापरडे ने कहा, "अपनी जिम्मेदारी पूरी हुई।"

"हाँ," तिलक महाराज की आँख बड़ी जोर से फड़क रही थी। सवा बारह बजे तिलक के स्थान पर गये। एक बजे तो काग्रेस मिलने ही वाली थी।

"क्या होगा ?" उनके मुख पर अपार चिन्ता का साम्राज्य था।

# केकी क्लब की पार्टी

१

बबई में २२वीं दिसंबर की संध्या को केकी रुस्त चौपाटी पर तफरी मे घूम रहा था।

ग्रीक मिनर्वा जन्म से ही सशस्त्र और सुसज्जित कहलाती है। केकी भी फलालैन की पतलून, सफेद बूट, बिना ऊपरी बटन वाली कमीज़ और रैकेट के साथ पूरी तरह से सुसज्जित टेनिस खेलने वाला पैदा हुआ है यह बहुतों की धारणा थी, शायद ही कभी वह इस शोभा से रहित रहता हो। ऐसी कल्पना करना भी अशक्य ही था। इस समय भी वह उसी ठाठ में था। सिर खुला हुआ, घुंघराली ज़ुल्फ़ें जैसे सिर पर चिपकी हुई हो ऐसा लगता था। उसकी ऐसी धारणा थी कि यदि इन ज़ुल्फो से लोग मोहित न हुआ करें तो उनका श्वासोच्छ्वास रुक जाय। वह साधारणतया टोपी पहनता ही न था। थोड़ी-थोड़ी देर में वह रैकेट को पैर पर ठोकता रहता।

जिस क्रिया को सामान्य जनता 'विचार करना' कहती है वह उसके मस्तिष्क में चल रही हो यह स्पष्ट दिखाई देता था। इस क्रिया मे वह प्रवीण नही था यह भी स्पष्ट दिखाई देता था। उसे 'अदर ही अँदर घुटने' का मर्ज़ हो गया था। यह मर्ज बहुत ही प्रसिद्ध है और बहुधा बहुत से मनुष्यों को हो जाता है। इसका मुख्य लक्षण यह है—मरीज़ "मैं क्या करूँ? क्या न करूँ?" यह सवाल पूछा करता है, किसी की गर्दन और न हो सके तो अपनी ही मरोड़ देने को तीव्र उत्कंठा उसे हुआ करती है—ये लक्षण केकी में स्पष्ट दिखाई दे रहे थे।

केकी पैसेवाला था; होशियार था; सुन्दर था; बूढ़ी माँ के हाथों पला होने के कारण स्वच्छंदी स्वभाव का था; बाप के अभाव के कारण किसी की पर्वाह भी न थी। और बंबई की तफरियों में मँजा हुआ रसिक था। उसे यह दर्द पहले-पहल हुआ था, इसलिए वह चिंतित हो उठा।

जैसा उसने सोचा था उसके अनुसार परीक्षा मे तो वह फ़ेल ही हुआ। इसकी भी उसे कोई चिंता न थी। पर कालेज बंद होते ही इस रोग के शुरू होने का उसे एक ही कारण लगा। पहले वह दिन के चार पाँच घंटे 'नामदार' सुलोचना की संगति में बिताता था। कालेज बंद होने के बाद उसकी सतत संगति के बिना निर्बल हो गये शरीर में इस रोग के कीटाणुओं ने घर कर लिया था।

किसी के साथ घूमने जाने की तो जगमोहनलाल ने सुलोचना पर पाबंदी ही लगा दी थी; परन्तु, टेनिस खेलने के लिए वे हमेशा इकट्ठे होते थे। पर इतने से उसे संतोष न होता था। मगन दलाल ने भी टेनिस का अभ्यास करना शुरू कर दिया था, और खेलने के समय वह हमेशा साथ ही रहता था।

"That brute of a Bania." केकी बड़बड़ाया।

केकी को एक बात सब से अधिक बुरी लगती थी। वह नामदार को खुश करने के लिए इतना प्रयत्न करता, पर उसके साथ इसकी मैत्री गाढी नहीं हो पाती थी। सुलोचना हँसती, बोलती, प्रशंसा करती; पर फिर भी दूर की दूर—मगन के साथ उसी तरह—रहती। नामदार केवल उसकी ही मित्र कैसे हो इस महान् प्रश्न पर वह विचार कर रहा था। एकदम उसने सुना कि मगन दलाल सूरत कांग्रेस में गया है। जीवन भर में जो अवसर न मिलता ऐसा अवसर आज हाथ आया, "That's good" उसने पैर पर रैकेट पछाड़ते हुए कहा, "What a useful congress !" उसने इस अवसर

का लाभ उठाने का निश्चय किया और एक खास संदेशा भेजकर नामदार को चौपाटी पर बुलाया था।

बहुत देर से वह आनेवाली गाड़ियो की ओर देख रहा था। अभी तक सुलोचना क्यो नही आई?

इतने मे उसकी गाडी दिखाई दी और विद्युल्लेखा सदृश्य सुलोचना गाड़ी से उतरकर उसकी ओर दौड़ी। ऊँची, छरहरे बदनवाली सुलोचना दिन-दिन मोहक होती जा रही थी। उसके मुख पर चढ़ती जवानी की अरुणिमा चमक रही थी। और उसके अंग-अंग का लालित्य कदम-कदम पर निखर रहा था। उसमें एक हिन्दू लडकी जैसी घबराहट नही थी और न थी पारसी लड़की जैसी प्रगतिशीलता। कालेज के लड़को के साथ हँसते, बोलते और मिलते हुए उसका शर्मीलापन जाता रहा था, पर सैलानी स्वभाव के योग्य गौरवशील अहंकार उसने अपना लिया था। मिजाजी तो वह थी ही, और अपने मिजाज को छिपाने का वह प्रयास करती हो यह दिखाई न देता था।

उसे यह आवारा पारसी अच्छा लगता था और उसके भेजे हुए खास संदेश से वह जरा उत्साह में आ गई थी। केकी अर्थात् मनोविनोद—तफरी। इसकी बातें उसे अच्छी लगती थी। उसका व्यवहार अच्छा लगता था। इसकी संगति रसीली थी। आनंद के प्रसंग शुरू करने में वह एक था। उसकी संगति मे वह एक मस्ती का अनुभव करती थी। कितनी ही बार, कोर्नेलिया में, मोजनी मे या उसके यहाँ घर पर वह चाय पर भी गई थी। कैसी उसमें तफरी, कैसी बातें, कैसी चमक, कैसा आनंद! कितने ही दिनो तक उसका नशा उसे चढा रहता। इस समय भी ऐसे ही किसी प्रसंग के लिए वह मिलना चाहता होगा। उसके साथ जीवन—अर्थात् मनोविनोद की सीमा!

"हल्लो केकी! साहेबजी।"

"जी नामदार! साहेबजी!" छाती पर हाथ रखकर कृत्रिम नम्रता से हँसते मुख से अभिवादन करते हुए केकी ने कहा, "बंदा हाजिर है।"

"क्यो क्या काम है ? मुझे जाने की जल्दी है।"

"यह बात ?" केकी ने साथ-साथ चलते हुए पूछा, "मुझे तो ऐसा लग रहा था कि हमे शाति से घंटा भर तो मिलेगा। ठीक, मै तुमसे एक Ffavour चाहता हूँ"।

"क्या ?" चमकती आँखो से हँसते हुए सुलोचना ने पूछा।

"मुझे तुमको एक पार्टी देनी है।"

"पार्टी !" सहर्ष सुलोचना ने कहा, "किस लिए ?"

"बहुत दिन हो गये, हमने कोई तफरी नही की। तफरी—पाँच या पंद्रह मिनट की नही; पर पाँच या पँद्रह घंटे की। Not drops—but tons"

"कब ?"

"अभी।"

"Impossible."

"क्यो ?"

"मै पापा और ममी के साथ सूरत जानेवाली हूँ।"

"सूरत गई जहन्नुम में।" केकी ने नाराजगी से रैकेट पैर पर पटकते हुए कहा।

"वह क्यो जाय ? फिर कांग्रेस का होगा क्या ?" ज़रा मजाक मे सुलोचना ने कहा।

"वह भी जाय दोजख मे। You cannot go. किसी भी तरह रुक जाओ।"

"पर है क्या ?"

"केकी-क्लब की दावत है।"

"केकी-क्लब क्या ?" हँसकर सुलोचना ने पूछा।

"अरे मैं—केकी !" हँसकर केकी ने कहा, "उसका एक क्लब। उसका प्रेसीडेंट मैं और सेक्रेटरी भी मैं।"

"और मेम्बर ?"

"वह भी मैं। और जब आवश्यकता पड़े तो ऑनरेरी मेंबर बढ़ें न घटें।"

सुलोचना हँसी, "उसका क्या है ?"

"उसकी सालगिरह है।" केकी ने हँसकर कहा। सुलोचना भी खूब हँसी, "पापा से कह देना कि मेरे मित्रों की पार्टी है।"

"ऐसे कहीं मान सकते हैं ? एक बात हो तो काम चल सकता है। किसी लड़की को बुला रहे हो ?"

"हाँ।" केकी ने क्षण भर विचारकर कहा, "महेरों क्लार्क, मेरी सगी जो इन्टर में है। तुम नहीं जानतीं ? उसे और उसके फ्रेंड रुस्तम पहलवान दोनों को बुलाऊँगा।"

"पापा ऐसे भी नहीं मान सकते।"

"क्या करूँ मेरे पापा नहीं, नहीं तो कब का मनाना सिखा देता। नामदार! कुछ तो रास्ता निकालो।" केकी ने निराशा से याचना की।

"एक काम करो तो पापा मान जायेंगे।"

"क्या !"

"तुम प्रोफेसर कापड़िया को जानते हो न ?"

"हाँ, उस old ass को कौन नहीं जानता।"

"तुम्हें मालूम है, यह old ass मुझसे love करता है ?" हँसकर सुलोचना ने कहा।

"By jove !" केकी बोला, "क्या कह रही हो ?"

"यही कि मेरी चौकसी के लिए वह हमारे घर रहेगा; और वह होगा सो पापा मुझे यहाँ अकेली रहने देंगे, पर पार्टी में आने की तो मुश्किल रहेगी ही।"

"वह किस काम का ?" थोड़ी देर निराशा के आवेश में अपने बालो मे अँगुलियाँ डाल उन्हें सहलाता रहा । थोडी देर दोनों चुप रहे। फिर एकाएक विचार आने पर केकी ने हर्ष से पैर पटककर कहा, "उस Idiot मार्तंडकर को बुलाऊँ ? वह कई बार चुपचाप मेरे क्लब मे हो गया है । कापडिया के कालेज मे संस्कृत का लेकचरर है ।

"Splendid !" सुलोचना की आँखें चमक उठी । "आदमी तो भला है न ?"

"अरे हाँ, पिछले महीने मुझसे दो सौ रुपये उधार ले गया है ।"

"बहुत ठीक ! तो हम परसो पार्टी नही रख सकते ?"

"परसो ! इससे क्या होगा ?..."

"चौबीसवी तारीख हो जाये तो पापा से कह सकती हूँ कि कांग्रेस से पहले सूरत आ पहुँचूँगी ।"

"हाँ, यह भी ठीक है ।"

"गमन है क्या ?" जरा मस्त आखो से सुलोचना ने पूछा ।

"वह तो कल सूरत जा मरा ।" केकी ने तिरस्कार से कहा ।

सुलोचना पल भर इस आडबरपूर्ण युवक की ओर देखती रही । उसे इसके साथ कैसा आनन्द आता है ?

"ठीक, तब मै कापड़िया के यहाँ जाऊं, पर उस मार्तण्डकर को कल सबेरे से पहले निमंत्रण मिल जाना चाहिये ।"

"Certainly, साहेबजी !" कहकर रुख नें सुलोचना के साथ शेक-हैंड किया । केवल शेकहैंड ही नही, बल्कि थोड़ा गहरा, थोड़ा भाव-युक्त हस्त-मिलाप हुआ ।

२

सुलोचना की युक्ति सफल हुई । नामदार जगमोहनलाल कांग्रेस की झंझट मे इतने उलझ गये थे कि उन्हें लड़की पर दबाव डालने का मन न हुआ । और २३वी तारीख की रात को ग्राटरोड पर

नामदार तथा गौरीवहिन को सुलोचना और कापड़िया सूरत के लिए विदा कर आये। जव तक नामदार वापिस आवे तव तक कापड़िया ने सुलोचना के साथ वाल्केश्वर मे रहना स्वीकार कर लिया।

विदेश से स्वामी के वापस लौटने पर जैसे हर्ष से रोमांच हो आएं ऐसे उत्साह से प्रोफ़ेसर कापड़िया ने सुलोचना के साथ रहना स्वीकार कर लिया। पूँछ फटकारने के वदले वह दिन भर हाथ मलते रहते। जीभ से चाटने के वदले उनके होठ फड़फडाते रहते। सूँघने के वदले वह हमेशा सूँघनी चढ़ाते। इस प्रकार की चंचलता जव वह कोई सरस चीज़ पढ़ते—कोई नवीन दृष्टिकोण पाते—नवीन सिद्धातो पर विचार करते—तव उनके मुख पर हमेशा दिखाई देती थी; इसलिए वह किसी के लिए असाधारण बात नही थी।

इस चंचलता ने कापड़िया की वोलने की शक्ति हर ली थी। जैसे ठंड से ठिठुरता हुआ व्यक्ति आग के सामने चुपचाप तापे वैसे ही वह भी विना कुछ वोले-चाले इस नई आई हुई गर्मी का आनन्द लेते रहते। इस गर्मी से उन्हें संतोष था।

जव प्रोफेसर घर गये तो दीवानखाने मे वैठी हुई सुलोचना के साथ कुछ वातचीत करने का विचार था, पर सुलोचना को आने-वाली कल के स्वप्न देखने की जल्दी थी, इसलिए शीघ्र ही वह सोने चली गई।

कापड़िया हमेशा की तरह एक पुस्तक लेकर पढ़ने वैठे पुस्तक कानून की थी—Dicey's conflict of laws. इस समय इस पुस्तक मे ध्यान सटा हुआ हो ऐसा नही लगता था। वह वार-वार गर्दन उठाकर देखते और आँखें इधर-उधर घुमाते, थोड़ी देर मे किताव से उन्हें अरुचि हो गई। वह उठकर ऊपर गये और जव सुलोचना के वंद द्वार के आगे से निकले तो कही ऐसा न हो कि मंदिर के देवता जग जायें, इस भय से नीची नजर किये

धीरे-धीरे कदम रखते हुए चले गये। फिर दूर जाकर वह उसके दरवाजे की ओर देखते रहे और कान लगाकर कुछ सुनने का उपक्रम किया। थोडी देर बाद जरा हँसकर चले गये। अपने सोने के कमरे मे जाकर उन्होने कागज-पेंसिल लेकर सक्षेप में नोट लिखने आरम्भ किये।

"पशु शास्त्र का नियम,

प्राणियो का आकर्षण।

आकर्षण का स्वरूप।

उसका मनुष्यो मे परिवर्तन।

वृद्ध और कुरूप का यौवन और सुन्दरता के प्रति आकर्षण।

प्रेम और आकर्षण मे अन्तर।"

इस प्रकार विषयो के नोट्स लिखते हुए आधी रात बीत गई। सवेरे चाय पीते समय सुलोचना ने कहा, "काका! सारे दिन क्या करोगे? मै तो एकदम सध्या पड़े आऊँगी।"

कापड़िया ने तश्तरी में से ऊपर देखा। "क्या करूंगा? बैठा-बैठा लिखता रहूँगा। मै भी छोटा होता तो चलता! साथ मे गनपत को लिये जा रही हो न?"

"क्या आवश्यकता है? हम कोई मुसलमानी युग में थोड़े ही रह रहे है? मुझे कोई खा थोड़े ही जायगा?"

"कुछ काम ही पड़ गया।"

"नही जी! लो, ये मेरे फ्रेंड्स आ गये।"

इतने में एक गाडी में महेरॉं क्लार्क, रुस्तम पहलवान, गनपतराव मार्तण्डकर और एक दूसरा दक्षिणी आये।

"आह! प्रोफेसर साहब कैसे हो?" कहकर मार्तण्डकर ने प्रोफेसर से हाथ मिलाया, "मिस सुलोचना कैसी हो?"

"हल्लो महेरॉं!" सुलोचना ने कहा, क्यो रुस्तमजी, चाय तो पियोगे ही?"

"डियर, डियर नामदार ! लूँगी ही !" महेरां ने चुभती हुई आवाज में जवाब दिया।

"हाँ, बहुत खुशी से।"

"यह मेरे फ्रेंड है"—मार्तण्डकर ने कहा, "मेहमान हैं, पूना से आये है—मि० अभयंकर।"

"थैंक यू ! थैंक यू !" करते हुए मि० अभयशंकर ने शेकहैंड किया और सब बैठे। महेरां और रुस्तम को प्रोफेसर की हाजरी से जरा क्षोभ हुआ।

महेरां क्लार्क जरा मोटी और सादी दिखाई देती थी। उसके बाल जैसे चिड़ियो के घोसले के लिए खास तौर पर तैयार किये गये हो ऐसे मोटे पोले-पोले और फूले हुए थे। वह चलती तो हिचकोले खाती हुई; और हँसती तो तीखी आवाज में। चाहे जिसके साथ, और चाहे जहां, चाहे जैसी हँसी मजाक करने में वह निष्णांत थी।

रुस्तम पहलवान के तो नाम से ही परिचय हो जाता है। वह ऊँचा और मोटा-ताजा था। उसके गाल, जैसे बिगुल बजाते समय किये जाते है, ऐसे फूले हुए थे। उसकी छोटी सी नाक, जैसे गढ़ते समय अधबीच में ही कोई रुक गया हो, ऐसा आभास होता था। महेरां जैसे तीक्ष्ण आवाज में हँसती थी वैसे ही रुस्तम खुरखुरी आवाज में हँसता और दोनो साथ-साथ हँसते तो जैसे कोई हारमोनियम के परदे और टीप की चाबी पर चाहे जैसे उलटे सीधे हाथ मारता हो ऐसा लगता था।

मि० गरणपतराव मार्तंडकर—उर्फ अन्ना साहब—पैंतीस वर्ष का गोल-मटोल काला, अत्यंत गंभीर और अतिशय विद्वान् लगनेवाला संस्कृत का अभ्यासी था। वह जन्म से गुजराती पर नाम से महाराष्ट्री था और पूना में रहने से संस्कृत भाषा के सात समुद्र तर गया था। और 'मांकड' गौरवशील उपनाम न लगने से उसे मार्तण्डकर का रूप

दे दिया था। उसके मुख पर आजन्म उपदेशक का तेज सदा ही दिखाई देता। उसकी आँख में शिक्षक की कठोरता भाग्य से ही अदृष्ट होती थी। उसके बोलने का ढंग ऐसा था कि जैसे जीभ पर काँटा रख-कर उससे तोल-जोखकर घी बेचता हो। वह हँसता तो जैसे कोई महादरिद्री-दयार्द्रता की धुन में दान के लिए एक पाई मुंह बनाकर अनिच्छा पूर्वक अपनी गाँठ से खोलकर देता हो ऐसा लगता था। शेकहैंड करता तो हाथ बहुत ऊँचा-नीचा हो जाने से कहीं शेषनाग पर भार अधिक न हो जाय इसलिए बहुधा धीमे से करता।

अभयंकर दुबला-पतला और ऊँचा तथा निस्तेज युवक था। अन्ना साहब के शब्द सुनकर उसमें सम्मति देने के अतिरिक्त उसके पैदा होने या जीवित रहने का कोई उद्देश्य ही न हो, ऐसा दिखाई देता था।

"कापड़िया साहब, आज हम सब वरसोवा जानेवाले हैं। सृष्टि सौंदर्य से मन का विकास होता है। इस छोटे से मस्तिष्क पर सौंदर्य और स्वतंत्रता की बार-बार छाप पड़ें यह बहुत ही उत्तम होता है।"

कापड़िया ने आँखें टिमटिमा कर सुँघनी का सड़ाका लिया, "इन सब को अच्छी तरह रखना। समझे ?" हा-हा-हा वह हँसे।

"मैंने नोटिस दे दिया है—क्या पूछा प्रोफेसर कापड़िया ?—कि हम उपदेश सुनने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं हैं।"

"शिक्षा और उपदेश सुनने के लिए तैयार न रहना यह तो अधोगति का स्पष्ट चिह्न है। Mind must be open." अन्ना साहब ने कहा।

"That's it" प्रशंसक की तत्परता से अभयंकर ने कहा।

"यह मेरा अभयंकर —"

"मि० मार्तण्डकर ! यह चाय ठंडी हो रही है।" सुलोचना ने याद दिलाई।

"अन्ना साहब कहने से बोलने में सुगमता और स्नेह में अधिकता दोनों बातें हो जायेंगी।" जरा गंभीर अंग्रेजी में अन्ना साहब ने कहा।

"ठीक।" हँसकर सुलोचना ने कहा। मार्तण्डकर को केकी ने किस प्रकार फँसाया था उसका उसे कुछ ज्ञान हुआ।

"Don't 'be silly अन्ना साहब !' प्रोफेसर ने कहा, "उपदेश, देनेवाले के सिवाय किसी दूसरे को संतोष नही देता, उपदेश लेने वाला यदि उसके अनुसार चले तो स्वमान भग हो जाय ; नही चले तो स्वर्गच्युत हो जाय, ऐसा असंतोष उसे अभिभूत कर लेता है।'

"परन्तु आप तो रोज उपदेश देते है।"

"हाँ, इसीसे तो मेरी पाचन-क्रिया चलती है। हा, हा!" कापड़िया ने हँसकर कहा, "पर मै शिक्षा ऐसे रूप मे देता हूँ कि किसी की समझ में नहीं आती, इसलिए किसी को असुविधा नही होती, समझे ?"

"अच्छा तब मै कपड़े पहन आऊँ।" कहकर सुलोचना चली गई और उसके पीछे महेराँ दौड़ती हुई चली।

थोड़ी देर मे जब सुलोचना मित्रो के साथ चली गई तो प्रोफ़ेसर उसे बहुत देर तक देखते रहे। उनकी छोटी सी आँख के निस्तेज गांभीर्य मे आकुल दयनीयता दिखाई दे रही थी। वह अपना निबंध लिखने बैठे।

## ३

केकी का क्लब वरसोवा गया। ट्रेन में महेराँ सीटी बजाती और रुस्तम मुँह से 'पकभम' करता हुआ तबले बजाता। मार्तण्डकर सब के उद्धार के लिए उपदेश देता और अभयंकर सब की बातें सुनता। केकी हँसता-हँसाता और बाल सँवारता रहा। सुलोचना यह तफरी देख और सुनकर आनंद का अनुभव करती। उसे स्वतंत्रता का चस्का लगने लगा था।

अँधेरी से ही ताँगे में बैठकर सब वरसोवा गये। प्रभात का पवन, सैकत पुलिन, समुद्र तरंगो का नर्तन, चढ़ता हुआ यौवन

विजातीय मित्र फिर क्या चाहिये ? महेरॉं और सुलोचना फुदकती फिरी । सब दौडे, कूदे और लेटे ।

अन्त मे पुरुषवर्ग समुद्र मे घुसा । पहले स्त्रियाँ शरमाती और हिचकती हुई किनारे पर खड़ी रही; फिर हँसकर नीचे देखा, फिर महेरॉं ने स्नान की वेशभूषा पहनी, आँखे मीचकर कूद पड़ी; सुलोचना नहाऊँ या न नहाऊँ इस विचार में पड़ी रही—अन्त में हिन्दू लड़की के लज्जाभाव की जीत होने से वही खड़ी रही ।

दोपहर हुआ और सब लोग किसी के एक खाली बँगले में गये और माली को एक रुपया देकर दरवाजे खुलवाये । वहाँ जाकर सबने नाश्ता किया; खा-पी कर सब ने थोड़ी देर आराम किया । संध्या के पाँच बजते-बजते चाय बनवाकर पी और फिर वहाँ से चलने की तैयारी की ।

रात होते-होते केकी का क्लब मस्ती में फिर ग्रांट रोड पर आया ।

सुलोचना ने घर चलने की दरख्वास्त की पर सब ने उसे हँसकर टाल दिया । वास्तविक दावत तो अब शुरू होनेवाली थी ।

सब केकी के घर गये । शौकीन केकी का फ्लेट सुघड और सुशोभित था, और वहाँ दावत की तैयारियाँ हो रही थीं ।

प्रत्येक सदस्य हँसता, मस्ती से उछलता हुआ आया और फूलो से सजी हुई टेबल देख ताली बजाकर हर्ष प्रकट किया । केवल अन्ना साहब न्याय के सिद्धान्तो का स्पष्टीकरण कर रहे थे, वह कहते रहे, और एक बार अभयंकर "हाँ, हाँ" करता हुआ अपने ध्यान से सुनने का प्रमाण देता रहा ।

एक सुन्दर, छोटे से कमरे मे सुलोचना और महेरॉं कपड़े ठीक करने गईं । सुलोचना का मुँह लाल हो गया था—धूप, मस्ती, हास्य और तफ़री के कारण खून उछाले मार रहा था । चोटी सँवारते वक्त वह सामने

पड़ी हुई केकी की फोटो पर एकटक देखती रही। यह जीवन कितना रसमय था! इस जीवन का नायक······कितना सुन्दर होगा?

महेरां सीटी में 'ला मार्सीस' बजाती आई और रुस्तम तालबद्ध हाथ-पैर ऊँचे-नीचे करता हुआ उसके पीछे-पीछे आया। केकी चमकती हुई आँखो और जुल्फो में, नये कपड़े पहनकर सब का स्वागत करने के लिए खड़ा था। तीन नौकर—'बायज़' सफेद चाँदनी जैसे वेष मे, पुतलो की तरह कुर्सियो के पीछे खड़े थे। अन्ना साहब और अभयंकर आये।

"अभयंकर! इतना याद रखना कि हमारी आर्य संस्कृति का आधार हमारे चरित्र पर है और हमारे चरित्र का आधार सयम पर है, और संयम का आधार—"

"आइये, अन्ना साहब! यह कुर्सी आपकी," केकी ने कहा, "और अभयंकर! तुम यहाँ आओ।"

—"अपने संचय पर है।" अन्ना साहब ने नीचे झुककर टेबल पर रक्खे हुए फूल को नाक लगा कर सूँघने लगे। "यह देखो! रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द की मोहिनी कुछ कम है? इससे आत्मा अधम हो जाती है—केकी! तेरा घर बड़ा सुन्दर है। तुझे व्यवस्था भी सब आती है। 'सर्वे गुणा. कांचन मा श्रयन्ते' ठीक है न अभयंकर?"

"आओ नामदार!" केकी ने आगे बढकर आने के लिए कहा।

ज़रा शरमाती हुई सुलोचना आई और केकी के पास बैठ गई। महेरां ने सीटी की ट्यून बदली। रुस्तम ने टेबल पर तबला बजाना शुरू किया। केकी ने बॉय को इशारा किया और उसने खाना 'सर्व' करना आरभ किया।

"केकी!" अन्ना साहब ने कहा, "पैर लटकाकर बैठना यह

शास्त्र विरुद्ध है।' उसने बूट निकालकर धीरे से कुर्सी पर पल्थी मारी। "अभयंकर !—"

"रुस्तम ! क्या लोगे ? कोकटेल ? महेरां तू ?" केकी ने पूछा।

—"इतना याद रखना कि जीमते समय लिप्सा नही रखनी चाहिये। इससे शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है।"

—"नही, शॅंपेन," महेरां ने कहा।

"खाते समय उच्चस्तर की ज्ञानगोष्ठी से ही शरीर और आत्मा की शांति स्थिर रहती है।" अन्ना साहब ने कहा: "केकी ! रजोगुण अशांति का मूल है—विशेषकर खाते समय। मुझे चंपीन ठीक रहेगी, अभयकर ! तू जरा चख तो !"

"नामदार तुम ?"

"कुछ नही।"

"यह कही हो सकता है ? फिर मेरी दावत ही क्या रही ?"

सुलोचना ने नीचा मुँहकर ना ना कहना आरंभ किया।

"यह नही हो सकता, मेरी क़सम !" केकी ने कहा।

सुलोचना ने नीचे सिर झुकाकर आँखें ऊँची की। उसमें तेज चमक रहा था।

"तुम्हारी इच्छा—"

"मिस सुलोचना," अन्ना साहब बीच मे ही कूद पड़े, "यद्यपि शुद्ध लोक विरुद्धं ना करणीयम्" यह सिद्धांत हमेशा लागू नही होता। आजकल चंपीन लोक विरुद्ध नही, और द्राक्षासव है इसलिये शुद्ध है। कोई भी वस्तु वासना तृप्ति के लिए ली जाय तो वह अशुद्ध हो जाती है।"

"अच्छा ! जरा सी—" सुलोचना ने कहा।

"उंड़ेल।" केकी ने कहा।

"नहीं—नहीं, इतनी ज्यादा—"

"तू उँडेलना भी जानता है ?" रुस्तम ने कहा।

"किसी को कुछ आता ही नही।" कहकर महेरों ने बॉय के हाथ से बोतल लेकर सुलोचना के गिलास में शेंपेन उँढेली।

"अ र र र !" एक बड़ी मछली रकाबी में पड़ी हुई देखकर सुलोचना बोल उठी।

"यू गधा !" कहकर केकी ने बॉय को धक्का दिया, "यह मीट-माँस नही खाती।"

बॉय ने काँपते हाथ से रकाबी उठा ली।

"हिन्दू-शास्त्र में माँसाहार निषिद्ध है, ऐसी कइयों की धारणा है···" अन्ना साहब ने बोलना आरंभ किया।

"ज़रा एग्स तो ले आ !" महेरों ने कहा और टेबिल के नीचे से सुलोचना का पैर दाबने की इच्छा से भूल में उसने केकी का पैर दबा दिया।

"हिन्दूशास्त्र पहले से ही मांसाहार का पक्षपाती है। बॉय ! दूसरी एक फ़िश—" बॉय के हाथ में एक ही फिश होने से अन्ना साहब को असंतोष हुआ, अभयंकर ! यह तो जल का फल है···"

"महेरों माय···" अपना पैर दबाये जाने से केकी ने हँसकर कहा, "मेरा पैर नहीं दुखता, पहलवान के पैर पर ही मारती रहो···"

"ओ ! You unchivalrous brute!" महेरों चिल्लाई।

"हाँ FicKleness I thy name is woman" रुस्तम ने महेरों की कमर पर हाथ रख गुदगुदाया।

"स्त्री अस्थिर नही, स्थिर है।" अन्ना साहब ने कहा, नारी प्रत्यक्ष राक्षसी है, ऐसा शास्त्र वचन है। "इसका यह स्वभाव बदलता नही। अभयंकर ! जब से विश्वामित्र ने मेनका को···"

"शेम ! शेम !" महेरों ने कहा।

"आर्डर ! आर्डर !" टेबल पर छड़ी पीटकर सुलोचना ने कहा।

"नामदार !...नामदार ! सुनो ।"

"—मेनका को त्यागा, उस प्रसंग के कारण से स्त्री का एक ही प्रकार का स्वभाव है ।"

"अन्ना साहब ! स्त्री का द्वेष न करियेगा, नही तो मैं और महेरी..."

"यह क्या गाली दे रहा है ।" महेरों ने आँखें निकालकर कहा ।

"मैं !" मुँह में का कौर जैसे-तैसे ठिकाने रखकर अन्ना साहब बोले, "स्त्रियो को मै तो महान आदर के साथ देख रहा हूँ । मनू महाराज का वचन है"—कह उसने शेंपेन के गिलास की मदद से कौर गले मे उतारा, "यत्र नार्यस्तु—मालूम है न !"

"नामदार तुम्हारा मुँह लाल हो गया है । देखो इस गिलास में दिखाई देता है । Lovely !" केकी नें सुलोचना से कहा ।

"बेशरम हो रहे हो क्या केकी ?" सुलोचना ने शरमाकर कहा ।

"होऊँ तो न ! पर यह शेंपेन..."

"ज़रा सी ले रही हूँ..."

"यह कही हो सकता है ?"

"शेंपैन ! शेंपेन ! नामदार उठाओ ।" महेरों चिल्लाई ।

"नही थैंक्स..."

"ज़रा सी ।" अन्ना साहब ने कहा, "थोड़ी सी ली तो क्या और अधिक ली तो क्या ? एक बार मुसलमान का पानी पिया या अनेक बार ।"

४

एक घंटे मे ही एक नवीन सृष्टि पैदा हो गई । अन्ना साहब, केकी और पहलवान ने सिगार पीना आरंभ कर दिया । कमरे मे चारों ओर धुआँ ही धुआँ फैल रहा था । पेट भरते ही इन तीनो ने और महेरों ने शेंपेन के दौर पर दौर चालू रक्खे ।

"केकी !" अस्थिर आँख और खोखले गले से अन्ना साहब बोल रहा था, "याद रखना कि चारित्र्य रहित मनुष्य पशु समान है। यह शास्त्र का वचन कभी भूलना नही अ—अह—अह "—उसे हिचकी आई, इसलिए उसको शांत करने के लिए उसने गिलास उठाया "वचन......शास्त्र का मनु......अहअह केकी !"

"महेरां यह तेरे बाप और दादा, सब का टोस्ट ले रहा हूँ···" पहलवान कह रहा था। उसने एक हाथ महेरां की कमर पर रक्खा।

"शेम ! खा न अपने बाप दादा का टोस्ट !" महेरां ने जबाब दिया।

"नामदार ! धीरे से बोलते-बोलते केकी के मुँह से जोर से निकला, "तुम बहुत ही सुन्दर हो······"

"म—मनु महाराज ने कहा है केकी कि 'दृष्टि पूतं न्यसेत्पादं... मनः......पूत समाचरेत्। अब मुझे स्वच्छंदता मे विश्वास नही। मै संयम त···तप और वैराग्य में म···अह अह—महे—"

"यह मनु कौन मुआ है !—" महेरां ने एक पैर टेबल के नीचे फैलाकर एक लात केकी को मारी।

"केकी ! मेरे घर जाने का समय हो गया।" चमकती आंखो से सुलोचना ने कहा।

"मनु महाराज ?—महेरां क्लार्क ! यह प्राचीन आर्यावर्त का आद्य शास्त्रकार। सूर्य के पुत्र को......बाँय ! शेंपेन ? नही ! केकी ! विस्की क्या बुरी ! बाँय विस्की !"

"नामदार ! इस समय क्या जल्दी है ? तुम चली जाओगी तो···" केकी ने टेबल के नीचे से हाथ फैलाकर सुलोचना के पैर पर रक्खा।

"वाय ! जरा सी डाल।" सुलोचना अपने हाथ से उसका हाथ खिसकाने लगी, लेकिन हाथ वहां का वही रहा।

"अन्ना साहब ! ऐसा नान्सेन्स क्या बोलते हो ? तुम्हारे शास्तर

और पलास्तर से तो बाज आये। अन्ना साहब ! खूब जियो। और—और—महेरां, my......" रुस्तम ने काँपते हाथ से गिलास लिया।

"नामदार ! तुम मेरी जिगर हो।" केकी ने काँपती हुई आवाज से सुलोचना के कान में कहा।

सुलोचना इसका जवाब देनेवाली थी पर जीभ सूख जानें के कारण उसने एक स्नेह भरी दृष्टि फेककर ही संतोष मान लिया।

"रुस्तम ! शास्त्र की अ—व—अह—अह— तू अनार्य क्या समझे ? हम तपस्वी···"

"नामदार ! यह क्या बक रहा है ?" महेरां ने पूछा; "अरे रे मर रे तू !" कुर्सी खिसकाकर वह जोर से चीखी। रुस्तम ने गिलास भूल से अपने मुँह पर उँडेल लिया था।

"तपस्वी अर्थात् जोगी—" सुलोचना ने कहा।

"जोगी—मैं—जो—जो—गी" अन्ना साहब ने कहा।

"जोगी—" रुस्तम ने कहा और गाना आरंभ किया :

गुल कारण जोगी बना औ भैस की पकडी दुम।

महेरां खातर जोगी बना औ अन्ना साहब की पकड़ी दुम॥

"मिस सुलोचना ! तप और योग में, व—बहुत अह—अह तप में रूप और रस सब का—तपस्वीभ्योऽधिको योगीः।"—अन्ना साहब का सिर कंधे पर लटक गया।

रुस्तम ने गाना चालू ही रखा।

"गाड़ी धीरे हाँकरे मेहरवाँ गाड़ीवाले !"

"नामदार ! मै तुम्हे चाहता हूँ।" सुलोचना जैसे बहरी हो, सब सुन सके इस प्रकार उसके कान के पास मुँह लाकर केकी ने कहा।

"Don't be a Fool." सुलोचना ने कहा और केकी का हाथ दबाया।

महेरां ने दोनों ओर देखा और दो रुस्तम दिखाई देने लगे, समझ

में नहीं आया, और अभयंकर को रुस्तम समझकर उसके कंधे पर सिर रखकर कहा, "मै तुझे चाहती हूँ।" अभयंकर रोती सूरत हो गया और पागल की तरह बैठा रहा; कुछ न बोल सकने के कारण उसका सिर सहलाना आरंभ किया।

"मुझे कोई तपस्वी कहे···? है हि—म्मत किसकी—अह—मनु महाराज तपस्वी लो—केकी······" कहकर अन्ना साहब ने टेबल पर माथा रख दिया।

रुस्तम गाता ही रहा :—

दरिया किनारे होटल खोलो,
औ पियो बरांडी खीर;
लेकर फिर देखो मत प्यारे,
कहे भाई बमनु फकीर।"

महेराँ अभयंकर को रुस्तम समझकर उस पर शांति से सिर रखे पड़ी रही।

"नामदार! मुझसे विवाह करोगी?"

सुलोचना ने ऊपर देखा। उसकी आँखो के आगे बिजली की बत्ती नाच रही थी और केकी की चार-चार आँखे नाचती थी। उसने हाथ फैलाकर केकी का हाथ पकडा; केकी ने बाँया हाथ सुलोचना के पीछे रखा।

"मेरी प्यारी। माई लव।" केकी की निस्तेज आँखें जल रही थी।

"मेरे दिलदार!" महेराँ अभयंकर का हाथ सहलाती हुई बोल रही थी।

रुस्तम ने गर्दन हिला-हिलाकर गाना चालू रक्खा :

'गाडी होले-होले हाँकरे मेहरबाँ गाड़ीवाले!'

एकदम किसी ने दरवाजा बड़े जोर से खटखटाया। जैसे भूकंप

आ गया हो। दरवाज़ा हिला और पूरी मंजिल गूंज उठी। कोई दरवाज़े पर लात मार रहा था।

सुलोचना घबरा उठी, "कौन है ?"

"जिगर !" केकी ने कहा, "कोई नही। पड़ोसी के घर में साले गधे बसते है......" उसने कुर्सी पर माथा रखकर आँखें बन्द कर ली।

"मेहरबाँ गाड़ीवाले !" रुस्तम ने अंतिम बार गुनगुनाया।

दरवाज़ा ज़ोर से भड़भड़ाया।

"कौन है ?" रुस्तम ने कहा और वह उठा।

"खोलते नही।" सुलोचना ने विनीत स्वर मे कहा।

"क्यों न खोलूं ?" रुस्तम ने तैश में पूछा।

"आओ दोस्त !" कहकर द्वार के पास गया।

"किसके बाप का डर पड़ा है, रे लड़के !" केकी अपने को ही धीमे-धीमे संबोधित करने लगा।

"घूंघट के पट खोल।"

गाते-गाते रुस्तम उठा और दरवाज़ा खोला। गमन दलाल का लातें मार-मारकर लाल हुआ मुख दिखाई दिया। रुस्तम उसके गले से चिपट गया।

"मेरे दोस्त ! गमन ! आओ। तेरी ही कमी थी।"

गमन के पीछे प्रोफ़ेसर कापडिया आये, उन्होंने अंदर से दरवाज़ा घेर लिया और स्तब्ध बनकर कमरे में देखते रहे।

"कौन कापड़िया ?" रुस्तम कापड़िया की कमर थपथपाने लगा, "घबराओ मत। Wel Come. मेहफ़िल तैयार है..."

अन्ना साहब ने ऊपर देखा और बडबड़ाया : "दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं शास्त्रः पूतं वदेत् समाचरेत्।"

केकी अपने को सुलोचना के सहारे, डालकर संतोष से बड़बड़ा रहा था।

महेरा अभयंकर के कंधे पर माथा रखकर सीलिंग की ओर देख रही थी। अभयंकर कुर्सी पर माथा रखे ऊँघ रहा था।

सुलोचना केवल अकेली ही होश में थी और घबराहट द्वारा लौटी हुई चेतना से चारों तरफ देख रही थी। चारो ओर पड़े हुए मित्रो का उसे तीव्र भान हुआ। इस मस्ती का नशा उसे बिल्कुल उतर गया था। शरमायी हुई, घबरायी-सी खड़ी रही, मार्ग भी उसे न सूझा।

उसकी आँखो के आगे कठोर भावनाशील सुदर्शन की निश्चल आँखें दिखाई दी और अदृश्य हो गईं। उसने अधमता का पूरा-पूरा स्वाद चखा।

"सुलोचना !" कापड़िया ने सुंघनी सूँघते हुए कहा।

"गमन ! कुछ लोगे ! कापड़िया क्या लोगे ?" रुस्तम ने पूछा।

सुलोचना उठकर कापड़िया के पास गई।

"सुलोचना, चल !" स्नेह से कापडिया ने कहा, उसकी आवाज़ में व्यंग का बिल्कुल अंश नही था। "नीचे गाड़ी ले आया हूँ।"

"केकी ! Good Night" सुलोचना ने कहा।

"I don't care." सब सुने इस प्रकार वह बड़बडाया, "किसकी पर्वाह है ! जिगर ! Dear ! कल सवेरे—Happy dreams" वह कुर्सी पर से लड़खड़ाता हुआ उठा और दरवाजे के आगे आया।

सुलोचना एक दृष्टि डालकर बाहर निकली। उसके पीछे कापड़िया निकला।

केकी दरवाज़े पर खड़ा-खड़ा सुलोचना को चुंबन भेज रहा था। इन सब लज्जाजनक प्रसंगो के कारण सुलोचना आगबबूला हो गई थी। कापड़िया ने घर जाते समय या रात को एक भी व्यंग का शब्द सुलोचना से नही कहा।

## ५

सवेरे सुलोचना देर मे उठी । जब तक वह नही आई तब तक कापड़िया ने चाय नही पी और जब सुलोचना को खबर मिली कि कापड़िया उसकी प्रतीक्षा मे है तो उसे विवश होकर नीचे आना ही पडा ।

सुलोचना ने चाय बनाना शुरू किया दोनो में से कोई भी नही बोला। आखिर कापड़िया ने चश्मा चढ़ाया, सुँघनी चढाकर गला खँखारा ।

"सुलोचना, तूने पशुशास्त्र पढ़ा है ?"

"नही ।"

"प्रकृति ने 'शरम' जैसी वस्तु किस लिए बनायी है, जानती है ?"

"नही ।" नीचे देखती हुई सुलोचना ने घबराकर कहा ।

"शरम यह एक महाविशाल दुर्ग है, इससे भावी संतान की रक्षा होती है ।"

"किस प्रकार ?" सुलोचना के मुँह से निकल पड़ा ।

"नही समझी ? यदि शरम न हो तो स्त्रियो मे से संकोच नष्ट हो जाय। संकोच के नष्ट हो जाने पर पुरुष की पसंदगी करने का उसे अवसर न मिलता और अवसर न मिले तो Sexual selection कैसे हो ? स्त्री-पुरुष एक दूसरे को पसंद कैसे करे ? और पसंद करने के लिए न रुकें तो प्रेम का उद्‌भव कैसे हो ? इसलिए जितनी अधिक शरम होगी उतनी ही प्रेम के पात्र की पसंदगी अच्छी हो सकती है । समझी ?"

सुलोचना नीचे देखती रही ।

"मै व्यंग नही करता ।" हाथ मलते हुए प्रोफेसर ने कहा, "क्योकि जहाँ स्त्री-पुरुष एकत्रित हो वहाँ व्यंग किस पर किया जाय ? मै उपदेश नही देता क्योकि स्त्री-पुरुष के आकर्षण पर उपदेश का शासन नही । मै तो पशुशास्त्र का सिद्धान्त कहता हूँ—बहुत उपयोगी

सिद्धान्त है।" प्रोफ़ेसर ने आँखें मीचकर सुंघनी चढ़ाई। "वास्तविक प्रेम है या नही यह जानना हो तो लज्जा के आवरण के पीछे नारी को छिपा देना चाहिये। पुरुष आयेगा, उत्सुक होगा तो आवरण का उच्छेद करने का निश्चय कर लेगा। जितना ही श्रम उस पटोच्छेद में पुरुष को पड़ेगा उतनी ही उसकी भक्ति बढ़ेगी और नारी का उसके प्रति मान बढ़ेगा। और लज्जा के इस महादुर्ग का भेदन केवल एकमात्र वास्तविक प्रेम ही कर सकेगा।"

सुलोचना नही बोली।

"तू केकी को चाहती है?"

सुलोचना ने एकदम ऊपर देखा, "हाँ।"

"तू किसी दिन लज्जा के किले मे छिपकर बैठी है?"

"नही।"

"तो किस तरह जाना कि तू उसको वास्तविक प्रेम से चाहती है या वह तुझे वास्तविक प्रेम से चाहता है?"

"मुझे खबर है।"

"अर्वाचीनता ने तुझे निर्लज्ज बना दिया है इसलिए तू पशुशास्त्र के नियमो का उल्लंघन कर रही है। तू शरमाती नही इसलिए तुझसे वास्तविक प्रेम की परख नही होती।"

सुलोचना हँसी।

"केकी तुझे नही चाहता।"

"कैसे समझा?"

"जो चाहता होता तो ऐसी बेशरम पार्टी में प्रणय का प्रदर्शन न करता। वह छिछोरा है, निर्लज्ज है, धन के गर्व में मस्त है। इसके लिए शर्मीली स्त्री की कोई कीमत नही।"

"मै तुमसे सहमत नही।"

"तू लज्जावती होती तो उसकी नालायकी का तुझे तुरन्त पता लग जाता।"

सुलोचना ने गर्दन हिलायी।

"तुझे उसके साथ विवाह करना है?"

"हाँ।"

"पारसी है, लोफ़र है; पापा मनाकर देंगे।"

"मैं जानती हूँ।"

"तब?"

"जहाँ मेरा हृदय वहाँ मेरा हाथ।"

"मैं पापा को मनाऊँ फिर?" आँखें टिमटिमाकर कापड़िया ने पूछा, और एक सुँघनी का सड़ाका मारा।

"आपकी बहुत आभारी होऊँगी।"

"तब एक काम करो।"

"क्या?"

"एक महीने के लिए लजीली बन जाओ और यदि तब तक भी यह तुम्हारा प्रणयी बना रहे तो मैं तुम्हारी मदद करूँगा।"

"ज़रूर!" हँसकर सुलोचना ने कहा और उठी।

बाहर किसी की गाडी आई। सुलोचना का मुँह लाल हो गया, "केकी आया है।" उसने कहा।

प्रोफ़ेसर बोले नही। एक नौकर ने आकर कहा, "बहिन, मगनलाल सेठ आये है।"

"उससे कहना कि बहिन को बुखार आ गया है।" कापड़िया ने कहा।

"Thank you!" सुलोचना ने कहा।

वह उठकर बाहर गई। कापड़िया बहुत देर तक देखते रहे।

उनके मुख पर दीनता छा रही थी। सुलोचना को सामने से नौकर आता हुआ मिला।

"बहिन ! चिट्ठी आई है।"

सुलोचना हर्ष से गद्‌गद् हो चिट्ठी ली और ऊपर अपने कमरे में चली गई। चिट्ठी पर प्रियतम केकी के अक्षर थे।

६

प्रोफेसर कापड़िया बहुत देर तक सुंघनी सूँघते रहे। उनकी आँखें निस्तेज होती गईं। उनका नीचला होठ नीचे को लटकता गया। दो घंटे तक वह निराशा की मूर्ति बने ज्यो के त्यो बैठे रहे।

बारह बजे और वह चौंककर उठे। उन्होंने निःश्वासें छोड़ी, चश्मा हिला-डुलाकर नाक पर ठीक रक्खा और नहाने जाने की तैयारी की।

स्नान से लौटकर थोड़ी देर उन्होंने सुलोचना की प्रतीक्षा की फिर धीरे-धीरे ऊपर गये। सुलोचना का दरवाज़ा बन्द था, उन्होंने खट-खटाया लेकिन कुछ जवाब नही मिला। वह घबराये। क्या सुलोचना ने ज़हर खा लिया ?

फिर बहुत ज़ोर से दरवाज़ा ठोका। सुलोचना ने उसे खोल दिया। कापड़िया अन्दर आते ही स्तब्ध रह गये। सलोचना ने रो-रो-कर आँखें सुजा ली थी, उसके बाल बिखरे हुए थे।

"सुलोचना ! क्या है ?"

"कुछ नही।" सलोचना ने गला खँखारकर जवाब दिया और वह खाट की पाँयत पर बैठ गई।

"यह क्या ?"

"कुछ नही।" दुःख से कातर होकर उस लड़की ने फिर वही जवाब दिया।

"मुझे बतला दे !" विनीत होकर कापड़िया ने कहा।

"यह देखो !" कहकर उसने केकी का पत्र दिया। कापड़िया ने २मा ठीक कर उसे पढना आरम्भ किया। उसका भाषानुवाद इस ५ार था :—

प्रिय मिस जगमोहनलाल !

कल की मूर्खता के लिए मै माफ़ी चाहता हूं। शराब के नशे में यदि मेरे मुख से कुछ ऊटपटांग निकल गया हो तो उस पर कुछ ध्यान न देना। मै पारसी और तुम वैश्य। मुझे जिस प्रकार तुम पहले समझती थी, उस प्रकार ही रहूं तो ?

तुम्हारा,

केकी

एक क्षण के लिए कापड़िया स्तब्ध रह गये। उन्होने धीरे से चश्मा निकालकर पोछा और फिर नाक पर चढ़ाया, सूंघनी सूंघी और हाथ फटकारकर घिसे।

"सुलोचना ! तू इस पशु को चाहती थी ?"

सुलोचना ने सिर झुकाकर 'हाँ' कहा।

"तुझे इस समय ऐसा अनुभव हो रहा होगा कि जैसे तेरा दिल टूट गया हो; पर यह भूल है। तू युवती है। पशुशास्त्र के अनुसार तू योग्य पुरुष की प्राप्ति के लिए प्रयास करे यह स्वाभाविक ही है, और इस प्रयास में यदि आघात पहुंचे तो जैसे दिल टूट गया हो ऐसा लगता है। परन्तु प्रणय प्राप्त कर फिर उसके खोये बिना दिल नहीं टूटता। इस प्रकार जरा सी बात हो जाने पर यदि सब कुछ समाप्त हो जाय तो एक स्त्री भी जीवित नही रह सकती, समझी ? सुना, क्या कहा ?" उन्होने सूंघनी सूंघकर आगे आरम्भ किया, "जीवन की शक्तियाँ नारी और पुरुष को एक दूसरे के पास लाती है। नारी संतान का पिता खोजती है—खोजने के लिए प्रयास करती है। ऐसा प्रयास करना पड़े तो क्या उसके लिए निराश होना चाहिये ?"

सुलोचना खाट पर सिर रखकर रोने लगी। प्रोफेसर कापड़िया दोनो हाथ फैलाकर भाषण देने लगे :

"निष्फल प्रयास में स्वमान पर आघात पहुँचता है, हृदय के बंध टूटते हुए से लगते हैं, क्या समझी ? जुगत करने पर ही जोड़ी मिलती है, खोज समाप्त हो जाय, और फिर पाया हुआ नर खो जाय तभी मादा आकर्षित करने की होस खो बैठती है और जिसे Heart-break—हृदय-भंग कहते हैं, उस दशा को प्राप्त होती है; समझी, सुलोचना ?"

कापड़िया रुके और सूँघनी का सड़ाका लगाया।

"केकी तो एकमात्र प्रयास था। इससे आज पशुशास्त्र की शक्तियों के अभिमान पर आघात पहुँचा है; कल घाव भर जायगा और फिर प्रयास शुरू होगा।"

"बहुत हुआ ! बहुत हुआ !" रोकर सुलोचना ने कहा।

"फिर प्रयास शुरू होगा।" हाथ घिसकर कापड़िया ने कहा, "और किसी दिन शक्तियों की संतुष्टि हो सके ऐसा नर आ मिलेगा।"

सुलोचना ने मात्र अपने रुदन से ही जवाब दिया।

"और उस नर से संतोष होगा।"

"सब पुरुषो से मैं घृणा करती हूँ।"

"कोई नारी नर से घृणा कर सकती है ? प्रयास करे और निष्फलता का ख्याल करने लगे तभी ऐसा अभिनय करती है। पर प्रत्येक नारी का हृदय एक नर की प्रतीक्षा में रहता है; अथवा वैज्ञानिक की दृष्टि से जीवन समृद्ध करने के साधन की प्रतीक्षा करती है।"

"बस करो ! तुम्हारा विज्ञान ही तो मेरा प्राण ले रहा है।"

"विज्ञान को प्राण या पत्थर किसी की पर्वाह नही। नर बिना नारी नही, नारी बिना नर नही।"

"नर मात्र चरित्रहीन है—और नारी मात्र मूर्ख है।"

"नहीं, नारी एकमात्र लोभी है—जीवन की; नर एकमात्र ठग है—जीवन का। लोभी और ठग कभी एक दूसरे से मिले बिना रह सकते हैं ?"

"मुझे कुछ नहीं सुनना।" कहकर सुलोचना खड़ी हो गई।

"और," हँसकर कापड़िया ने कहा, "इतना याद रखना कि यदि स्त्रीत्व प्रयास करे तो कहीं उसका हृदय टूट सकता है ? फिर से खड़े होकर प्रयास करो !"

"You are Brute (तुम जानवर हो)" कहकर मिज़ाज में सुलोचना नीचे कमरे में जाने लगी।

"हम सब Animals first, Angles afterwards—पहले प्राणी—फिर देव—इस समय प्राणी जीवन की प्रथम वृत्ति क्षुधा उत्तेजित हुई है। एक बज गया है।"

"चलो।" कहकर गुस्से से सुलोचना खाना खाने के लिए नीचे उतरी।

---

# सूरत की कांग्रेस

१

बारह बजे काग्रेस का दरवाजा खुला और ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे सारा हिन्दुस्तान फ्रेंच गार्डन में आने लगा हो।

उस समय कांग्रेस थी भारत की छोटी-सी प्रतिमा। वही अमेय विस्तार, वही अनेक दृष्टिवाला झिलमिलाता प्रकाश, वही अल्पजीवी उत्साह, वही पचरंगी चित्रमयता, वही भव्यता का भास, वही सनातन अनन्तता का दर्शन, वही कार्यदक्षता का अभाव और वही कार्यशील एकाग्रता के प्रति अरुचि। इसका स्वरूप बना तो दो उद्देशो से—एक प्रजा में उत्साह का प्रसार करने के लिए—दूसरा अपना प्रतिनिधित्व सिद्ध करने के लिए। इसने दोनो उद्देश्य पूरा किये—कहाँ तक निश्चयात्मक कार्यतत्परता का उपभोग किया जाय। अनेक वर्ष बीत जाने पर भी जन्म के समय दिखाई देनेवाली बुराइयो का अन्त नहीं हो जाता। ऑल इन्डिया काग्रेस और वर्किंग कमेटियाँ व्यावहारिकता लाने का प्रयत्न करती है—फिर भी रंग-बिरंगे मेले की-सी अस्थिर मनोदशा बदली नही।

लेकिन जो एकमात्र जिज्ञासा शांत करने के लिए वहाँ जाता वह भक्तिभाव से कंठो बँधा आता। समग्र उत्साह की आँच उसे लगती। दृष्टि की परिधि तक फैली हुई जनता भारत माता की प्रचड शक्ति का ध्यान दिलाती। बसंत से रगे हुए किसी विशाल महावन की शोभा की विडबना करता हुआ मंडप भव्यता के भाव से हृदय को दबा देता था।

उस सिंधी डेलिगेट के मर जाने से काग्रेस ढाई बजे आरंभ होने

खाली थी; पर डेढ बजते ही वंदेमातरम् की पुकार बार-बार होने लगी और अधीरता के स्पष्ट दर्शन हुए। थोड़ी देर में 'दक्षिणी कैंप' आया—'शिवाजी महाराजा की जय' का घोष करते हुए—सूरत के सद्भाग्य से ही प्राप्त वास्तविक जयघोष। नारायण पटेल की थोड़ी-सी सेना गुजरात डेलिगेटो के विभाग में बैठी थी। केरशास्प और थोड़े से दूसरे व्यक्ति बहुत दूर एक ओर दरवाजे के आगे इधर-उधर अलग-अलग जा बैठे। बाकी आधी सेना को नारायणभाई हाथ में डंडा लिये आगे बढ़ाता हुआ महाराष्ट्र विभाग मे आया।

दो सूरत-स्वयंसेवक आये : "भाई, यह तो महाराष्ट्र है। गुजरात तो उस ओर है।"

"हम महाराष्ट्री है।" नारायणभाई ने एक सेनानी के रौब से डंडा जमीन पर ठोकते हुए कहा।

वह हँसा, "चतुरभाई, आगे चलो।" नारायण ने आज्ञा दी।

"टिकट लाओ।"

"लो देखो, आँखे फाडकर !" नारायणभाई ने धौंस जमाई और चालीस टिकट महाराष्ट्र और नागपुर के बाहर निकालकर दिखलाये।

"खड़े रहो मै कॅप्टेन को बुला लूँ।"

"अपने कैप्टेन से कहना कि बैल हाँके, बैल !" कहकर नारायणभाई और उसकी सेना महाराष्ट्र विभाग मे गई और जयघोष किया, "शिवाजी महाराज की जय !"

"गुजराती होकर शिवाजी महाराज की जय बोलता है ? शेम !" एक अभिमानी गुजराती ने कहा।

"अरे ओ सूरती लाला ! जब सूरत लूटा गया था उसे भूल गया क्या ?" नारायण बोला, "शेम, तुझे और तेरी सात पीढियों को !"

"शी—शी—शी—चुपचाप बैठ जाओ—वंदे मातरम्—शिवाजी महाराज की जय—वंदेऽ—मातरम्" की जोर की पुकारे सुनाई दी।

केरशास्प खड़ा होकर रूमाल हिला रहा था। तुरन्त नारायण ने कुर्सी पर खड़े होकर 'वंदेमातरम्' आवाज लगाई। चारो ओर 'वंदे मातरम्' का घोष गूंज उठा, कितने ही समझे-बेसमझे ही चिल्लाने लगे और तिलक, खापरडे, अरविंद बाबू और मोतीलाल घोष मंच पर आये। सबकी आँखें अरविंद बाबू को देखने के लिए लालायित हो उठी। कैसी सादगी, कैसा बुद्धि-तेज, आँखो में कैसी दिव्य चमक! जैसे देव! 'परित्राणाय साधुनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्' अवतीर्ण हुआ अवतार! वंदे मातरम्।

फिर आये पारेख, अंबालाल और जगमोहनलाल; रथर फ़ोर्ड और नेविन्सन, वंदे मातरम् के एक दो जयघोष के साथ गोरी चमड़ीवालो की ओर तिरस्कार-प्रदर्शन मे 'शेम' की आवाजें हुईं।

सुदर्शन और मगन पड्या साथ आये, और उनके चरणो में बैठ गये।

फिर किसी की समझ में नही आया। पर एक व्यक्ति, ढिगना और सिर पर काला दुपट्टा बाँधे हुए पास से आया। रास्ता न होने के कारण रस्सियो के नीचे से आया, पीछे मोहन पारेख आ रहा था।

'यह कौन?' एक ने पूछा।

'लालाजी।' पारेख ने कहा।

'लालाजी की जय! जय! लाला लाजपतराय की जय! लाल-बाल-पाल की जय!' डेलिगेट खड़े हो गये—कुर्सी पर चढे। रूमाल हिलाने लगे लालाजी की जय, 'वंदे मातरम्' प्रत्येक आदमी के मुंह से निकला। दस मिनट बीते।

'यह डिपोर्ट (देशपार) कर दिया गया देशनायक! यह पंजाब का शेर! लालाजी की जय।'

किसी तरह लोग बैठे। बड़ी मुश्किल से स्वयंसेवको ने शांति

स्थापित की। सभा में चेतना आ रही थी और बाहर से 'वंदे मातरम्' की आवाज आई—

'प्रेसीडेंट—प्रेसीडेंट—रासबिहारी घोष' सुनाई दिया और स्वयसेवको की टुकड़ी आई। पीछे कैप्टेन मोहनलाल दीक्षित—उसका छटादार शरीर, लश्करी ड्रेस में देदीप्यमान हो रहा था—और डा० रासविहारी घोष आये—सौम्य और शांत, विशाल भाल के नीचे, भाषा की समृद्धि और धाराशास्त्र का भार वहन करते हुए—ज़रा क्षोभ से उदास, और विजय-गर्व से ज़रा मुस्कराते हुए। फिर सर फ़ीरोजशाह मेहता—चमकती हुई पगड़ी और भव्य मूंछो मे—चारों ओर देखते हुए, मुस्कराते हुए—अपनी राजनीतिज्ञता मे सकारण श्रद्धा का अनुभव करते हुए, और सुरेन्द्रनाथ—गौरवशाली दाढी तथा काले चोगे मे, छोटे-छोटे पैरो से लम्बे क़दम धरते हुए, चारो ओर देखकर जैसे जनता पर एक मोहिनी फेकते हुए, और वाञ्छा,—और सीतवाड़,—और गोखले—अथाह चिंता से अस्वस्थ, उदास और क्षुभित; और पंडित मदनमोहन मालवीय—किसी वैदिक ऋषि के ललाट सा गांभीर्य धारण किये हुए, धनुष की तरह शरीर को खीचने के लिए तैयार छोटी और चंचल आँखे इस तूफान मे परिणाम के चिह्न देखने के लिए अधीर; और साथ मे मोतीलाल नेहरू; लंदन के बहुत से दर्ज़ी निराशा से हतप्रभ हो जाये ऐसे सुन्दर लिबास में—सभा नाच उठी—दस हज़ार उत्साहोन्मत्त आवाजो ने डा० घोष का स्वागत किया—समस्त पंडाल मे रूमालो की फरफराहट समुह-सुलभ उत्साह के वेग से बढ़ती गई। दस हज़ार मनुष्यो ने प्रमुख को अपने हृदय का प्रमुख पद दे दिया हो ऐसा लगा।

पाव घंटे तक वह उत्साह रहा। कुर्सी पर बैठे हुए फ़ीरोजशाह को शाति हुई। इस लोकप्रियता मे किसकी हिम्मत थी कि विरोध का अंश मात्र प्रकट कर सके?

संगीत शुरू हुआ। थोड़ा सा शोर हुआ फिर शांत हो गया, 'बैठ जाओ,' 'सुनो' 'Be quiet!' 'Down with the chair' की बार-बार आवाजें आईं।

इसी बीच में लालाजी तिलक के पास आये।

'प्रस्ताव मिल गये न?'

'नहीं।' तिलक ने गुस्से में कहा।

'अभी मिले नही?' चकित होकर लालाजी बोले।

'हमारा किसी का कुछ मूल्य ही नहीं?' खापरडे ने कहा।

लालाजी गोखले के पास गये।

'इन लोगो में हमारी कोई नही सुन सकता।' तिलक ने खापरडे से कहा।

'क्या करें?' उन्होने जवाब दिया।

इतने में एक वालंटियर आया। 'सर फ़ीरोज़शाह कहते है कि दोनो को प्लेटफार्म पर आ जाना चाहिये।' उसने कहा।

तिलक ने सिर हिलाया, 'मै तो यही बैठूंगा।'

संगीत समाप्त हुआ और त्रिभुवनदास मालवीय सत्कार प्रदर्शन के लिए खड़े हुए। साधारण आवाज़ और अनाकर्षक रीति से उन्होने भाषण पढा। सूरत के इतिहास की लोगो को पर्वाह न थी। 'शिवाजी ने सूरत लूटा था,' यह सुनकर किसी ने 'शिवाजी महाराज की जय' का उच्चारण किया। एक नही अनेक बार समाधानी—Moderation—नरमदल के सूत्रोच्चार किये गये और कहीं-कहीं 'शेम' 'शेम' की टीका-टिप्पणी भी हुई। भाषण समाप्त हुआ और पलभर के लिए शांति फैली रही।

२

शिवलाल शराफ ने इस समय छपे हुए प्रस्ताव की नकल तिलक

के हाथ मे दी । तिलक ने उसे देखकर कहा, Betrayed (धोखा हुआ) ! नारायणभाई ने इतना ही सुना और बाँह चढ़ायी ।

दीवान बहादुर अंबालाल साकरलाल सभापति के चुनाव की दरख्वास्त लेकर खड़े हुए 'सभापति अच्छे—योग्य—डॉ० घोष—'

'कभी नही ?' नारायणभाई ने ज़ोर से कहा, 'नहीं…नहीं…नही' दूसरी जगहो से आवाज़ आई । फिर शांति स्थापित हुई । दीवान बहादुर ने भाषण समाप्त किया ।

सुरेन्द्रनाथ प्रस्ताव का समर्थन करने के लिए खड़े हुए । अपनी लोकप्रियता के गर्व में वे आगे आये । सिर पीछे घुमाकर उन्होंने श्रोतागण की शक्ति को मापा, उनको आज वह अद्भुत लगी । जब वह बोलने खड़े होते तो उत्साह से पागल होकर कांग्रेस जयघोष से उनका सम्मान करती । आज भी, हाँ ! जयघोष शुरू हुआ—

'डा० घोष नही !' नारायणभाई ने खड़े होकर पुकार की ।

'बैठ जाओ……सुनो—आर्डर—'

'मिदनापुरी सुरेन्द्रनाथ !'—जहाँ सुरेन्द्रनाथ ने पुलिस की मदद से देशभक्तों को धमकाया था उसकी याद दिलाकर, नारायणभाई कुर्सी पर खड़ा हो गया । उसके अनुयायी भी कुर्सी पर चढ़कर बोलने लगे ।

'I have great pleasure' ( मुझे बहुत आनन्द होता है ) सुरेन्द्रनाथ की आवाज़ एक सबल प्रतिध्वनि के साथ बाहर निकली ।

'बैठ जाओ ! बैठ जाओ !……' .

'Down with Dr. Ghosh !… '

'Remember Nagpur.' एक दक्षिणी वीर ने कुर्सी पर चढ़कर पुकार की, 'तिलक महाराज की जय !'

'शिवाजी महाराज की जय !' केरशास्प की पलटन ने आवाजे उठाई ।

धीरे-धीरे लोग खड़े होते गये।

'शेम ! शेम ! Sit down—बैठ जाओ' की चारो तरफ तरंगें फैलने लगी।

'In seconding the resolution moved by my friend Dewan hahadur Ambalal—' सुरेन्द्रनाथ ने जोर से चिल्लाकर कहा।

स्वयंसेवको ने दौड़ादौड़ करना आरम्भ किया। "Be quiet—बैठ जाओ।" कुछ तूफ़ान शांत हुआ।

'Dr. Rash Bihari Ghosh'—सुरेन्द्रनाथ की प्रचंड आवाज नें और भी प्रचंड गर्जना की।

'No, no!' दोनो हाथों से नारायणभाई ने निषेध किया।

'No, no, no, no....' एक महान् तरंग की तरह सम्पूर्ण मानव-समुद्र-के समतल पर फैल गया।

'Yes, yes—'

'बैठ जाओ !'

'कोकस की पी-ई-ई'

'नहीं—नहीं—'

'Down with Surendra Nath.'

'वंदे मातरम्।'

'शिवाजी महाराज की जय !'

'Down with Tilak!'

'Shame!'

प्रत्येक मुख से अलग-अलग घोषणा निकलनें लगी। पहले वसंत में कोपलो की तरह रूमाल नाच रहे थे; अब पतझड़ में शाखाये हवा से हिल रही हो, इस प्रकार हाथ ऊपर-नीचे होनें लगे। मित्र और

शत्रु—चिल्लाने मे, हाथ हिलाने में, अशांति फैलाने मे—एक हो गये।

मालवीय खड़े हुए और घंटा बजाया, हज़ारों गलों से तिरस्कार की हँसी बाहर बिखर पड़ी। तुमुल तो चलता ही रहा।

जलनिधियो के शासन मे मस्त—पलभर में तूफान और पलभर मे शाति केवल अपनी उँगली के इगित पर ही साधनेवाले वरुणदेव—वृद्ध और भव्य—अन्त मे अपनी विजय है इस विश्वास से, हँसते मुख से, किसी तूफानी समुद्र की विद्रोही तरंग देख रहे हो इस प्रकार सुरेन्द्रबाबू देखते रहे।

तरंगे तूफानी थी लेकिन अपने में ही शांत हो गई। वरुणदेव ने शिखर-सिहासन पर से गर्जना की, 'Doctor—Rash—Bihari—'

तरगे उछली, उनका तूफान और गर्जना बढी। प्रत्येक तरंग मे प्रलय की खँजरी बजने लगी। प्रत्येक तरंग वरुणदेव की विडम्बना करने लगी।

'No, no. Down, down, Yes, yes—'

'I—will be—heard' वरुणदेव ने भयंकर गर्जना की और प्रत्येक तरग में, बादल की गडगड़ाहट सदृश शासन की प्रतिध्वनि समुद्र के दूसरे किनारे पर सुनाई दी, पर एक ताल पर चढी हुई सागर की तूफानी तरंगें आकाश का चुम्बन करने के लिए पागल हो उठी; उसने महागर्जना की, एक महाअस्त्र से पर्वत के टुकड़े-टुकड़े हो जायें इस प्रकार उन्होने शासन को छिन्न-भिन्न कर डाला। चारो ओर बादल गरजे और बिजली चमकी।

'I will be—'

'No—no—no!'

वरुणदेव अधिकार-भ्रष्ट हुए। उनका समुद्रो पर का शासन नष्ट

हुआ। वह थक गये—शांत होकर अपने आसन पर बैठ गये। प्रजा-जीवन के पिता को इस समय पुत्रों ने पराजित किया। धीरे-धीरे तूफान शांत हुआ। लोग बैठने लगे।

फीरोजशाह के माथे पर बल पड़ गये। डा० घोष अपमानित होकर लाल-टूल हो गये। गोखले ने स्पष्ट आँसुओं में देश का सत्यानाश देखा। दूसरे सब नेता मूढ़ से बैठे रहे। मालवीय अस्वस्थ शरीर से सिंहासन में सिमट गये।

'ठीक हो रहा है।' खापरडे ने कहा।

तिलक महाराज की एक आँख न समझ में आये ऐसी चपलता से खुली और बन्द हुई। अरविंद बाबू के अस्थिर नयनों में अमानुषी स्थिरता छा गई।

सुरेन्द्रबाबू एकदम टेबल पर कूदे; 'Dr. Rash—Bihari—'

नारायणभाई तुरन्त कुर्सी पर कूदा, 'No—no—no....'

खूँखार सिंहनी की तरह सारी सभा गुर्राई; 'No—no—no' दस मिनट एक नरसिंह के शब्दों का समूह-सिंह ने प्रतिशब्द किया; नरसिंह की गर्जना मंद पड़ गई।

मालवीयजी ने घंटा बजाया—एक बार, दो बार, तीन बार। समूह-सिंह की गर्जना में तिरस्कार की ध्वनि आई अर्थात् इतना ही परिणाम हुआ।

'क्या करें?' मालवीयजी ने सर फीरोजशाह से पूछा।

'कांग्रेस मुलतवी रखो: Sittings suspend कर दो' सर फ़ीरोजशाह ने कहा।

मालवीयजी ने प्रतिनाद किया, 'Suspended, Suspended!'

सुरेन्द्रबाबू फिर मैदान में उतरे—क्रोध से आकुल होकर बड़बड़ाये: 'It is an insuet to Bengal.'

सब नेता उठकर पीछेवाले दरवाजे की ओर चलने लगे......

उनके हृदयों में निराशा की वृद्धि प्रज्वलित हो रही थी। क्या होगा ? क्या होनेवाला है ?

लोग समझे नही कि क्या हुआ, और दौड़ादौड़ आरम्भ हुई । क्या कांग्रेस भंग हो गई ?

अरविंद बाबू तिलक महाराज के पास आये ।

'मि० तिलक, तुम्हें श्रद्धा नही थी, देखो ?' कहकर उन्होंने तूफानी जनसमूह की ओर उँगली से संकेत किया, 'That is the Nation. Look at it. From today, it is the only power in India (यह राष्ट्र, इसकी ओर देखो, आज से हिंद मे एकमात्र यही सत्ता है ।)

लोगो की भीड़ जमा हुई। नारायण तथा और कितने ही दक्षिणियो ने लकड़ियाँ ऊँची कर शिरच्छत्र बनाया और इस प्रकार की सुरक्षा में गरमदली नायक बाहर निकले ।

सुदर्शन ने शिवलाल सराफ के साथ शेकहैंड किया, 'दोस्त ! माँ का भविष्य तेजोमय है ।'

'हां ।' सराफ़ ने जवाब दिया ।

सुदर्शन ने अपने निवास-स्थान पर आकर एक कार्ड धनी को लिखा ।

३

कलकत्ता कांग्रेस ने बायकाट आंदोलन का अनुमोदन किया था; तिलक महाराज को मिले हुए प्रस्तावों मे केवल परदेशी माल का बायकाट—अच्छा हो या बुरा, पर जब तक विदेशी सरकार, शिक्षा, न्याय, विचार और आचार इन सब का बायकाट न हो तब तक स्वराज्य कैसे मिल सकता है ? और कलकत्ता कांग्रेस ने वह स्वीकार किया तो फिर फीरोजशाह कौन जो उसे अस्वीकार करे ?

फीरोजशाह भी इस विषय मे दृढ थे। कांग्रेस ह्यूम ने स्थापित की, उस जैसो ने ही उसका पालन-पोषण किया, उसका ध्येय ब्रिटिश

साम्राज्य में स्वतंत्र स्थान हो, उसकी पद्धति नियमित हो, राज्य व्यवस्थात्मक आन्दोलन हो, उसकी प्रेरणा इंग्लैंड के स्वातंत्र्य प्रेमी लोग हो, उसका मुख्य शस्त्र स्वातंत्र्य प्रेमी आंग्ल प्रजा की न्यायवृति हो। यदि बहिष्कार का पूर्ण आन्दोलन कांग्रेस स्वीकार कर ले तो इन सब का क्या होगा? और ये सब चले जायें तो फिर कांग्रेस न हो तो क्या?

सर फीरोजशाह, डा० घोष, सुरेन्द्रनाथ, गोखले, वाच्छा, मालवी—ये सब इस बात पर पूर्ण सहमत थे। इन्होंने अपने मस्तिष्क में व्यावहारिकता को प्रधानता दे रक्खी थी। जो न साधा जा सके उनकी इच्छा नही करनी चाहिये, यह उनका सूत्र था। उनमें से बहुतों ने कौंसिलो में जाकर व्यावहारिकता की विजय साधना की थी। सबने ह्यूम और वेडले से रथरफोर्ड और नेविन्सन जैसो के स्वातंत्र्य प्रेम की मदद ली थी।

इनमें से बहुतो ने कांग्रेस रहित, प्रजा-जीवन रहित, अंधकारमय, विभक्त और निर्माल्य रूप भारत देखा था; भारत में राष्ट्रीय एकता है नही और होना आसान भी नही, वह भी ये देख सकते थे; और उनका यह भी अनुभव था कि भारतीय चारित्र्य में कर्तव्य-दक्षता और चेतना जितनी चाहिये उतनी नही है। विप्लव द्वारा—, अठारहवीं सदी की अन्धा-धुन्धी की पुनः स्थापना करने से डरते थे। ब्रिटिश साम्राज्य बिना विजय नही, यह उनका एक सचेत सिद्धांत था।

'जगमोहनलाल! वह अपनी Convention की योजना लाओ तो!' फीरोजशाह ने कहा।

'मैंने कहा नही था?'

'मैं अब देख सकता हूँ।'

मस्कती के बंगले में डा० घोष के ठहरने पर भारतीय राजनीतिज्ञ विशेष चिंतातुर थे।

तिलक महाराज के हृदय में अपूर्व श्रद्धा और शक्ति का संचार

हो गया था। उनका तो एक ही दृष्टिकोण था पेशवा से राज्य छीननेवाले ब्रिटिशो का विरोध। बहिष्कार होगा या नही, यदि नही हुआ तो क्या विप्लव होगा? इसका भी वह विचार नही करते थे। क्या प्रस्तावो द्वारा अंग्रेजी साम्राज्य का अन्त हो सकता है—यह निश्चय करने से पहले इस पर विचार क्यो किया जाय? कोई भी प्रस्ताव, कोई भी आन्दोलन—जिससे और अधिक असंतोष पैदा हो वह स्वीकार किया जाय या नही—इसमे पूछना ही क्या? किसी भी प्रसंग से लाभ उठाया जा सकता है।

सार्वजनिक जीवन में फीरोजशाह और गोखले के हाथ के नीचे रहते हुए उन्हे असंतोष रहा था। रानाडे—पूना के प्रौढ़ संप्रदाय के संस्थापक—उनकी ओर कड़ी नजर रखते थे। इस संप्रदाय के महागुरु फीरोजशाह और गोखले। यह सप्रदाय दफना दिया जाय यह उनका और उनके सप्रदाय का जीवन-ध्येय था। उस ध्येय-साधना का अवसर सूरत में प्राप्त हुआ था। क्यो न उसका उपयोग किया जाय?

उनकी पिछली रात की अश्रद्धा और घबराहट मिट रही थी। बायकाट अर्थात् बायकाट—यही तो श्वास और प्राण था। यह स्वीकार न हो तो अवश्य ही वह दूसरे अध्यक्ष की दरख्वास्त पेश करें। हमें विग्रह नही करना है, विग्रह के लिए हमे दुःख है पर 'बायकाट म्हणजे बायकाट' तिलक महाराज ने दृढ़ता से सूत्र उच्चारण किया। शान्त, नम्र, धैर्यशील अरविंद बाबू चुपचाप देखते रहे। उनकी आंखे जैसे श्रीकृष्ण को देख रही हो इस प्रकार ध्यानस्थ दिखाई दी। उन्हें अकुलाहट नही थी और न थी अश्रद्धा ही। वह तो केवल एक ही वस्तु देख रहे थे—अपूर्व, अद्वितीय, भारत-राष्ट्र। वे एक ही पद्धति में विश्वास रखते थे—निष्काम कर्म। वे एक ही शास्त्र मानते थे—बायकाट—बहिष्कार इस सर्वव्यापी बहिष्कार से अंग्रेजी साम्राज्य कोकंपा देने की उनको एक महत्वाकांक्षा थी। निर्बलता उनको कही भी दिखाई नही देती थी।

व्यावहारिकता का नाम सुनकर वे हँसते थे; राजनीतिज्ञता यह उनके लिए एक पागलपन था। राज्य-व्यवस्था यह उनके लिए एक क्षणिक बुद्बुद् । आत्मा के ओज के समान ही राष्ट्र का जन्म होता है—यही उनके लिए व्यावहारिकता और यही राजनीतिज्ञता थी। वह टस से मस हो सकें यह संभव न था।

भाग्यशाली देश होता तो धीर, गंभीर राजनीतिज्ञता, अवसरवादी कौशल और राष्ट्र-विधायक की दृष्टि इन तीनो का सुयोग्य गढ़ता है, व्यवहारपटु देश केवल राजनीतिज्ञता में विश्वास रखता है, प्रगतिशील होने का इच्छुक देश अवसरवादी कुशलता का सत्कार करता है। स्वतन्त्र होने के लिए तत्पर और अधीर देश आर्षदृष्टि स्वीकार कर लेता है। परन्तु सूरत मे भारतीय राष्ट्रीयता कहाँ थी ?

सुदर्शन और उसके मित्र तो विजय के नशे में चूर बन गये। उन्होंने समाधान का प्रयास छिन्न-भिन्न कर दिया, कांग्रेस में तूफान पैदा कर दिया, नेताओ द्वारा इतिहास का निर्माण कराया।

उस दिन सूरत शहर में उवलते हुए देग की तरह लोगो के दिलों में खदवद-खदवद हो रही थी। क्या हुआ ? क्या होगा ? गरमदल में शक्ति आ गई। नरमदल में चिंता का पार नही था। सुरती नागरिक कहने लगे : 'ये······शिवाजी की तरह सुरत लूटने आये है ?' अव क्या करे ? समाधान कैसे हो ? कल क्या होगा ? कौन बीच में पड़े ? संदेशे पहुँचे, वातचीत चली, सूचनायें दी गईं। हम क्या करें ? देश का क्या होगा ? कांग्रेस के गौरव का क्या होगा ? कांग्रेस के दुश्मन हँसेंगे तो ? उनकी चढ वनेंगी तो ? स्वदेश-भक्ति किस में मानें ? समाधान मे या उद्धतपन में ? संध्या हो गई पर कुछ हुआ नहीं।

गोखले—न्यायी, विद्वान, शान्त—कुछ न कर सकेंगे ? कौन बीच में पडे ? कौन मनाये ? कौन माने ?

तिलक निश्चल थे। 'बायकाट' का प्रस्ताव रहने दो नहीं तो प्रमुख के प्रस्ताव का सुधार पेश कर दूंगा। हमें तूफान न तो करना है और न कराना ; पर देश-द्रोह हो कैसे ?

४

२७वीं की सवेरे भी सबके मन उद्वेलित और अनिश्चित थे, पर आज सब शांति से काम होगा ऐसा लग रहा था।

स्वयसेवक ध्यान से काम कर रहे थे, डेलिगेट चिंता से एक बजने की प्रतीक्षा में थे, नेताओं के प्राण व्यग्र थे ही। क्या मत-भेद था यह भी अधिकांश व्यक्ति नहीं जानते थे, क्या लेनेवाला था इसकी तो कल्पना करना भी असंभव-सा लगता था। एक भयानक गहरे बादल की तरह अस्वस्थता कांग्रेस पर छा रही थी।

पहले दिन की तरह सब आ-आकर बैठने लगे। आज न तो तूफान करना और न होने देना है, ऐसा शुभ संकल्प सबके मुख पर दिखाई देता था।

सवेरे सुदर्शन और उसके मित्रों ने विचार किया, 'आज क्या हो ? क्या फिरोजशाही कांग्रेस हो सकती है ? नरमदल वाले ! सुधारो नहीं तो मरो !' नारायणभाई ने यह बड़े ही उत्साह से कहा। कल की पानीपत की लड़ाई इसीने जीती थी ऐसा लग रहा था।

नेता आने लगे। लोगो ने जयघोष से उनका स्वागत किया। कल की अपेक्षा आज के जयघोष में अधिक उत्साह था। 'शिवाजी महाराज की जय' बहुत कम बोली जा रही थी। आशा की किरणों ने सूर्य की किरणों से सहयोग कर पंडाल के वातावरण में प्रफुल्लता ला दी थी।

फिर भी सब के मन शंकित थे। क्या होगा ? प्रमुख पधारे। जयघोष-परंपरा की सीमा न रही। कल की अपेक्षा आज स्वागत में —हृदय में भक्ति थी। नेता बैठ गये। संगीत आरम्भ हुआ।

तिलक महाराज ने सुदर्शन को बुलाकर एक चिट्ठी स्वागत समिति के अध्यक्ष मालवीयजी को देने के लिए कहा। चिट्ठी लेते ही सुदर्शन का हृदय प्रफुल्लित हुआ। इस चिट्ठी में कांग्रेस को उड़ा देनेवाली बारूद थी। उसने जाकर मालवी को दी। थरथराते हाथ और फीके मुहँ से उन्होंने सर फीरोजशाह को बतायी। सर फ़ीरोज़शाह ने लेकर गोखले को दे दी।

सुरेन्द्रबाबू फिर मंच पर आये और बोलने लगे। लोगों नें उन्हे सुना। जिस प्रकार मस्त सांप को मुरली नचाती है उसी तरह धीरे-धीरे उनकी वाक्पटुता सावधानी से कांग्रेस को नचाने लगी। थोड़ी हँसी, थोड़ी तालियाँ इत्यादि होने लगी। सब जगह शांति फैली रही और जब भाषण समाप्त हुआ तो सभा ने तालियो से उनका सत्कार किया। वह हँसे : अन्त मे सभा उनके वशीभूत हो ही गई।

मोतीलाल नेहरू अनुमोदन करनें के लिए खड़े हुए—थोड़े से शब्दो में और मीठी आवाज़ से।

उसके समाप्त होते ही मालवीय खड़े हुए और डा० घोष को अध्यक्ष पद लेने के लिए कहा—तिलक महाराज कुर्सी से उठकर व्यास-पीठ पर गये। अंग-अंग से काँपते हुए, पगड़ी और दुपट्टे को क्षोभ से संभाले हुए, बाईं आँख और ओठ की चंचलता से मानसिक अस्वस्थता का परिचय देते हुए आगे बढ़े।

दो स्वयंसेवक रोकने आये पर सुदर्शन और मोहन पारेख ने उन्हें मना कर दिया।

पल भर में शान्ति फैल गई। प्रत्येक आँख व्यासपीठ के ऊपर बीच में खड़े हुए तिलक पर ठहर गई। कुछ हो रहा था। मरण और जीवन की अनी पर बात आ गई थी। जिस क्षण के लिए देव और दानवों नें अवतार लिया था, क्या वही क्षण तो नहीं आ गया ?

मालवीयजी की आवाज़ बैठ गई। क्या है ? उन्होंने अस्पष्ट आवाज़

में पूछा। अध्यक्ष के सिंहासन पर डा० घोष त्रिशंकु की तरह अधर खड़े थे।

'मैंने नोटिस दे दिया है। मुझे सभा स्थगित रखने का प्रस्ताव है। मेरा अधिकार है।' कन्धे पर का दुपट्टा कमर पर लाकर और नीचे का छोर कन्धे पर ढालते हुए तिलक ने कहा।

'आप नही कह सकते। आप Out of order (क्रम-विरुद्ध) है।'

'मुझे अध्यक्ष के चुनाव मे सुधार का प्रस्ताव उपस्थित है।' तिलक ने कहा, 'आप प्रमुख नही है।'

'मै हूँ, आप क्रम-विरुद्ध है।' डा० घोष ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा।

'आप अध्यक्ष नही चुने गये……'

—और सभा ने भयंकर शोर-गुल आरम्भ किया। प्रत्येक व्यक्ति खड़ा हो गया। जिससे हो सका वह कुर्सी पर चढ़ बैठा; जिससे बोला गया वह यथाशक्ति बोलने लगा। सूरतवाले क्रोधावेश में तिलक के और दक्षिणी क्रोधावेश मे प्रमुख के विरुद्ध; और प्रेक्षक क्रोधावेश में सबके विरुद्ध गरजने लगे।

डा० घोष खड़े हुए। मंच पर जाकर घंटा बजाया। प्रलय के समय कोई आरती उतारे इस प्रकार घंटानाद कुछ सुनाई दिया, कुछ न सुनाई दिया और समाप्त हो गया।

व्यासपीठ के संरक्षक स्वयंसेवक दौडे। यह तिलक कौन—Down with Tilak! दो एक व्यक्ति लाठियाँ लेकर आये। अध्यक्ष का हुक्म मानना चाहिये। 'Down the Platform.' गोखले कूदकर बीच में आये और हाथ आड़े कर खड़े हो गये: 'खबरदार!'

तिलक के जीवन के भव्य क्षण थे। मृत्यु के मुख में, गरजते हुए, उछलते हुए मानव-सागर की तरगो के सामने उन्होने स्वस्थता अपनायी। गर्वयुक्त शान्ति से खड़े रहे।

'Do your worst. I am here to move the amendment, And move it I shall. ( तुमसे जो हो सके करो, मैं सुधार पेश करने आया हूँ और करूँगा ही)' वह बोले।

और विरोधी मानव-सागर ने मर्यादा भंग आरंभ कर दी। कुर्सियाँ गिराई गईं, रस्सियाँ टूट गईं, पीछे के लोग आगे आ गये, रास्ते ठसाठस भर गये। दक्षिण और मध्य प्रान्त के डेलिगेटो के दिमाग़ फिर गये। क्या तिलक को—तिलक महाराज को—पूना के केसरी को मार डालेंगे? किसकी हिम्मत है! नारायणभाई ने गर्जना की, उसका खून खौलने लगा। तिलक महाराज पर आक्रमण! 'तेरी ऐसी······' कहकर नारायण भाई नीचे झुका—एक दक्षिणी जूता उठाया···और ताककर मारा फ़ीरोजशाह को! वह पड़ा फ़ीरोजशाह पर—वहाँ से उछला और पड़ा सुरेन्द्र बाबू पर।

कुछ क्षण तक यह सब क्या हुआ, समझ में नहीं आया, सबके होश गुम हो गये। दक्षिणवालो ने आक्रमण किया यह जानकर सब खड़े हो गये। खड़े होते ही सूरती स्वयंसेवक उनकी मदद के लिए आये, उनके दौड़ते ही दक्षिणियो ने समझा कि तिलक महाराज मारे गये।

'शिवाजी महाराज की जय' बोलकर नारायणभाई ने प्लेटफार्म पर कूदकर तिलक महाराज को लाठी दी। दक्षिण और नागपुर चारों ओर से प्लेटफार्म पर आ घँसे और नायक को बचाने के लिए व्यूह निर्माण किया। नरमदली नेता पीछे के दरवाज़े से निकल भागे। सारी सभा गरजती, कूदती आगे घँस आई। दो सौ मनुष्य मंच पर चढ़ आये···और भयंकर कड़ाके के साथ मंच टूट गया···।

नि.शस्त्र मनुष्य भी पलभर मे शूरवीर हो गये, और कुर्सियाँ और डंडे उछले, बजे, टूटे······दस हज़ार भारतवासियो ने खडकी के बाद राजनैतिक प्रश्नो में पहली बार शूरता दिखाई।

पुलिस ने हाल पर क़ब्ज़ा किया।

तीन सौ दक्षिणियो ने लाठियाँ ऊँची कर जाने के लिए सुरक्षित मार्ग बनाया, और तिलक महाराज—'तिलक महाराज की जय' और "Down with Rash Behari' की पुकारो से बधाई प्राप्त करते पंडाल के बाहर निकले। नेता नेतृत्व भूलकर तबुओ में आ बैठे। उन्होंने तो पक्का विश्वास कर लिया कि गरमदल ने जान-बूझकर डंडेबाजी शुरू की थी।

'शेम ! यह Politics ?' एक ने कहा।

'जैसे सूरत लूटने के लिए इकट्ठे हुए हों।' दूसरे ने कहा।

'You are unfit for anything.' तीसरे ने ठीक-ठीक अभिप्राय दर्साया।

सुरेन्द्र बाबू हाथ में दक्षिणी जूता उठा लाये और मानभंग होकर क्रोध मे उन्होंने सबके सामने ऊपर उठाया। 'Reward for forty years of public service,' (चालीस वर्ष की सार्वजनिक सेवा का उपहार) कहकर उन्होंने जूता जेब में रख लिया।

'अंग्रेज हमारे विषय में क्या सोचेंगे ?' गोखले ने कहा।

और धीरे-धीरे फ्रेंच गार्डन खाली होने लगा।

रात को सुलह की बातें हुई थी, वे वैसी की वैसी भुला दी गईं।

नरमदल वालों ने साम्राज्य में ही रहने की स्वीकृति पर हस्ताक्षर लिये और नौ सौ मनुष्यों का कन्वेन्शन दूसरे दिन मिला।

तीसरे दिन एक सुरती लाला ने मंडप मे प्रवेश करना चाहा। स्वयंसेवक ने उसे नही जाने दिया। 'तीन दिन के टिकट के पैसे लिये और दो दिन ही देखने दिया, अरे वाह !' कहते हुए इक्के में बैठकर अपने घर गया। उसको पैसे वसूल होते हुए न दीखे।

संध्या को हरिपरा में 'गरमदल' की सभा हुई। कांग्रेस भंग हुई इसके लिए सबने दुःख प्रदर्शित किया; पर कांग्रेस हो, तो प्रचलित

राजनैतिक आदर्शों को ही यह स्पष्ट किया गया; और ब्रिटिशो से भीख माँगने के दिन गये, यह सर्वसम्मति से निश्चित हुआ। इसके बाद सभा समाप्त हो गई।

सुदर्शन और उसके मित्रों ने नानपरा में कान्फ्रेंस की।

'आज ही हम लोगो ने कांग्रेस को गंभीरता का पाठ पढ़या है।' केरशास्प ने बिना प्रस्ताव के ही प्रमुख स्थान लिया। अभिप्राय कितना प्रिय है इसे मापने का साधन 'मारपीट ही है। रीश्टाग में रोज डंडेबाजी होती है।'

'लेकिन पुलिस से हम लोग सावधान रहें तो कैसा?' शिवलाल ने कहा।

'सा······नासबिलाडी घुस को भी कैसा भगाया!' नारायण-भाई ने कहा।

'आज राष्ट्र ने वास्तविक महत्ता प्राप्त की।' अंबालाल ने कहा, 'परदेशियो की अब हम लोगो को पर्वाह ही नही है।'

'लेकिन सदुभाई! तुम इस तरह क्यो पड़े हो?' केरशास्प ने पूछा।

'कांग्रेस इस प्रकार भंग हुई यह मुझे अच्छा नही लगा।'

'फ़ीरोज़शाही कांग्रेस हो तो भी क्या और न हो तो भी क्या?' अंबालाल ने कहा।

'कांग्रेस भंग हुई इसका मुझे दुःख नही। जो संस्था पाँच-दस नेताओं के मतभेद से भग हो जाय वह संस्था रखने योग्य नहीं कही जा सकती। शिवलाल की उस्तादी से नेता सुलह न कर सके। नारायण-भाई के जूते ने दस हजार की सभा भंग कर दी। इससे क्या पता लगता है? यही कि हमारे नेताओ में और लोगो में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जो इतने—दस हज़ार को तो क्या दो हज़ार के एक समूह को भी व्यक्तित्व नही दे सकते।'

'तुम्हारी बात गलत है।' अंबालाल ने कहा, 'इस समय तो हमको विनाशवृत्ति की शिक्षा देनी है। नहीं तो विप्लव कैसे हो सकता है? और आज कितनी भव्य विनाशवृत्ति है!'

'ओह, निश्चयात्मक विनाशवृत्ति भी कहाँ थी? एकमात्र आकस्मिक अस्वस्थता का यह परिणाम था।'

'नहीं, गरमदल मे वास्तविक सचोटता आती जा रही है,' केरशास्प ने कहा।

'कौन कहता है कि नहीं?' नारायणभाई बोला।

'अपने मंडल ने भी कैसा काम किया?' मगन पंड्या ने कहा।

'हमने क्या काम किया? कुछ भी नहीं।' सुदर्शन ने कहा, 'उस बन्दर ने लन्दन मे तोप छोड़ी थी, यहाँ भी मुझे ऐसा ही कुछ लगता है।'

'क्या हो गया है आज सदुभाई!' केरशास्प ने पूछा।

'मेरी तबियत ठीक नहीं है।' उसने खीजकर कहा, 'आज रात को ही मैं अपने गाँव चला जाऊँगा।'

'मैं भी—' मगन पड्या ने कहा।

'मुझे भी बम्बई जाना है।'

'तब २१वीं जनवरी को अपने मंडल की सभा है।' सुदर्शन बोला, 'भूलना मत, प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी रिपोर्ट तैयार रखें।'

जैसे यह बात भूल ही गये हो इस प्रकार प्रत्येक एक दूसरे की ओर देखने लगा।

'अरे हाँ!' अंबालाल ने कहा।

'कहाँ मिलेंगे?'

'बड़ौदा ही ठीक रहेगा।' केरशास्प ने कहा।

'कई लोग तो बम्बई में हैं।'

'लेकिन बड़ौदा सबको पास पड़ेगा।' मोहन पारेख, जो अब तक सिर थामे हुए बैठा था, बोला।

'अच्छा, तब मैं तैयारी करूँ?' कहकर सुदर्शन उठा और वह तथा अंबालाल दोनो सामान ठीक करने लगे। सब बाहर गये इतने में शिवलाल उनके पास आया। उसने आकर सुदर्शन से धीरे से कहा, 'क्या अपनी सभा एक महीने के बाद नही हो सकती?'

'क्यो?' दोनो ने आँखे फाड़कर पूछा।

'मेरी बूढी माँ श्रीनाथजी जाने की ज़िद्द ले बैठी है। आज दो दिन हो गये उसके आँसू सूखते ही नही।'

'अगर तू न हुआ तो काम कैसे चलेगा?' सुदर्शन ने कहा।

'मैं क्या करूँ?' शिवलाल ने बैठते हुए कहा, 'मेरे ससुर साहब जा रहे हैं, उनके साथ जाने के लिए कहता हूँ तो वह इन्कार करती है। इकतीसवी के बाद जाने के लिए कहता हूँ तो आँखो से पानी बहने लगता है। सभा मुल्तवी रखे बिना छुटकारा नही।'

'सभा मुल्तवी कैसे की जा सकती है? दूसरे लोग क्या कहेंगे? सबके उत्साह का क्या होगा? और तुम्हारे बिना काम कैसे चल सकता है?' सुदर्शन ने कहा।

'पर अपनी माँ को क्या सोनापुर ले जाऊँ? और बुढ़िया ऐसी मिजाज़ की है कि कुछ सुनती ही नही। सगी माँ हो तो बात दूसरी—वह तो दत्तक माँ है। कल उठकर वसियतनामा कर दे और मुझे हरी झडी दिखा दे तो फिर अपने मंडल का क्या होगा?' उनके समस्त मडल की तिजोरी शिवलाल की पूँजी और केरशास्प की कमाई थी; और फिर शिवलाल भिखारी हो जाय तो?

'चिन्ता नही!' शिवलाल ने हिम्मत से कहा, 'अंबालाल! तुम और सदुभाई हो वही मैं भी हूँ। तुम्हारी योजना सो मेरी योजना। परन्तु मेरे श्रीनाथ द्वारे जायें बिना काम नही चल सकता। हमारी त्रिमूर्ति कभी टूटनेवाली नही। सदुभाई, सृजन करेंगे, मैं धारण करूँगा,

अंबालाल संहार करेगा। फिर हमें किसी की जरूरत नही। मै मार्च तक वापस लौट आऊँगा।'

'ठीक। पर जैसे भी हो जल्दी ही वापिस आना।'

'अरे, एक दिन की भी देरी नही करूँगा। देश का उद्धार करना कहीं भूला जा सकता है? अच्छा, मैं जाता हूँ।' कहकर शिवलाल ने आज्ञा ली।

'बेचारा बुरी तरह फँसा!' सुदर्शन ने कहा।

'क्या किया जाय? लेकिन इसका काम चौकस है।'

'इसमे तो कहना ही क्या!'

६

रेलगाडी में सुदर्शन को नीद नही आई। गरमदल की विजय के ..मान इस कांग्रेस में ऐसी कौनसी चीज़ थी कि जिससे उसका मन असंतुष्ट हुआ था? उसके मित्रो के व्यवहार में ऐसी क्या बात थी कि जिससे उसके हृदय में अश्रद्धा ने स्थान ले लिया था? किसी स्थान पर कुछ न कुछ भूल अवश्य थी।

ट्रेन चल रही थी; खिड़की मे से पेड़ दौड़ते हुए दिखाई दे रहे थे; डिब्बे में सात व्यक्ति शान्ति से ऊँघ रहे थे किन्तु उसकी आँखें कांग्रेस का पंडाल, पगडी और दुपट्टा संभालते हुए तिलक, मंच पर खड़े सुरेन्द्रनाथ को देख रही थी, कुर्सियो पर कूदते हुए लोग और हवा में उड़ती हुए कुर्सियाँ भी उसे दिखाई दी।

'माँ! माँ! ये तेरे पुत्र? यह तेरा मन्दिर? तेरा क्या होने-वाला है?'

कांग्रेस मे इकट्ठे हुए इन लोगों में क्या दोष था? उसकी आँखें मिची नही। क्या कापड़िया ठीक था? और यदि ठीक भी हो तो भूल कहाँ थी?......

एक महानदी के विशाल द्वीप पर एक विशाल जन-समूह इकट्ठा हो गया था······

कितने ही स्त्रियों के साथ थे, कितने ही बाल-बच्चों को लाये थे। सब रंग-बिरंगे वस्त्र पहने हुए, गले में हार डाले हुए और हाथ में मजीरे लिए हुए थे। कितने ही कूदते, कितने ही नाचते, कितने ही हँस रहे थे। सब के सब आनन्द में विभोर थे। कुछ महान् प्रसंग था······

कई के पास घोड़े थे, कितने पैदल चल रहे थे तो कितने ही गाड़ी में बैठकर आ रहे थे। प्रत्येक अपने साथ खाने को लाये थे, उसे छोड़कर सहकुटुम्ब चने-मुरमुरे फांक रहे थे। चारों ओर पान चबाये जाते और जगह-जगह पिचकारियाँ उड़तीं—

जगह-जगह हास्य सुनाई देता। कोई गीतों की धुन छेड़ता; बाँसुरी की सुमधुर ध्वनि फैलाता। स्त्रियाँ ताली बजा-बजाकर गातीं और हँसतीं······सुजलाम्······सुफलाम्······

आनन्द का वातावरण दसों दिशाओं में व्याप्त था······वसंत का आह्लाददायक सूर्य अपनी किरणों से सब को प्रोत्साहन दे रहा था। आठ-दस व्यक्ति फिर रहे थे—गंभीर और खेदयुक्त नयनों से वे खड़े हो लोगों के समूह को कुछ कहते। लोगों का समूह आनंदित हो चने-मुर्मुरों के फंके मारता। करताल मजीरे बजाता और उनके पीछे थोड़ी देर तक चलता। इतने में इनमें से कोई दूसरा आता, उसकी कुछ सुनने के लिए खड़े रहते। कोई ताली बजाता, कोई पैर ठोकता और फिर आनंद में मस्त हो जाता········

गंभीर पुरुष एक दूसरे से मिलते तो एक दूसरे की ओर घूरते। एक दूसरे के पीछे पड़ते तो अपना अधिकार दिखाकर क्रोधित होते। वे क्रोधित होते और लोग आनंद के आवेश में नाचते। धीरे-धीरे एक

दूसरे के गले मे-हाथ डालकर लोग फिरने लगे और गंभीर पुरुषों का क्रोध देखकर हँसने लगे।.........

बाजे बजते ही जाते, तालियाँ पिटतीं ही जातीं, नाच हुआ ही करते... .....अबीर और गुलाल उड़े......;...ध्वजा पताकाएँ फहरीं और प्रत्येक ने कुछ न कुछ लेकर ऊपर उछालना आरम्भ किया।

उसकी समझ मे नही आया कि यह क्या है! यह गंभीर पुरुष कौन? ये आनंदी स्त्री-पुरुष कौन? यह गुलाल और अबीर कैसा?

उसकी चिंता बढ़ी। क्या यह शुक्लतीर्थ की यात्रा है? या वसंतोत्सव?

एक आदमी आनंद की लहर मे नाच रहा था। उसके एक हाथ में दक्षिणी जूता और एक हाथ मे डंडा था। उसके गले में केसरी फूलो की माला थी और पैरो में घुंघरू। वह अपनी मस्ती और तान मे जी मे आता उसे मारता और जिसे चाहता उससे भेंटता। उसकी आँखें विशाल थी। उसकी तोंद भी महान् थी। उसे देखकर दूसरे हँसते और जितना अधिक हँसते उतना ही वह अधिक कूदता—

'भाई! यह क्या है?'—एक आदमी ने पूछा, पर नाचनेवाले का मुँह उसे स्पष्ट दिखाई नही दिया—परिचित-सा लगा।

'भाई! भाई! यह क्या है?' घुटते हुए आर्त स्वर में उसने पूछा।

'क्या कहते हो?' नाचनेवाले ने आनंद के आवेश मे बोलचाल की भाषा में कहा, 'हम समस्त ब्रिटिश साम्राज्य सर करने जा रहे हैं.........'

सुदर्शन की छाती बैठ गई। 'जानना नही!.......' उसने जूता चारो ओर घुमाया। 'लगभग वह काँपने तो लगा ही। नास.........
बिलाड़ी.........घुस.........'

उसका दम घुटने लगा। वह सचेत हुआ। उसने देखा कि एक मुसलमान सहयात्री ने ऊँघते-ऊँघते उसके कन्धे पर माथा रख दिया है।

एक मानसिक शूल ने—त्रिकोण की तरह उसका हृदय भेद दिया। 'यह कांग्रेस! यह देश! माँ! माँ! माँ! अब क्या होनेवाला है?' एकदम उसे याद आया कि अब उसे पहले जैसे स्वप्न नहीं आते। और पहले की तरह माँ दर्शन नहीं देती इसका क्या कारण? 'माँ क्या नाराज़ हो गई है! माँ! क्या मैं योग्य नहीं हूँ? माँ, मेरे शरीर में जब तक प्राण हैं, तब तक मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। माँ! तू मुझे छोड़ना मत......'

शंका से पीड़ित उसके हृदय में अरविंद बाबू की मूर्ति आई। तीन दिन के परिचय से उसे बहुत अधिक प्रेरणा मिली थी। उनके चक्षु कैसे दिव्य थे? उनकी स्वस्थता कैसी अभंग थी? उनकी श्रद्धा कैसी निश्चल थी? यही महात्मा राष्ट्र का निर्माण करेगा—उसका उद्धार करेगा—क्यों न इससे जाकर मिला जाय और उसकी आज्ञानुसार प्रवृत्ति क्यों न अपनायी जाय?

अरविंद बाबू का बायकाट में विश्वास था। यदि यह सर्वव्यापी हो जाये तो देश का भाग्य खुल जाय। एक मत हो तीस करोड मनुष्य अंग्रेजो का बहिष्कार करे तो एक पल मे देश का उद्धार हो जाये...

लेकिन जो दस हजार व्यक्ति सूरत में फ्रेंच गार्डन में इकट्ठे हुए थे, वे क्या ऐसा भीषण बहिष्कार करने के लिए शक्तिशाली थे?... इन विचार-चक्रो में पड़कर उसने पड़ोसी के कन्धे पर माथा रखकर ऊँघना आरम्भ किया।

---

# मंडल की सभा के लिए तैयारी

## १

आठ दिन रहकर सुदर्शन बम्बई गया तो एक महीने में देश के उद्धार के लिए योजना बनाने की भीष्म-प्रतिज्ञा लेकर गया था। इस प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए उसने अपनी बालक बुद्धि, शक्ति और निश्चयात्मकता का यथाशक्ति उपयोग किया। उसने देश-देश के इतिहास मे से सार लिया, प्रत्येक देश की उद्धारक प्रवृत्ति में से तत्व ग्रहण किये; प्रत्येक स्वातन्त्र्य सेना की रचना और स्वातन्त्र्य युद्ध के रहस्यो की तुलना की; उसने प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति और अवनति के कारण एकत्रित किये; वर्ष के अंतिम दिनो के अध्ययन का एकीकरण किया; उसने हिन्द की दशा, कठिनाई और अशक्ति को आँका; आदर्श, शक्यता और व्यावहारिकता—तीनो दृष्टियों का यथाशक्ति सम्मिश्रण किया; माँ की माला जपी, भक्ति रस का सिंचन किया; परदेशियों की शक्ति का हिसाब लगाया और उनके विरुद्ध मोहरो की योजना की और कही ऐसा न हो कि वे कल्पना में ही विलीन हो जायें इसलिए शीतल, तप्त व्यावहारिकता की कसौटी पर कसा और रात-दिन परिश्रम कर एक संपूर्ण योजना का निर्माण किया।

वनी भी यथाशक्ति मदद करती रही। उसे चाहिये तब चाय, उसे चाहिये तब भोजन, उसे चाहिये तब प्रेरणादायक दो बोल वह दिया ही करती थी और थका-हारा सुदर्शन उसकी मुस्कराहट देख-

अंबालाल भी खूब उत्साहित हुआ। सबेरे, दोपहर और शाम—

कर प्रेरणा पाता गया।

और कभी रात को भी वह और मिस वकील विज्ञान के प्रयोग करते और सुदर्शन को विश्वास दिलाते कि वे ३१ जनवरी से पहले जो न देखा और न सुना ऐसा कल्पनातीत विनाश का अस्त्र खोज निकालेंगे। अंबालाल ने पढ़ाने जाना छोड़ दिया और इस प्रयोग में बराबर लगा रहता था। जब वह घर आता तो उसके कपाल पर रौद्र रस की छाया सुदर्शन को दिखाई देती।

दोनो मित्र, मिस वकील और धर्नी देश के स्वातन्त्र्य के उदय की किरणें देखने लगे।

अरविंद बाबू बम्बई आये। दोनों मित्रो ने उनके दर्शन किये और भाषण सुनकर अपने उत्साह को एक नवजीवन दिया। उनके राष्ट्र-धर्म के मंत्र सुदर्शन के कान मे गूंजते रहे।

'राष्ट्र-धर्म ईश्वरीय देन है। उसका विनाश नही होता, क्योकि ईश्वर ही बंगाल को प्रेरणा दे रहा है। ईश्वर का कोई विनाश नही कर सकता। ईश्वर को कोई जेल मे नही भेज सकता। तुममें वास्तविक श्रद्धा है या एकमात्र राजनैतिक प्रेरणा—एक विस्तृत स्वार्थ ?

निशीथ के अंधकार मे अपने बिस्तरे पर मानसिक प्रणिपात करते और इन मन्त्रो को जपते हुए विशुद्ध और प्रोत्साहित हृदय से सुदर्शन 'माँ' की विनती करता रहा, 'माँ ! प्रेरणा दे ! शक्ति दे !' उसने प्रार्थना की।

योजना लिखी जा रही थी; कागज पर कागज लिखे गये, संशोधन हुआ, फाड़े गये और फिर लिखे गये। जनवरी का महीना धीरे-धीरे आगे बढने लगा। १०, ११, १२, १३, १४, १५ को सवेरे उसने योजना समाप्त की। अपने सामने पड़े हुए कागज के बंडल को देखकर उसका हृदय गर्व से फूल उठा।

'धनी बहिन ! मै अपना काम समाप्त कर चुका।'

'शाबाश !' धनी ने नहाने के लिए पानी रखते हुए कहा, 'मुझे गुजराती में बतलाओगे न ?'

'ज़रूर !' सुदर्शन ने कहा। उसकी नज़र धनी पर पड़ते ही यह विचार आया—कैसी प्रोत्साहक सहचरी है ! मन्त्री, सखी, प्रिया, शिष्या—ललित नही, पर विप्लव वैसी कठोर और भयंकर कला मे ! वह हँसा।

दोपहर को डाक आई। दूसरे मित्रो के पत्र के साथ पाठक का भी पत्र था।

'सदुभाई !'

मुझे मद्रास से नौकरी मिल जाने का तार आ जाने से मैं आज वहाँ पहुँच गया हूँ। १२५) रुपये और खाना-पीना। जितना सोचा था उससे अच्छी तनख्वाह है।

मैं ३१वी तारीख को बड़ौदा नही आ सकता और आने से भी क्या फ़ायदा ? मेरे जैसे—जिसके कंधो पर सारे कुटुम्ब का भार हो—उसे कही बिना पैसा पैदा किये काम चल सकता है ?

स्नेहाधीन

पाठक,

सुदर्शन को गुस्सा आया। This is what I call selling birth-right for a mess of pottage (इसे मैं रोटी के टुकड़े के लिए जन्मसिद्ध अधिकार का विक्रय कहता हूँ।)

'मैं जानता ही था कि पाठक निकम्मा है।' अंबालाल ने कहा।

'अच्छा हुआ, वह नही आया। ऐसा लचर-पचर आदमी उपस्थित हो, तो कई विघ्न उपस्थित कर देता है।'

'ठीक बात है !' धनी बीच मे ही बोली।

अंबालाल उग्रता से चारो ओर देखता रहा और एकदम सदुभाई का हाथ पकड़ा, 'सदुभाई ! कुछ नही, मृत्युपर्यंत हम दोनों साथ रहेंगे ?'

'ऐसी ही बात है अंबालाल ! जब तक हम हैं तब तक दुनिया झख मारती है। मेरी राष्ट्रसंघ की योजना और हम दोनो स्रष्टा और मूल हैं।'

'हाँ, दोस्त !' कहकर गंभीरता से अंबालाल ने सुदर्शन का हाथ दाबा। उनका हृदय देशभक्ति और भीषण कार्यदक्षता से भरा हुआ था, 'तुम्हारी योजना मैंने थोड़ी-सी देखी है। सब उदाहरण और तर्क निकालकर इसमें से एक ऐसा छोटा-सा सारांश निकालो कि सबको समझने मे सुविधा हो।'

'हाँ, मै ऐसा ही करूँगा। हाँ यह ठीक है।'

२

दूसरे-तीसरे दिन चौपाटी पर केरशास्प और सुदर्शन इकट्ठे होते और मंडल के प्रमुख तथा मंत्री प्रत्येक सदस्य के समाचार, शक्तियाँ और मंडल के कार्यक्रम के विषय में मत्रणा करते।

केरशास्प के सिद्धांत स्पष्ट नही थे, पर उनमें प्रेरकता थी, सबको सामूहिक रूप में एकत्रित कर शासन चलाने की नैसर्गिक शक्ति थी। उसकी वाणी में उत्साह था, सत्ता थी, कठोरता थी और आवश्यकतानुसार कटुता भी आ जाती थी। प्रत्येक व्यक्ति उसको देखकर सम्मान से खड़ा हो जाता; उसे सुनकर अपना अभिप्राय भूल जाता।

सुदर्शन के सिद्धांत दिन-दिन स्पष्ट होते जा रहे थे और केरशास्प उन्हें समझकर अपना बना लेता और तुरन्त उन्हें नवीन रूप देकर और नवीन चमक के साथ प्रकाश में लाता।

आज दस दिन हो गये, केरशास्प उससे मिला नही था। इसलिए सुदर्शन को चिन्ता होने लगी। उसे पाठक और शिवलाल के विषय में बात करनी थी; अपनी योजना का सारांश बताना था; ३१वी तारीख को क्या करना है यह निश्चय करना था; कौनसी ट्रेन से कैसे चला जाये यह ठीक-ठाक करना था और अत्यन्त सूक्ष्म विषयो पर विचार

करना था। २६वीं के सबेरे वह अधीर हो उठा। उसका इरादा एक दिन पहले बड़ोदा जाकर दूसरे मित्रो के साथ इन योजनाओं के विषय में बातचीत शुरू करने का था। नही तो ३१ को अंतिम निश्चय कैसे होगा? २६वीं की रात को यदि बम्बई से निकले तो ३०वीं की सवेरे तक सब कार्यक्रम निश्चित हो जाना ही चाहिये; लेकिन २६वीं तो पास ही आ लगी थी।

केरशास्प एक छोटे से मकान की तीसरी मंज़िल पर रहता था। एकमात्र उसका बॉय उसका सब आवश्यक काम कर देता था। इस एकान्त आश्रय में वह और टेलिफोन दोनों एक होकर रुई के बाजार में व्यापार करते। सुदर्शन वहाँ गया तो दरवाज़े पर ताला पड़ा था। वह असमजस्य मे पड़ा। केरशास्प चला गया क्या? वह कही बीमार तो नही हो गया? कही वह बड़ौदे तो नही चला गया? बिना केरशास्प के मंडल करेगा क्या? केरशास्प ३१वी को बड़ोदा न आवे तो? यह नही हो सकता।

सुदर्शन चिंतातुर हृदय से नीचे उतरा और नीचे दूकान पर बैठे हुए पारसी से पूछा। केरशास्प उसके यहाँ से चाय मँगाया करता था, यह सुदर्शन जानता था। वहाँ से उसे खबर मिली कि केरशास्प सेठ सबेरे-सवेरे गया है और संध्या तक लौटेगा। 'ओ माँ!' सुदर्शन के मुख से चिंता मे ये शब्द निकल ही गये। उसका हृदय जैसे बैठा जा रहा हो ऐसा लगा; और किसी तरह वह उसको निराशा के समतल पर टिकाये हुए था।

बम्बई के अमेय विस्तार में केरशास्प को कहाँ ढूंढा जाय? कहाँ कोलाबा? कहाँ सट्टाबाजार? कहाँ मारवाड़ी बाजार? सुदर्शन को इन जगहो का बहुत थोड़ा-सा परिचय था। वहाँ केरशास्प कैसे मिले?

भारी हृदय से वह घर आया। अंबालाल एक महान् उत्साह में

था। सुदर्शन दरवाजे में घुसा कि अंबालाल एकदम उससे लिपट गया।

'दोस्त ! 'माँ' का भाग्य बदल गया।'

'कैसे ?'

'हमारा प्रयोग सफल हुआ।'

'ऐं !' चकित होकर सुदर्शन ने कहा। उसके भी हर्ष का पार नही रहा।

उफनते हुए उत्साह में पर धीरे से थरथराती हुई आवाज़ मे अंबालाल ने बधाई ली।

'हाँ, दोस्त ! आज छुट्टी थी, अतः सवेरे मैंने और वकील ने अंतिम प्रयोग किया। वस्तु, टेंपरेचर, समय सबका संयोग जुटाया और सोचा हुआ परिणाम निकला। एक कतरे के हजारवें भाग ने दस गज ज़मीन खोद डाली। तीन क़तरे की ट्यूब एक मिनिट मे राजाबाई टावर को उड़ा देगी। अब फौज की ज़रूरत नही, तोप की ज़रूरत नही। सदुभाई ! सदुभाई ! अब तो विजय अपने ललाट पर लिखी है। अपना मंडल ही देश का उद्धार करेगा। आज संध्या को एक प्रयोग और। मैं दो-चार ट्यूब और तैयार कर रहा हूँ। सदुभाई ! मैं तो अमर हो गया—हम सब अमर हो गये।'

इस उत्साह की बाढ़ में सुदर्शन बह गया। उसका खिन्न हृदय उछलने लगा। उसकी श्रद्धा की पुनः स्थापना हुई। ऐसे शस्त्र द्वारा वे क्या नही कर सकते ? केरशास्प नही होगा तो भी काम चल जायगा। उसने अंबालाल से सवेरे की बात कही। उत्साह से पागल अंबालाल को केरशास्प की तनिक भी पर्वाह नही थी।

'पर वह भूल नही सकता, बड़ौदा अवश्य गया होगा।' सुदर्शन ने कहा।

'मुझे भी ऐसा ही लगता है।'

खाना खाकर अंबालाल कालेज में प्रयोग पूरा करने गया और

सुदर्शन अपनी योजना फिर से उलटने और हो सके तो सुधारने के लिए बैठा। अंबालाल को इसमें योग्य स्थान देना चाहिये।

आज रात को पूना से नारायणभाई पटेल आनेवाला था। वह, अंबालाल और नारायणभाई तीन आदमी तो थे ही और अंबालाल की इस विश्व-विप्लव कर दे ऐसी खोज की महत्ता से तीन होंगे तो तीन करोड़ को भारी पड़ जायेंगे। फिर केरशास्प न हो तो भी काम चल जायगा।

परन्तु केरशास्प बिना कैसे काम चल सकता है? उसकी योजना मे दस सदस्य और एक प्रमुख की समिति ही केन्द्रबिन्दु थी। प्रमुख सर्वसत्ताधिकारी था : ग्यारह आदमियो की समिति एक व्यक्ति जैसी सुदृढता और एकतावाली थी। केरशास्प बिना यह सुदृढता या एकता कौन लाये? उसके बिना सर्वग्राह्यत्व की शिक्षा कौन दे सकता है?

केरशास्प से मिलने के लिए फिर एक प्रयत्न करने का मन हुआ। छः बजे तक उसने अंबालाल की प्रतीक्षा की पर वह नही आया इसलिए वह अकेला ही रवाना हुआ। अंबालाल की खोज से उसका हृदय आशा से छलक रहा था; और उसके मस्तिष्क में इस खोज के परिणाम-स्वरूप शक्य बनती हुई हजारो योजनाएँ आकार ग्रहण कर रही थी। केरशास्प के घर के आगे आते ही तीसरी मंजिल पर प्रकाश दिखाई दिया। उसका हृदय नाच उठा। जाकर केरशास्प को विजय-संदेश देकर, तैयारी करके, बड़ौदा ले जाने की ही देर थी। छलाँग मारता हुआ वह जीने पर चढ़ा और दरवाजे के पास आते ही चौंककर खड़ा हो गया।

एक छोटे-से किरोसीन के लैप के आगे दोनों हाथ माथे पर रखे केरशास्प बैठा था। उसका मजबूत, भरावदार शरीर जैसे दुःसह भार से कुचल गया हो ऐसा दिखाई देता था। उसके भरे हुए मुख को,

जागरण, चिन्ता और निराशा की रेखाओं ने भयानक बना दिया था। उसकी आँखें सूजी हुई थी। सामने आधा पिया हुआ चाय का प्याला और बिना छुए हुए नमकीन बिस्कुट पड़े थे। केरशास्प इतनी निर्बलता का अनुभव कर सकता है, यह विचार सुदर्शन को कभी स्वप्न में भी नहीं आया था।

सुदर्शन बोलनेवाला था कि केरशास्प ने उसको देखा—और टेलिफोन बजा। केरशास्प ने सुदर्शन को चुप रहने का हाथ से इशारा कर, टेलिफोन उठाया।

'हलो, प्यारेलाल! दो पाइन्ट! क्या...फीचर आया—कहाँ—ओह अच्छा—सौ गाँठें कवर करो। देखा जायगा—कितना भाव?—देखो—हाँ—अच्छा एकदम कवर करो—'उसने टेलिफोन रख दिया और माथे पर हाथ रखकर बोला, 'Oh god!'

'क्या है केरशास्प?'

'सद्‌भाई! मैं बरबाद हो गया।' उसने गला खंखारकर बोलना आरम्भ किया 'एक-एक घंटे में तीस-तीस हज़ार खो रहा हूँ।'

'ओ—' सुदर्शन ने आँखें फाड़कर कहा। क्या बोले यह भी उसे न सूझा।

'Bad luck.' केरशास्प ने कहा और निश्वासें छोड़ीं।

'मैं सवेरे आया था।'

'मैं दिनभर घर पर था ही नहीं।'

'क्यों?'

'रुपयेवाले मेरे प्राण खाते है, मेरे विरुद्ध डिगरी है।'

'तब ३१वीं को बड़ौदा—'

'३१वीं को बड़ौदा!' मृत्युशय्या पर पड़े हुए मनुष्य-सी निस्तेज आँखें ऊँची करते हुए केरशास्प ने कहा।

'आप--'

'ट्रीं—ट्री—ट्रीं—ट्रीं—' टेलिफ़ोन बोला। सुदर्शन चुप रहा।

'हलो कौन सोभाग!' केरशास्प ने टेलिफ़ोन में बोलना आरम्भ किया। 'हाँ, फीचर आ गया? तेजी है? हाँ—हाँ क्या?—हलो—दो पाइन्ट—ज्यादा। मरीकान क्या है? हलो—कल मिलूँगा—हलो...' कहकर उसने फ़ौरन टेलिफ़ोन रख दिया; और वेदना उसके कपाल पर फैल गई।

इस समय क्या बोले सुदर्शन यह विचार कर रहा था। कहाँ 'माँ' का उद्धार और कहाँ प्यारेलाल और सोभाग? कहाँ देश-भक्ति और कहाँ मरीकान के फ़ीचर? मरीकान के फ़ीचरो मे देशभक्ति के पोषण का गुण जो उसने समझ रखा था आज उसे असत्य लगा।

'केरशास्प—' उसने कहा।

'केरशोजी शेठ है क्या?' एक व्यक्ति ने पुकारा।

'हाँ,' केरशास्प ने कहा और उसका मुख पहले से भी अधिक फीका पड़ गया।

'मेघाजी?' वह काँपते हुए होठो से बडबड़ाया और स्वस्थ होने का प्रयत्न करने लगा।

'यह कौन है?' सुदर्शन ने पूछ ही लिया।

'रुपये माँगनेवाला है। मुझे इसका तेरह हज़ार देना है।' केरशास्प ने जवाब दिया और दरवाजे पर आये हुए मारवाड़ी को देखकर हँस-हँसकर बोलना शुरू किया, 'कौन मेंघाजी! बैठो, बैठो। सदुभाई! ठीक तब, साहेबजी! हाँ, ब्रजभूखनदास से कहना कि मुझे कल पच्चीस हज़ार की हुंडी भेज दे। अच्छा साहेबजी!'

सुदर्शन दिग्मूढ हो वहाँ से चल दिया। उसे भान हुआ कि उस मारवाड़ी को संतोष देने के लिए ही गप्प मारी थी। वह सीढ़ियाँ कैसे उतरा यह भी उसे याद नही रहा। जब वह रास्ते पर गया तो जैसे प्यारेलाल, सोभागचन्द और मेंघाजी उसके पीछे पड़े हों इस प्रकार

घबराकर उसने पीछे मुड़कर देखा। और देर हो गई है यह ध्यान आते ही वह कांदावाड़ी की ओर मुड़ गया।

३

रात के दस बजे वह चर्नीरोड से रवाना होनेवाला था। लेकिन आठ बजे बाद घर पहुँचने पर भी अंबालाल अभी तक नहीं आया था। केरशास्प के यहाँ मिले हुए अनुभव से वह अत्यन्त खिन्न हो गया और उसे यह भय लगने लगा था कि २१वीं तारीख की सभा ठीक-से पार उतरनेवाली नहीं। जिस सभा के लिए उसने साल भर भूख-प्यास और जागरण सहा था, क्या वह इस तरह धूल में मिल जायगी? इसी सभा पर माँ का भविष्य अवलंबित था, इस पर उनके मंडल के अस्तित्व का आधार था; इस सभा पर उसका और उसके मित्रों का भावी जीवन टिका हुआ था; और अब उसका क्या होने जा रहा है।

मिनट पर मिनट बीती पर अंबालाल नहीं आया। धनी के साथ बात करने का मन न हुआ, कोठरी में पड़े-पड़े थक गया—छज्जे से झाँक-झाँककर वह ऊब गया। कब भोजन करेगा और कब ट्रेन पकड़ेगा? अंबालाल को भी क्या हो गया? सवेरे उसने सुदर्शन के साथ रहकर 'माँ' के उद्धार करने की प्रतिज्ञा ली थी। दृढ़, उत्साही, निडर अंबालाल—

अंबालाल के आने की आवाज़ सुनाई दी।

'धनी बहिन, भोजन परोसो।' सुदर्शन ने आवाज़ दी। वह दरवाज़े की ओर दौड़ा।

दरवाज़े में अंबालाल को हँसते हुए खड़ा पाया—पर कैसा अंबालाल? उसके सिर पर एक पट्टी बँधी थी, उसका हाथ झोली में लटका हुआ था और उसके कोट पर रक्त के छींटे थे; और फिर भी उसके मुख पर और आँखों में किसी अद्‌भुत आनन्द का तेज चमक रहा था।

'अंबालाल ! यह क्या ?' घबराकर सुदर्शन ने पूछा।

'कुछ नही सदुभाई। यह तो मेरा प्रयोग सफल हुआ। हा—हा!'

गंभीर अंबालाल को इस तरह छोटे बच्चे की तरह हँसते हुए देखकर सुदर्शन चकित रह गया। प्रयोग सफल हुआ उसका यह आनंद!

'तब चलो, भोजन कर लें; ट्रेन का वक्त हो गया।'

अंबालाल हँसा। उसकी आँखो मे अपरिचित तूफ़ान चमक उठा। 'ट्रेन ! मै बड़ौदा नही जाऊँगा।'

'ऐ !' स्तब्ध बने हुए सुदर्शन से सिर्फ इतना ही बोला गया।

'नही, मैं बाज आया।' हँसकर अंबालाल ने कहा, 'मैं अब राजनीतिक में भाग नही लूँगा।'

'क्या कह रहा है अंबालाल ! आज सवेरे—'

'सदुभाई ! सवेरे कलियुग था, इस समय सतयुग है। इधर आओ समझाऊँ।' कहकर दूसरा हाथ सुदर्शन के गले मे डाल उसे बाहर ले गया। जीने की ओर देखते हुए धीरे-धीरे बात करना आरंभ किया . 'सदुभाई ! तुम्हारा विस्मय स्वाभाविक है। देखो, मैं और मिस वकील मेट्रिक से बी० ए० तक साथ-साथ थे।'

'हाँ।'

'हम साथ पढ़ते थे।'

'हाँ।'

'साथ घूमते थे।'

'हाँ।'

'देशोद्धार के साथ ही साथ स्वप्न रचते थे।'

'फिर ?'

'पर हम जानते नही थे—' हँसकर अंबालाल ने कहा।

'क्या ?'

'कि बिना जाने ही हम प्रणयी हो रहे है।' जैसे सुदर्शन मिस वकील

हो, अंबालाल ने उसे दबाया।

'सवेरे प्रयोग सफल होने लगा। दोपहर को फिर करने गये तो परिणाम नही आया, बहुत माथा मारा, अंत में भूल से ताप बढ जाने के कारण ट्यूब फट गया—' और जैसे आकाश से इन्द्र ने पुष्पवृष्टि की हो ऐसे आनंद से अंबालाल ने आगे चलाया, 'काँच के टुकड़े-टुकड़े हो गये।'

'अच्छा !' तिरस्कार से सुदर्शन ने कहा।

'और मेरे सिर और हाथ में घुस गये। लोहू-लुहान हो गया। उस धन्य पल मे हमारे हृदय के द्वार खुले—वर्षों का भ्रम दूर हुआ, हमारी आत्माओ ने एक दूसरे को पहचाना। हमने एक दूसरे को बाहुपाश में कस लिया। सदुभाई ! जीवन का जंजाल समाप्त हो गया। उसने मुझसे विवाह करना स्वीकार कर लिया है। मुझे आशीर्वाद दे मित्र !' सुदर्शन का हाथ पकड़कर वह हँसने लगा।

सुदर्शन को लगा कि यह स्वप्न तो नही है ? उसे अंबालाल पागल जान पड़ा—अंबालाल जिसकी खोज से साम्राज्य उखड़नेवाला था, जिसकी प्रतिज्ञा से 'माँ' का उद्धार होनेवाला था। वह तो विस्मूढ़ हो गया।

'सदुभाई ! उस गाड़ी में वकील बैठी है। मिल तो सही।'

सुदर्शन ने आवेश में घूमकर कहा, 'अंबालाल स्त्री नही थी इसी कारण 'माँ' के उद्धार की प्रतिज्ञा ली थी क्यो ?'

अंबालाल हँसा, 'सदुभाई ! भारत स्वतन्त्र होने में बहुत समय लगेगा, तब तक क्या इसी तरह रहा जा सकता है ? मेरे जीवन में विधि ने यह पहला सुख दिया है। क्या मैं इसे खो दूं ? मुझे अब नौकरी की खोजकर वकील से विवाह कर लेना चाहिये। फिर...'

'फिर क्या, सिर तेरा !' क्रोधावेश में सुदर्शन ने कहा, 'अर्थात् तुम बड़ौदा नही आओगे ?'

'कैसे आ सकता हूँ ? सदुभाई ! विचार तो करो, वकील राह देख रही है। हमें 'ग्रीन' मे भोजनकर नाटक देखने जाना है। तुम जाओ, मुझसे स्टेशन पर भी नही जाया जा सकता, माफ़ करना। पर समझते हो न, आज मेरा पुनर्जन्म हुआ है ? वहाँ क्या होता है यह मुझे लिखना, नही तो वापिस आओ तब।' लेकिन सुदर्शन तो उसे कब का छोड़ गया था। भयंकर उग्रता से मज़दूर को बुलाकर सुदर्शन कोठरी में गया।

'धनी बहिन !' उसकी आवाज़ में जड़ता थी, 'मैं जा रहा हूँ।'

'क्यो, कहाँ जा रहे हो ? भाई कहाँ है ? खाना तैयार है।' धनी हाथ में कड़छी लेकर आगे आयी।

'अंबालाल इस समय नहीं खायेगा। वह रात को आयेगा। मैं अकेला ही बड़ौदा जा रहा हूँ। मुझे नही खाना।'

धनी ने देखा कि कोई असाधारण बात हो गई है। वह हाथ मे की कड़छी रखकर पास आई।

'सदुभाई ! क्या हो गया है ? तुम ऐसे क्यों हो गये हो ? भाई क्यो नही चल रहे।'

'कुछ कहने की बात नही !' सुदर्शन ने कहा।

'मुझसे कहो, मेरी कसम !' धनी बोली, 'सदुभाई ! क्या हो गया है ?'

'धनी बहिन !' मंडल समाप्त हो गया, 'माँ' का उद्धार सो गया और मेरा जीवन-कर्तव्य पूरा हो चुका।' आँख मे आये हुए आँसू पोंछते हुए सुदर्शन ने कहा।

'पर है क्या, यह तो बतलाओ !'

'केरशास्प कर्ज़दार हो गया, शिवलाल श्रीनाथजी चला गया, पाठक ने नौकरी कर ली, अंबालाल मिस वकील के साथ विवाह

निश्चित कर कल से नौकरी ढूँढना आरम्भ कर देगा।' उसने आक्रंद करते हुए कहा।

'क्या कह रहे हो?' धनी चकित होकर बोली।

'यह तो मैं तुमको अपना समझकर कहता हूँ और अब मैं अकेला 'माँ' का उद्धार किस प्रकार करूँगा' वह पलभर के लिए मौन रहा। उसे एक कँपकँपी आई। थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे और धनी ने आकर सुदर्शन के हाथ पर हाथ रखा।

'अकेले क्यों हो? मैं नहीं हूँ क्या?' सुदर्शन ने चौंककर ऊपर देखा और धनी की आँसू भरी आँखों की प्रेरणा पी ली। उसने साहस से उसका हाथ दबाया।

'हाँ, जब तक तुम्हारी प्रेरणा है तब तक मैं पीछे कदम रखनेवाला नहीं। मैं आऊँगा, विजयी होकर।' सुदर्शन में दृढ़ता का संचार हुआ। उसकी आँखें तेजस्वी बनीं।

'और तब तक मैं प्रतीक्षा में बैठी रहूँगी—आवश्यकता हुई तो जीवन भर—'

सुदर्शन ने धनी के सादे मुख पर दैवी सौंदर्य का तेज चमकता हुआ देखा—और मजदूर के साथ वह स्टेशन गया।

४

नारायणभाई पटेल सूरत कांग्रेस के बाद वश में रहनेवाला नहीं था। सूरत कांग्रेस का सारा यश उस अकेले का ही था, यह बात तो उसे दीपक जैसी जागते-सोते स्पष्ट लगा करती थी इसलिए उसके आत्म-संतोष और आत्म-श्लाघा का पार न था। वह स्वयं, उसके मित्र और इसके ग्रामीण भाई मिलकर अंग्रेजों को बाहर निकाल दें यह तो उसके लिए खेल-सा लगने लगा।

कांग्रेस के बाद वह पूना गया तो सही, परन्तु उसका पढ़ने का इरादा नहीं था। गणित में तो उसको सीखना था नहीं और जब उसे

यह मालूम हो गया था कि नेपोलियन भी गणित में भूल कर बैठा था तब से वह अपने को उससे एक दर्जा आगे समझने लगा, क्योंकि वह कभी भूल करता ही न था।

पूना में तिलक के अनुयायिओं में घूमना, देश को स्वतन्त्र करने की बातें करना, मीटिंगों में जाना, आवश्यकता पड़ने पर भाषण देना—यह तो उसका प्रतिदिन का कार्यक्रम हो गया था। धीरे-धीरे उसे अपने प्रौढ़ व्यक्तित्व का ख्याल आने लगा। जहाँ जाता वहीं ही लोग हँसकर स्वागत करते, मित्र उसके सदैव साथ रहते। बहुत से तो उसकी गर्दन से लिपट जाते। कितने ही उसको जीमने के लिए बुलाते और दाँता, नेपोलियन इत्यादि की बातों तथा इसकी डंडा घुमा-घुमाकर बोलने की आदत से मुग्ध हो जाते थे। उसे ऐसा लगा कि विप्लव शुरू होने से पहले कोई एक आकर्षक और प्रेरक व्यक्ति देश में पैदा होता है—ऐसा वह स्वयं था। वह मीराबो बनेगा या नेपोलियन सिर्फ यही प्रश्न अब विचाराधीन था; मीराबो जैसा उसका स्वर, स्वरूप और सर्वव्यापी कार्यशीलता थी—वैसा ही नेपोलियन जैसा गणित का शौक, दूरदर्शिता और सम्राट्-सुलभ स्वभाव था—लेकिन यह बात होकर रहेगी, ऐसा समझ लेने पर—इस विषय में अधिक समय बरबाद नही करता था।

३१वी जनवरी को उसके मंडल का समारंभ—अर्थात् लगभग बास्टील लेने का-सा महाप्रसग था। उस दिन से उसके विजयी कार-नामो का आरंभ होगा। या तो वह गुप्त मंडल का प्रमुख बनकर चारो दिशाओ में कहर ढा देगा, या समस्त ग्रामीणो को साथ लेकर खुल्लमखुल्ला अन्यायी का गढ जलाकर भस्म कर देगा।

२६वी की दोपहर को वह बम्बई आने के लिए रेलगाड़ी में बैठा। आनेवाले महाप्रसंग की महत्ता से वह प्रफुल्ल था। उसने खिड़की में

से गर्दन निकाली, आँखें फाड़कर देखता रहा। गाड़ी चलने का वक्त हुआ और नामदार जगमोहनलाल आकर फ़र्स्ट क्लास में बैठे।

नारायणभाई ने पहले तो इस नरमदलवाले के सामने तिरस्कार से देखा; पर गाड़ी चलने पर वह उसके प्रति नरम पड़ा। आदमी बुरा नही है। सदुभाई की जाति का है और ससुर भी कभी हो जाय; हो जाय क्यों—है ही। इसकी लडकी और इसकी दौलत सदुभाई की मार्फत राष्ट्रीय उद्धार के लिए ही तो आखिर आनेवाली है। यह धनवान्, चतुर और प्रतिष्ठित है। यदि यह मंडल में आ जाये तो मंडल को कितना लाभ पहुँचे ? पर ऐसे घमंडी मनुष्य को कहना किस काम का ?

खड़की स्टेशन आया और नारायणभाई उतरकर फर्स्ट क्लास की ओर आया। पार्लर कार में अकेले नामदार जगमोहनलाल उपन्यास पढ़ रहे थे। नारायणभाई का हृदय उनकी ओर आकर्षित हुआ। इतना अच्छा आदमी नरमदल में ! पर उनके पास जाने का उसे मन न हुआ। वह फिर अपने डिब्बे में चढ गया।

नारायणभाई को अपने व्यक्तित्व में और अपनी शक्ति में श्रद्धा थी। उसने सूरत कांग्रेस भंग की तो क्या वह एक जगमोहनलाल को नही तोड़ सकता ? जो आनेवाले विप्लव का मध्यस्थ नेता होने के लिए पैदा हुआ था क्या वह एक नरमदली को नही समझा सकता ? 'हूँ, इसको तोड़ना तो सहल बात है।' नारायणभाई ने मन में कहा।

नारायणभाई का स्वभाव इस समय ज़रा मिज़ाजी हो गया था। साधारण रूप से नारायणभाई और उसके हृदय के बीच ऐसा भाई-चारा था कि कभी वे दोनों एक दूसरे के सामने मिजाज़ नही दिखाते थे। ऐसे परम मित्रो के बीच इस समय तकरार हुई।

'नारायणभाई !' उसके हृदय ने जरा तिरस्कार से कहा, 'तुम

ग़लत समझे हो ग़लत ! तुम्हारा नामदार से परिचय करने—उसकी खुशामद करने का मन हुआ है।'

'हृदय !' गुस्से में आकर, आकाश के सामने आँखें फाड़कर नारायणभाई बोला, 'तू भी अपनी मनचाही कहता है—पर मैं सहन करने का नहीं। मै निस्वार्थी हूँ, देश-भक्त हूँ, विप्लववादी हूँ। मैंने कांग्रेस भंग की; मैंने फ़ीरोजशाह को जूता मारा। मै खुशामद करूँ?—कैसे हो सकता है?

'फिर नामदार के प्रति इतना आकर्षण क्यों?' हृदय ने खीज-कर पूछा।

'हाँ, यह सवाल ठीक है।' समाधान-वृत्ति से, मिठास से, नारायणभाई ने फिर सँभालना आरंभ किया, 'मै केवल सामान्य मनुष्य नही हूँ, देश का नेता हूँ। भारत मे विप्लव करना मेरा फ़र्ज़ है। देश के सब तत्वो को साथ रखना यह मेरा कर्तव्य है। नामदार एक तत्व है। इसलिए उसको साथ रखना मेरा कर्तव्य है, समझा? Q. E. D. †' ज़रा मुस्कराते हुए नारायणभाई ने कहा।

'तब फ़र्स्ट क्लास में क्यो नही गये? यो कहो न कि प्रतिष्ठा प्रभाव से प्रभावित हो गये, नहीं तो खिड़की पर से वापिस क्यो लौट आते?' चिबल्ले मन ने पूछा।

'तू क्या समझे?' झुँझलाकर नारायणभाई ने कहा, 'मै किसी से डरता थोड़े ही हूँ, जो ऐसे निर्जीव नामदार से डरूँ?'

'जानता हूँ।' हृदय ने कठोरता से कहा, 'यह तो मुँह ही बतला रहा है न? तू एक देहाती है, और यह है जबरदस्त धाराशास्त्री। तीन मिनट में तुझे पराजित कर देगा।'

'अरे अंतरडे ! तू तो बिना समझे ही बोले जा रहा है। परा-

† Quad Erat Demonstrandum ( जो सिद्ध करना था सिद्ध कर चुके। )

जित करूँ इसको और इसके बाप को......' नारायणभाई ने रोब से जवाब दिया, 'मुझे क्या पराजित करेगा ? ऐसे तो जाने कितनो को मात दे दी है।'

'तब उठ, देखता हूँ—' इस प्रकार बड़ी देर तक नारायणभाई और उसके हृदय के बीच संघर्ष होता रहा।

खंडाला आया और देश-प्रेम से प्रेरित हो, नामदार के प्रति अपने कर्तव्य से आकर्षित हो और हृदय के तीखे व्यंगो से उत्साहित हो, नारायणभाई फ़र्स्ट क्लास मे चढ़ गया। गाड़ी चली और वह तुरन्त पार्लर कार में जाकर नामदार जगमोहनलाल के पास ही दूसरे सोफे पर बैठ गया।

एक ही क्षण में नामदार ने कठोरता से अखबार से नज़र उठाई और फिर से पढने लगे।

'हँ—हँ—हँ—हँ—' नारायणभाई ने खँखारा।

मैंने नहीं कहा था ?' उसके चिबल्ले हृदय ने कहा, 'तेरे में हिम्मत ही कहाँ है ? देखता नही, तेरा हाथ काँप रहा है। तेरी कमर पर तो पसीने की रेले चल रहे है। तू कायर ही है !'

'मै—नही—' नारायणभाई ने उसे गुस्से में जवाब दिया और ज़रा हँसकर 'नामदार—' गले में से किसी तरह निकला।

शांत तिरस्कार से नामदार ने ऊपर देखा, 'मुझसे बात करनी है ? तुम कौन हो ?'

'जी हाँ—'

'देख, यह फिर खुशामद—' हृदय ने अपनी बात कही।

'मै खुशामद नही करता। यह तो शिष्टाचार कहा जाता है।' नारायणभाई ने जवाब दिया और नामदार की ओर देखा, 'मुझे आपसे बात करनी है।'

'मुझे यहाँ फुरसत नहीं।' शांति से नामदार ने कहा। कोई मवक्किल होगा या कोई पागल ?

'मैं—अपना सदुभाई है न—उसका मित्र हूँ।'

नामदार ने जवाब नही दिया।

'सूरत में फ़ीरोज़शाह को जूता मैंने मारा; समझे साहब !' अपनी महत्ता प्रदर्शित करते हुए नारायणभाई ने कहा।

नामदार की आँखो मे गुस्सा दिखाई दिया, 'मैंने तुमसे एक बार कह दिया कि इस समय मुझे बात नही करनी। कंडक्टर को बुलाऊँ ?'

नारायणभाई के पैर काँप उठे और इस कँपकँपी को दूर करने के लिए उसे अपने पैरो को रास्ता नापने का हुक्म देने की इच्छा हुई। पर उसका हृदय बोल उठा, 'नारायणभाई ! तुम डरपोक हो, कायर हो। वही हुआ, जरा कहा कि तुम भागे—'

'चल-चल !' आवेश मे नारायणभाई ने अपने हृदय को झिड़का।

—'नामदार !' उसने इस आवेश के बल पर मुँह से आवाज़ निकाली : 'आप तो जनता के सेवक कहलाते हैं—और मैं जनता—आपसे बातें करना चाहता हूँ और आप बात नही करते !'

नामदार ने ऊपर देखा। इस मूर्ख के साथ बात नही की तो जरूर कल अखबार मे, गर्विष्ठ—नरमदली कहलानेवाले प्रजा-सेवक के व्यवहार के विषय में कुछ न कुछ टीका-टिप्पणी होगी। उन्होने पुस्तक पैर पर रखी और कठोरता से पूछा, 'क्या कहना है ?'

नारायणभाई के मुख पर हँसी छा गई। 'देखो साहब ! आप होशियार है, विद्वान् है, देश-भक्त है, आप हमारे में मिल जाइये।'

जगमोहनलाल को यह कोई विचित्र मूर्ति लगा और घंटे भर मनोरंजन की आशा से वह जरा हँसे, 'हम अर्थात् कौन, सदु भी है न ?'

'अवश्य ! वह तो हमारा श्वास और प्राण है ! सब जानते हैं। प्रत्येक देश के विप्लव तो उसकी जीभ पर रहते है।'

'यह बात ! बहुत होशियार है। तब तुम करते क्या हो ?'

'आप हमारे हो जायें तो फिर कहा जाय।' नारायणभाई को लगा कि उसके व्यक्तित्व के प्रभाव से नामदार पराजित होने लगे थे।

'लें तो सही !' अपने हृदय को उसने एक लात लगाई।

'पर 'हमारे' का अर्थ क्या है ?'

'गरमदली पक्ष का—'

'तुम तिलक पक्ष के हो न ?'

'तिलक की मदद में तो है, पर हमारा मत अलग है।'

'अर्थात् कौनसा मत ?'

'है।' जैसे कोई खास बात गुप्त रखता हो इस प्रकार गंभीर होकर नारायणभाई ने कहा।

'सूरत में तुमने ही जूता फेंका था ?'

'हाँ।'

'तिलक की ओर से ?'

'नही, हमारा मंडल अलग है।'

'बंगाल की Secret Society ?' हँसकर नामदार ने पूछा।

'नही।'

'तब तो गुजरातियो का गुप्त मंडल होगा।' तीस वर्ष के सचोट अनुभव से प्राप्त Cross-examination की शक्ति से नामदार ने कहा।

'हा—हा।' नामदार पिघल गया, यह सोचकर नारायणभाई से बिना हँसे नही रहा गया।

'तुम तो उसके प्रमुख सदस्य होगे ?'

'यह सब कुछ कहा जा सकता है ?'

'पर बिना बतलाये तुम्हारे निमंत्रण के विषय में विचार कैसे किया जा सकता है? बॉय!' रेस्टरां कार के 'बॉय' को जाता हुआ देखकर उन्होंने कहा, 'चाय लाओ! पियोगे न! तुम्हारा नाम क्या है?'

'नारायणभाई पटेल।' नामदार के साथ फ़र्स्ट क्लास मे चाय पीने का निमंत्रण होने से, वह ज़रूर मंडल में शामिल हो जायगा इस विश्वास से उसने कहा।

'कहो, तुम तो मंडल के नेता होगे?'

'आप गुप्त रखे तो कहूँ?'

'अवश्य!'

'परमेश्वर की सौगन्ध?'

'हाँ, परमेश्वर की।' मूँछ मे हँसते हुए नामदार ने कहा। इस बात में उन्हे मज़ा आ रहा था अतः नारायणभाई से मित्रता करने का उन्होंने निश्चय किया।

'वह सदु भी नेता है क्या?'

'यह तो मंत्री है।'

नारायणभाई को अपनी विजय मे विश्वास होने लगा। इस मनुष्य के प्रति उसका हृदय स्नेह से आकर्षित हुआ। चाय रकाबी मे डालकर सड़ाके लेते हुए नारायणभाई को विश्वास हो गया कि इस जैसा, सज्जन, होशियार और विश्वासपात्र मनुष्य दूसरा नही। और ऐसे क़ीमती आदमी को अपना बनाने के लिए, भावी विप्लव के इस नेता को अपनी प्रवृत्ति, मंडल के कारनामे, सूरत में उसकी की हुई सेवायें— इन सब का इतिहास कहना आरंभ किया।

कल्याण आया तब नामदार ने बात बंद की।

'अच्छा साहेबजी! तुम्हारे मंडल की सभा हो तब मिलना। फिर मैं देखूँगा।'

'ज़रूर ?'

'इसमें कुछ कहना पड़ता है ?'

'लेकिन तन, मन और धन माँ के उद्धार के लिए अर्पित रना पड़ेगा।'

'अवश्य।'

'ये विलायती कपडे उतारकर स्वदेशी पहनने पडेंगे।'

'अवश्य' कहकर नामदार स्टेशन पर उतरे।

नामदार को सुलोचना के योग्य वर नहीं मिलता यह विचार हमेशा उन्हे चिंतित बनाये रखता था; जाति में अच्छा से अच्छा वर था यह बात तो निर्विवाद सत्य थी। इस समय सुदर्शन को सुधारकर सुलोचना का उससे विवाह करने की एक युक्ति सूझी।

वह तार ऑफिस में गये और प्रमोदराय को अर्जन्ट तार दिया, 'Sudarshan in extremely dangerous hands. Start immediately.'

तार देकर नामदार ने सिगार सुलगाई और मूँछो मे हँसते हुए उपन्यास पढ़ने लगे।

५

सुदर्शन भूखा, थका और निस्तेज चर्नीरोड आ पहुँचा। उसके हृदय में निराशा बसी हुई थी: उसमें बडोदा जाने का उत्साह न रहा था। एकमात्र जैसे असफलता प्राप्त की हो ऐसा शुष्क कर्तव्य उसे लिए जा रहा था।

वह स्टेशन पर आया कि थोड़ी देर बाद नारायणभाई अंदर आया। उसके एक हाथ मे डंडा था और दूसरे में पोटली, उसका मुख भव्य हास्य से खिला हुआ था और उसकी आँखें दो अंगारों की तरह चमक रही थी। उसकी टोपी खिसकती-खिसकती बिल्कुल सिर के पिछले हिस्से पर पहुँच गई थी।

'क्यो मेरे सद्भाई ! आ गया क्या !' सुदर्शन-को देखकर वह उसकी ओर आया, 'दोस्त ! हमारी विजय है।' उसने नीचे झुक-कर कान में कहा।

सुदर्शन अपनी निराशा की वेदना से अस्वस्थ था। उसे मौज़ में आये हुए इस नारायणभाई के मुँह पर एक तमाचा मारने का मन हुआ। पर नारायणभाई का दर्शन और उसका उल्लास—इन दोनों का उस पर प्रभाव पड़ा। वह हँसा।

'क्यो मज़े में तो हो ? मैंने सोचा था कि तुम अभी आये ही नही।'

'अरे, भला कुछ बात है ! मेरा एक शूरवीर का वचन। मेरे लाफायत !'

'क्यो लाफायत ?' ज़रा चकित होकर सुदर्शन ने पूछा।

'कहता हूँ, पर दूसरे सब कहाँ है ?'

'वह भी बताता हूँ।' कटुता से सुदर्शन ने कहा। 'यह गाड़ी आई !' गाड़ी आने पर और दोनो बैठे।

'बतलाओ तो भाई, मैं लाफ़ायत कैसे बन गया ?'

'देखो न, हम विप्लव आरंभ कर रहे है तब हमें क्या काम करना है यह तो जानना ही चाहिये। तुम तो लाफायत होने के योग्य हो, पर वह क्यों नही आये ?'

'संक्षेप में इतना ही कि हम सब गधे है। शिवलाल श्रीनाथजी भाग गया, पाठक एक सौ पच्चीस की तनख्वाह में फँस गया, केरशास्प मारवाड़ी के हाथ में फँस गया, और मैं अपनी मूर्खता में अपने स्वप्नों मे फँसा हुआ हूँ।'

'घबराओ मत सद्भाई !' नारायण ने उसकी पीठ थपथपाई। 'मैं हूँ तब तक ऐसी बात क्यों कहते हो ? मैं अकेला ही बीस को भारी हूँगा। मैंने क्या कहा, कि हमें अपनी-अपनी पोजिशन निश्चित

करनी चाहिये। अपनी बुद्धि, शक्ति और मेधा से प्रमुख स्थान लेने के लिए पैदा हुए है। मै और तुम दोनो —'

ये शब्द सुदर्शन ने सवेरे भी सुने थे; इस समय उन्हें फिर सुनकर उसके रोगटे खड़े हो गये।

'लाफायत—और तुम कौन ?' कड़वाहट से सुदर्शन ने पूछा।

'क्या सोचते हो ?' गर्व से छाती फुलाकर नारायणभाई ने कहा : 'मैने ग्रामीणों को प्रेरित कर किया, मैने सूरत काग्रेस भंग की, मैने आज एक नवीन शिष्य मूँडा है, मै ही मडल चलाऊँगा। यह सब देखते हुए मै या तो मीरावो या नेपोलियन, और तुम लाफ़ायत। हम दोनो मिलकर······'

सुदर्शन अनिर्वाच्य धिक्कार से नारायणभाई की ओर देखता रहा।

'नारायणभाई ! यह क्या कह रहे हो ? तुम इस समय बिल्कुल ऐसे, क्यो हो गये ?'

'बिल्कुल क्या है ? मै नेपोलियन बनूँ उससे तुम्हें ईर्ष्या होती है क्या ? आज मैने देखते ही देखते नामदार जगमोहनलाल को शिष्य···'

'क्या ?' एकदम आँखें फाड़कर सुदर्शन ने पूछा।

'नामदार गाड़ी में साथ था—पूना में; Fine man; वास्तविक देश-भक्त, मैने उससे अपने मंडल के विषय मे बाते की—'

'अरे ! वह तो नरमदली है, फ़ीरोज़शाह का साथी। सरकार का पिट्ठ !'

'गलत ! बिल्कुल गलत ! ऐसी गलत अफवाह से मै नहीं चौंक सकता। सदुभाई! मैने आज स्वयं उससे बातचीत की है। मुझमे राष्ट्र-नेताओ की सी सचोट दृष्टि है। मैने तुरन्त परख लिया कि यह आदमी अपना होने के लिए पैदा हुआ है। मै तुरन्त पहुँचा और सीज़र की तरह Veny—Vidi—Vici (मै गया—मैने देखा—मेरी जीत हुई.) मेरे काम में देर नही हो सकती। हाः हाः हाः' अत्यधिक

हर्ष भरे शब्द मुख से निकलते हुए नारायणभाई ने कहा।

'वह मेरा शिष्य हो गया है। मंडल में शरीक होना उसने स्वीकार कर लिया है। जरूरी काम न होता तो वह बड़ौदा आता। जो तुमसे किसी से भी नही हुआ वह मैंने एक घड़ी में कर दिखाया।' घबराया हुआ सुदर्शन त्रासित नेत्रो से देखता रहा। इस वाग्धारा से उसका श्वास रुँध गया।

'ओ बाप!' फीके होठो से सुदर्शन बोल ही पड़ा।

'बहुत अच्छा आदमी है। मुझे चाय भी पिलाई—पार्लर कार मे। यह तो तुम नही मानते; यदि मै होऊँ तो उसको तुरन्त अपना ससुर बना लूँ। तुम्हारे प्रति प्रेम बहुत है। क्या सोच रहे हो?'

सुदर्शन और अधिक न सह सका। उसके गुस्से का पार नही रहा। उठकर इस हँसते हुए, मोटे नारायणभाई की गर्दन मरोड़ डालने की उसे तीव्र इच्छा हुई। पर वह होठ दबाकर शांत हो रहा।

'मेरे विषय मे क्या सोचा!' आत्म-संतोष के आनन्द मे नारायणभाई ने पूछा।

'मैने सोचा,' होठ चबाते हुए धीरे-धीरे सुदर्शन ने अपने गुस्से का का जहर बाहर निकाला, 'कि तुम सिर से पैर तक बिल्कुल कुम्हार के घोड़े हो!'

'यानी?' एकदम चौककर नारायणभाई ने कहा।

'यानी क्या, अच्छे खासे गधे!' सुदर्शन ने कहा, 'नामदार जगमोहनलाल जैसे पक्के उस्ताद से अपनी सब योजनाएँ बता आये। अब हम सबकी आफ़त आ गई। कल सब पकड़ लिये जायेंगे इसका भी कुछ होश है? जरा तो अक्ल रखनी थी!'

'क्यो सदुभाई! बहुत आकाश मे उड़ रहे हो क्या? मुझे ऐसा न कहना, समझे? देश की सेवा तो वास्तव में मै ही करता हूँ, तुम नहीं। तुम अकेले ही मंडल पर अधिकार जमाना चाहते हो?'

'मुझे न तो तुम्हारे मंडल से कुछ काम है और न तुमसे। इतनी देर से क्या-क्या बोल रहे हो इसका भी कुछ होश है—'

'हाँ, है। यह तो एकमात्र ईर्ष्या तुमको—'

'तुम्हारे साथ ज्यादा बात करना नही चाहता। मुझे तुम्हारे मंडल से कुछ लेना-देना नही।' धैर्य का अत हो जाने के कारण सुदर्शन बोला, 'हमारे जैसे मूर्ख कर ही क्या सकते है!'

'तुम मूर्ख हो, मैं नही।' गर्व से नारायण ने कहा, 'तुम्हारी मेरी दोस्ती आज से खत्म। आज से मै तुम्हारे मंडल मे नही। मैं अकेला ही देश का उद्धार करूँगा। देखना, छ. महीने में ही मै तुम्हे नीचा दिखाता हूँ या नही।' कहकर उसने आकाश की ओर ताका; 'लोग कितने ईर्ष्यालु है—देखते ही आग लग जाती है।'

इतने मे स्टेशन आया। नारायणभाई की आँखें फटी हुई थी। गुस्से में उसके नथुने धमनी की तरह बोल रहे थे। उसने दरवाजा खोला, गठरी उठाई, 'ईर्ष्यालु आदमी का मैं मुंह नही देखना चाहता।' वह बड़बडाया।

नारायणभाई उस डब्बे छोड़कर दूसरा खोजने निकला सुदर्शन को तिरस्कार से देखता रहा।

६

ट्रेन चलने पर सुदर्शन खिलखिलाकर हंसा—आत्मतिरस्कार से, भग्न-हृदय की व्यथा से। यह इसका मंडल, ये इसके बनाये हुए संघ के कार्यकर्ता, ये देश के उद्धारक, ये स्वतन्त्रता के साधक, 'माँ' का 'प्राण' वापिस लानेवाले शूरवीर। उसकी दृष्टि मे प्रत्येक चीज स्पष्ट दिखाई दी। सब—उसके साथी—कैसे बलहीन, मूर्ख, निर्वीर्य—इनमें एक भी वीर नही, एक भी मनुष्य नही एक भी बुद्धिमान नही। और यह मीराबो तथा नेपोलियन! 'ओ भगवन्!' कहकर वह आत्म-तिरस्कार से फिर हँसा

जलते हुए माथे को शांत करने के लिए, खिड़की से बाहर वह देखता रहा। ये सब मूर्ख थे—वह मूर्खों का शिरोमणि था। उस में केवल स्वप्नो की सृष्टि बसाने की शक्ति थी—किसी समय, ये सब मित्र भी एक तरह से स्वप्न-स्रष्टा ही थे। केवल स्वप्न ही! उनकी समस्त सृष्टि स्वप्नो की बनी हुई थी। जिसे वे 'माँ' कहते है उसें 'माँ' समझते नही। जो उद्धार उन्हें करना था, वह उद्धार नही था, वल्कि वर्तमान समय के प्रभाव से पैदा हुआ भ्रम था; जिनको वे देव सदृश्य नेता समझते थे वे एकमात्र महत्वाकांक्षी और अल्प दृष्टिवाले सामान्य मानव थे; जो अपने को नरपुंगव समझते थे वे एकमात्र चंचल बुद्धि, अनघड़ और मानवताविहीन विद्यार्थी थे। और वह स्वयं बुद्धि-विहीन, मूर्ख, नही वरन् पागल था। पागलपन की धुन मे उसने केर-शास्प विप्लव-विधाता के दर्शन किये, शिवलाल को निःस्वार्थ राज-नीतिज्ञ समझा; अंबालाल को विनाशकता की मूर्ति माना; नारायण-भाई को असंतोष और तूफान विधायक समझा, अपने को माँ का लाड़ला राष्ट्र-विधायक मंत्रद्रष्टा माना; और वास्तव में देखा जाय तो वे सब, निकम्मे, डरपोक, कर्तव्य-भ्रष्ट लड़के थे! दूसरे देश के लडको जितनी मानवता भी उनमे न थी! कापड़िया सच कहता था। हाँ—बिल्कुल ठीक कहता था! इस देश की मान-वता की मिट्टी ही पोच है, सार और तत्वहीन! और—और—उनमें, समस्त देश में, देश के अग्रगण्य महात्माओ में व्यवस्था-वृत्ति नाममात्र को भी न थी। इस देश के प्रत्येक व्यक्ति अपने घेरे मे घमने-वाले दूसरो की चावी के वल चलनेवाले विभिन्न आकार-प्रकार के खिलौने थे। और ब्रिटिश साम्राज्य, जीवित, धधकती हुई—आगे दौड़ती हुई—एक प्राण हो ऐसी एकता से युक्त—रेलगाड़ी की तरह भयानक शक्ति से, दुर्धर्ष सचोटता से, दिन-प्रति दिन आगे वढकर समस्त संसार को अपनी वना रहा था।

जैसी उसके मित्रो की दशा थी वैसी ही उसे अपने नेताओ की भी लगी।

फ़ीरोजशाह और तिलक, गोखले और अरविंद बाबू समझते थे कि वे देश का उद्धार कर रहे है, प्रजा के लिए स्वातन्त्र्य प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं; पर सब थोड़े बहुत स्वप्न ही अपनाये हुए थे। दस हज़ार मनुष्य जो कांग्रेस में आते थे वे एकमात्र आनन्द लेने, भाषरण सुनने और अपने देश के उद्धार-कार्य मे भाग ले रहे है यह विश्वास लेकर आते थे। उनमे सतत उत्साह नही था, भगीरथ-निश्चय, व्यवस्था-शक्ति, समग्र आत्मा नही थी। जो कार्य समस्त इंग्लैंड कर सके, उसी कार्य को व्यवस्था-शक्ति से वहाँ का एक व्यक्ति अच्छी तरह कर सकता है। और हमारे यहाँ के एक सौ आदमी भी नही कर सकते।

उसके पहले के सपने क्या ठीक थे : ये सब पाषाण की छाया में रहनेवाले प्राणी थे? वह क्या करे? उसकी आँखो से छलछल आँसू बहने लगे, अपनी—अपने भाइयो की अधमता, निर्जीवता और पराधीनता का भान उसके हृदय को चीरे डाल रहा था।

क्या वह आज तक, अस्तित्वहीन, मीठे सपने ही देखा करता था? धुएँ को मुट्ठियो में ही भरा करता था? धुएँ की मुट्ठियाँ! उन्हें भरने का भी उसमें बल नही था। वीर पुरुष स्वप्नो से जागने की अपेक्षा, स्वप्नो में सोते हुए मरने में ही मानवता समझते थे, उनमे से भी वह नही था। स्वप्नो से जागकर, वे दुनिया के आदमी बनकर, क्षुद्र व्यवहार को महान् वस्तु समझते थे।

और अपने आप को आध्यात्मिक, वेदांती, कर्मयोगी समझते थे! कैसा घृणित व्यक्तित्व—कैसी धोखेबाजी! अशक्ति, निर्बलता, दुःख और आडंबर को ढकने का नाम शक्ति! ये सब मित्र अपने को कर्मयोगी मानते थे! केरशास्प, अंबालाल, नारायण का कैसा कर्मयोग! और वह स्वयं—अधम से अधम—अंधो में अंधा···केवल भावनाओ को···

इन दृष्ट-स्वप्नो को, प्रेरणा और मूर्खता के उत्साह को, कर्मयोग माननेवाला क्षुद्र से क्षुद्र जंतु ! उसे फिर रोना आया। उसे अब स्वप्न भी नही आते, इतनी भी योग्यता उसने खो दी—यह दैवी कृपा भी अब उस पर नही होती थी, किस लिये ? 'माँ' अब दर्शन नहीं देती···'माँ माँ !' वह किसे माँ कहता था ? इस विशाल प्रदेश को जहाँ उस जैसे निकम्मे जतु बिलबिलाते हो ?

इन अकल्प्य शंकाओ मे विचरण करते-करते वह व्याकुल हो उठा। उसने अपना सिर पीट लिया। उसका पुण्य समाप्त हो गया। रो-रोकर उसकी आँख लाल होने लगी···और थकन तथा जागरण के प्रभाव से उसे नशा-सा चढने लगा।

एकाएक वह जाग पड़ा। 'धनी बहिन की आवाज़ ! यहाँ कहाँ से ?' उसने घबराकर चारो ओर देखा। पासवाले महिलाओ के डब्बे मे से किसी की आवाज आ रही थी। उसे भ्रम हुआ।

अंतिम बार चलते समय धनी बहिन ने कैसे साहस से उसमें अपनी श्रद्धा प्रदर्शित की थी ! इस श्रद्धा का पात्र था वह ? उसके मस्तिष्क मे भावात्मक वातावरण छा गया। अधखुली आँखो से उसने धनी का हँसता हुआ मुख देखा······वह निद्रावश हो गया।

# ३१वीं जनवरी के समारोह का विवरण

१

मियाँ गाँव आने पर नारायणभाई को ट्रेन में से उतरकर जाते हुए सुदर्शन ने देखा। मध्यकालीन राजपूत की तरह उस महारथी ने मृत्यु-पर्यन्त मान भंग न होने की क़सम खा ली थी।

ग्यारह बजे सुदर्शन बड़ौदा उतरा। ब्रिटिश साम्राज्य पर विजय प्राप्त करने के लिए स्थापित किये हुए मंडल का मंत्री, निस्तेज आँखें, बिखरे हुए बाल तथा खिन्न हृदय में छोटी-सी ट्रंक तथा कन्धे पर ओढने की चादर डाले बोर्डिंग में घुसा।

सनत्कुमार जोशी के रूम में सब इकट्ठे होनेवाले थे। स्क्वायर ब्लॉक के १९वें रूम में जोशी और धीरू शास्त्री उसकी प्रतीक्षा में थे।

जोशी ने सवेरे तीन सौ दंड लगाये थे। इस समय भोजन के पश्चात् पान की तरह वह थोड़ी-सी मसिल्स की कसरत कर रहा था। धीरू खाट पर पड़ा था।

'ओः हो, सदुभाई! आओ आओ! तुम्हारी ही राह देख रहे हैं।'

'दूसरे सब कहाँ हैं?' जोशी ने पूछा।

'मर गये।'

'अर्थात्?' धीरू उठ बैठा।

सुदर्शन ने कपड़े उतारते हुए बंबई के मित्रो की हकीकत सुनाई।

'लेकिन यहाँ के लोगो का क्या हाल है—'

'और दूसरा क्या हो सकता है?' धीरू ने कहा, 'जोशी कसरत कर रहा है और मैं पड़ा हुआ हूँ।'

'पारेख?'

'पारेख का प्रेस था न, उस पर पुलिस ने छापा मारा है।'

'फिर ?'

'पारेख कही छिपा हुआ है।'

'—और पंड्या काका ?'

'पंड्या काका का तुम्हे पता नही ?'

'नही !'

'उसे अमेरिका जाने की स्कॉलरशिप गायकवाड ने दी है। वह तो जाने की तैयारी मे है, अब आनेवाला ही है।'

'चलो, यह अमेरिका में ही कुछ करेगा।' सुदर्शन ने कहा।

'करेगा क्या सिर ? उसे स्कॉलरशिप मिली, उसी दिन स्पष्ट कह दिया है कि वह अब मंडल में सहयोग नही देगा।'

'ठीक है, वह भी सब के रग में ही रँगा हुआ निकला।' तिरस्कार से सुदर्शन ने कहा। 'गिरजा शुक्ल ? वह तो पहले पारेवडी संस्थान के ठाकुर के यहाँ कारिंदा था शायद ?'

'उसके बाद उसकी भी खबर नही मिली।'

'मैंने भी दो तीन पत्र लिखे, पर जवाब नही मिला।' सुदर्शन ने पूछा, 'अब क्या···'

'चलो मेरे साथ।' जोशी ने कहा, 'मैंने हनुमान की आराधना शुरू कर दी है।'

'क्या लाल स्याही से एक लाख और आठ बार लिखने की ?' कड़वाहट से सुदर्शन ने पूछा।

'धार्मिक बातों मे मजाक् नही होनी चाहिये।' जोशी ने एक गहरा श्वास लेकर जैसे नल में से पानी छूटता हो ऐसे गंभीर स्वर में श्वास निकालते हुए कहा।

'मुझे तो पहले से ही विश्वास था।' धीरू ने कहा।

'क्या ?'

'धार्मिक बल के बिना कुछ सिद्ध नहीं हो सकती।'

'यह तो हमारा पुराना सिद्धांत है।'

'पुरातन परन्तु सदा नवीन। हम धार्मिक प्रजा है, हमारे संस्कार धार्मिक है। जो ब्राह्मण कर गये—जो महर्षि दयानंद कह गये वही करने योग्य है।'

सुदर्शन ने कन्धा उचकाकर तिरस्कार प्रदर्शित किया।

'एक समाज, एक धर्म और एक राष्ट्र बनाओ।' जैसे आर्यसमाज के मंच से बोल रहा हो, ऐसी आवाज और उच्चारण से धीरू ने कहा।

'लेकिन, अब हमारा क्या होगा?" बड़ी मुश्किल से सुदर्शन ने कहा।

'चलो मेरे साथ गुरुकुल में।' धीरू बोला।

'मेरी समझ में यह कुछ आता नहीं।' निराशा से गर्दन हिलाकर सुदर्शन ने कहा।

'आज भी?' धीरू ने कहा।

'हाँ, हम में धर्म समाया कि फँसे अंधश्रद्धा के कीचड़ में या धार्मिक झगड़े में। धर्म ने ही हम लोगो को विष दिया है।'

'धर्म बिना भला कुछ हो सकता है?'

'राष्ट्र-धर्म से रहित दूसरा धर्म-भारतवर्ष मे तो पाप है।' सुदर्शन ने कहा।

'तब अपना मडल नहीं हो सकेगा।' धीरू ने कहा।

'हो भी कैसे? और कौन करे? हम अपनी मूर्खता जितनी जल्दी समझें उतना ही अच्छा। कर्मनिष्ठ मंडल स्थापित करने की हम में एकता नहीं, और न उस कार्य को पार उतारने की शक्ति ही है।'

'परन्तु हुआ होता तो अच्छा था।' जोशी ने कहा।

'हाँ।' धीरू ने निःश्वास छोडते हुए कहा।

'हम लोग एक दूसरे के साथ कुछ तो सबंध रखे रहते।' जोशी ोला. 'कुछ नहीं' उसने फिर साहस किया, 'माँ के हम पुत्र है उसका उद्धार किये बिना नही रह सकते ...'

सुदर्शन तिरस्कार से हँसा।

'हाँ, उद्धार करेंगे, जरूर!' उसने दाँत पीसकर कड़वाहट से कहा, 'जैसे मादा बिच्छु का नाश उसके बच्चे करते है, उसी तरह! उसे नोचते रहें, अन्त में खा जाएँगे।'

सुदर्शन वहाँ से उठकर चला गया।

संध्या को अंग्रेजी वेष-भूषा मे पंड्या काका आये। टाई बाँधना न आने से देशी तरीके से गाँठ लगाई थी और बूट-मोजो की आदत न होने से, जैसे कोई देहातिन बंबई आकर सभ्य बनने के लिए ऊँची एडी का बूट पहनकर चले, इस प्रकार वह चलता था।

'सदुभाई! धीरू! सनत्! कैसे हो? दूसरे सब कहाँ है?'

धीरू ने मंडल के सदस्यो के कारनामे फिर से सुनाये।

'अच्छा हुआ, अब हम भी देशोद्धार से बाज आये।'

'यह कब सूझा?'

'पहले स्व-उद्धार फिर पर-उद्धार सदुभाई! अब तुम भी यह लत छोड़ दो।'

'...और फिर?'

'नामदार की लड़की से विवाह कर बैरिस्टर हो जाओ, पैसा जमा करो और फिर हम सब देश का कार्य करेंगे। क्या सोच रहे हो?'

'तुमने जो कहा वह।' शांति से सुदर्शन ने कहा।

२

गिरजाशंकर शुक्ल पारेवडी संस्थान के ठाकुर के यहाँ ५० रुपये की तनख्वाह पर कारिंदा था।

पारेवडी ठकुरात वड़ोदा के अधिकार में थी। उसका ठाकुर अज्जुवापा, पचास वर्ष का, असली जमाने का, अफीमची, मौजी और भला आदमी था। साल भर में पाँच हजार की आमदनी समाप्त कर साथ में एक अच्छा खासा कर्ज भी अपने ऊपर रखता था।

अज्जुवापा शुक्ल को पढने का खर्च देता था। 'बामण का लड़का है—' यह उनका पहला हेतु, 'घर का है—किसी दिन बड़ा आदमी बनेगा—' यह दूसरा हेतु। गिरजा शुक्ल १९०७ में बी० ए० में फ़ेल हुआ। अब पूरा साल कैसे विताया जाय इस प्रश्न का निर्णय अज्जुवापा ने किया। और शुक्ल को काम चलाऊ कारिंदा रख लिया।

सारे दिन सेना संबंधी थाये किस्से और राष्ट्रीय पत्र पढ़ने में; समाजीराव गायकवाड के सद्‌गुणो में मुग्ध रहने में और फ़ौजी भावनाओ में व्यस्त रहकर ही वह समय बिताता था। इटली का विप्लव उसके हृदय में बसा हुआ था। गेरी बाल्डी की तरह फौज लाकर, भारत को स्वतन्त्र करना, गायकवाड सरकार को विक्टर इमेन्युअल की तरह गद्दी पर बैठाना और स्वयं समस्त भारत का सर्वाधिकारी बनना—इस विषय में उसने इतना विचार किया था और इतनी योजनाएँ घड़ी थी कि उनमें अब ज़रा भी कोई खोट या कमी नहीं रही थी।

इस विश्वास के साथ वह अज्जुवापा का कारिंदा हुआ था। अज्जुवापा के पास इक्कीस आदमियो की छोटी-सी सेना थी। उसमें सुधार करने का काम उसने अपने ऊपर लिया, और पारेवड़ी पलटन के पट्टे चमकने लगे।

कारिंदे की हैसियत से अज्जुबापा के साथ बैठकर बात करना, दोपहर को साथ बैठकर भोजन करना, शाम को अपने यार-दोस्तो के साथ बैठकर कसुम्ब पियें तो हाज़िर रहना, रात को साथ जीमना, और फिर भाट अज्जूबापा का गुणगान करे तो उसमे रस लेना—इतने काम उसके कारिंदेपन का पहला क्रम था।

अज्जुबापा 'शकल' पर—बापा को ह्रस्व और दीर्घ हमेशा बिना ज़रूरी चीज़ें लगती—फ़िदा था, और उसके स्वच्छ कपड़ो पर मोहित—'जैसे छैला हो!' उसकी उम्दा चाल-ढाल उसे अच्छी लगती,—जैसे मेरा बेटा 'शपई' हो!' वह उसकी अंग्रेज़ी पर अधिकार देखकर पागल हो जाता—'मेरा लड़का गोडडेम है!'

इस उमड़ते हुए स्नेह के परिणाम-स्वरूप बापा शुक्ल को 'हुक्के के दो दम मेरे बेटे,' और 'अफीम के दो छींटे लो बेटा,'—प्रतिदिन दिये बिना न रहता था। और इस सब महत्ता और प्रीति का पात्र बना हुआ शुक्ल कारिंदागिरी करता और अपनी छाती प्रतिदिन सवा गज़ ऊँची होती हुई देखता।

परन्तु शुक्लजी राष्ट्रधर्म को पल भर भी भूलते न थे। 'माँ' को स्वतन्त्र करना, गायकवाड़ को गद्दीनशीन बनाना—ये दो वस्तुएँ जागते, सोते, अफीम के झोके खाते हुए या भाट के कवित्त में मस्त होते हुए, भूलते न थे; इतना ही नही दिन-प्रतिदिन ये वस्तुएँ उनकी आँखों के आगे नाचने लगीं। सवेरे उठकर संध्या-स्नानकर उनके लश्कर में बेकार रहनेवाले सात-आठ आदमियों की पलटन का निरीक्षण करने जाना पहले तो उन्हे अप्रिय लगा पर धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि वही तो एकमात्र उनका सरदार है। प्रत्येक आदमी के पास छोटा-सा लश्कर है। कितने ही सरदार अलग-अलग जगहो पर काम में रुके हुए हैं। ऐसे-ऐसे ख्यालकर वह घर जाकर, सैनिक विषय की पुस्तकें लेकर खाट पर बैठते, नही तो जल्दी-जल्दी

बरामदे में घूमते हुए टुकड़ियों का किस प्रकार विभाजन किया जाय, किस प्रकार विभिन्न स्थानों पर उन्हें एक किया जाय इसका विचार करते।

इतने में सुदर्शन का पत्र आया। ३१वीं जनवरी को बड़ौदा में जरूर एकत्रित होना है पर उसने तो कोई तैयारी की नहीं थी। वह तुरन्त जाकर पाठशाला के मेहताजी के पास से हिन्दुस्तान का बड़ा नक्शा ले आया, और रात को अज्जुबापा की ड्यूटी बजाने के बाद, नक्शा जमीन पर फैलाकर हिन्दुस्तान के स्वातन्त्र्य युद्ध के बारे में विचार करने बैठे।

गेरी बाल्डी के पराक्रम तो उनके मस्तिष्क में घर बनाये ही हुए थे, भाट के कवित्त ने रग-रग में वीरता का प्रसार कर दिया था : और उसकी कसुम्बे का पानी पीने के बाद उन्हें अपना मस्तिष्क जरा ठीक और व्यवस्थावृत्ति सतेज लगी। घिरी हुई भौंहो के नीचे उनकी आँखो मे एक महासमर्थ योद्धा की निश्चल चमक थी।

'क्या कर रहे हो ?' उनकी स्त्री ने पूछा।

'काम में हूँ।' संक्षेप में उन्होंने जवाब दिया, 'तू सो जा।' धर्मपत्नी ने आज्ञा पालन की और वह अपनी लड़की के घिसे हुए छोटे-छोटे सुन्दर गोल गिट्टियाँ जो आलमारी मे पड़ी थी उठा लाया। नक्शे के पास दीया रखकर प्रत्येक टुकड़े को अपने एक-एक मित्र की सेना का नाम दिया—व्यूह-रचना आरम्भ की।

पारेवड़ी का लश्कर अहमदाबाद पर; बड़ौदा की टुकड़ी धीरू बंबई ले जायगा; केरशास्प बंबई मे टुकड़ियाँ इकट्ठी करेगा; नारायण पूना रोक रखेगा; सनत् जोशी पंचमहाल मे आती हुई फौजो को अटका देगा; मोहन पारेख अपनी टुकड़ी के साथ मध्य प्रांत की रक्षा करेगा; सदु बबई में रहकर केरशास्प की मदद करेगा और ताजपोशी की तैयारी करेगा। स्वयं पारेवड़ी से मेसाणा—मेसाणा से

अहमदावाद—अहमदावाद से बड़ौदा—बडौदा से बंबई—बढ़ती हुई विजयोन्मत्त सेना को साथ लेता हुआ—धूमकेतु सदृश्य भयंकर—गायकवाड की बाँह पकड़कर—बंबई में······इस प्रकार मूँछो में वालने हुए—गिट्टियाँ रखते हुए—व्यूह रचते हुए, भारत की आजाद सेना के नायक ने आधी रात समाप्त कर दी। सवेरे नक्शे पर पड़ा-पडा वह सो रहा था।

वह उठा, आँखे मली, चारो ओर देखा। कहाँ पडा था इसका विचार किया। पहले कुछ-कुछ याद आया फिर सब याद आया। ठीक बात है—कैसी प्रेरणा हुई! बिल्कुल ठीक, उसके व्यूह मे अपूर्वता ही थी।

सवेरे ज़रा नये जोश मे उसने······के लश्कर का निरीक्षण किया ; अज्जुबापा के पास गया तो उसी भ्रम में उसने अज्जुबापा को लश्कर बढाने की सूचना दी और दूसरे तीन आदमी और रखने की उसे आज्ञा मिली।

शुक्ल को संतोष हुआ। उसने दिन भर व्यूह का विचार किया। नये केन्द्र, नवीन रचना, नया आक्रमण उसे सूझता ही रहा। संध्या को उसका मन प्रफुल्लित था। अफ़ीम का पानी आज उसे और भी मधुर लगा। भाट के कवित्तो मे समरागण के गीतो की ध्वनि सुनाई दी।

रात को घर गया तो उसे स्पष्ट हो गया कि उसका रचा हुआ व्यूह दुर्जय था। उसने पत्नी को पिछली रात की तरह आज भी सो जाने की आज्ञा दी। चुपचाप नक्शा फैलाया, दीया रखा, गिट्टियाँ ली। 'केरशास्प के पास बड़ा केन्द्र है। और दो टुकड़ियाँ देनी चाहिये। पंजाब मे लश्कर अधिक है। शिवलाल की टुकड़ी आबू के आगे रखनी चाहिये।' उसने एक गिट्टी वहाँ रखी—'और नारायण की मदद से अंबालाल को चलना चाहिये।' यह गिट्टी जोर से खंडाले पर रखी।

अन्त में सैन्य की रचना हो जाने पर शुक्ल नक्शे पर से उठा,

और दूसरे महत्त्वपूर्ण विषयो पर ध्यान दौड़ाया। गायकवाड़ गद्दी पर बैठेंगे, पर विजेता की तरह ताज उसे ही पहनना पड़ेगा। एक टूटी हुई कुर्सी थी उसको सिंहासन मानकर वह कमर पर हाथ रखकर खड़ा रहा।

'सरकार ! इस प्रकार खड़े रहो !' उसने सिंहासन-स्रष्टा के गर्व से कहा, 'इस प्रकार माथा रखो। लोगो को अपना मुख देखने दो !' उसने हाथ में समस्त भारत का ताज लिया और 'जहरी सांप' में नरसिंह डाकू जिस छटा से अपनी गर्दन ऊँची रखता था, उसका अनुकरण करते हुए सामने खड़े दीनवदन नरेश से कहा, 'गो ब्राह्मण प्रति-पाल ! आज से आप धर्मराज के परम पुनीत सिंहासन पर अधिष्ठित हो रहे है, यह ताज चन्द्रगुप्त मौर्य के सिर पर ब्राह्मण चाणक्य ने रखा था उसी प्रकार मैं आपके सिर पर रख रहा हूं। भारत के स्वातन्त्र्य का सरक्षण आज से तुम्हारा कर्तव्य होगा। उसकी महत्ता की वृद्धि यही तुम्हारा आज से स्वप्न होगा। गौ-ब्राह्मण प्रतिपाल की जय !'

उसने ताज गायकवाड के सिर पर रखा—और चारो ओर देखा, उपस्थित जन-समूह ने विजयघोष किया।

शुक्ल उस ओर मुडा। 'मेरा कर्तव्य समाप्त हुआ। मैं अब—' नही ! प्रजा याचना कर रही थी, नरेश प्रार्थना कर रहा था, 'तुम ! तुम चले जाओगे तो हमारा क्या होगा ?' 'अच्छा, जब तक मैं संन्यास न लूँ तब तक अपना कर्तव्य पालन करूँगा।'

दूसरे दिन शुक्लजी टूटी कुर्सी के पाये के पास से उठे। पहले तो चौंके, फिर सब कुछ—अच्छी तरह से—याद आया; नक्शे की ओर गर्व से दृष्टिपात किया।

काम पर जाने से पहले उसे धीरू शास्त्री का पत्र मिला। उसमें ३१वी तारीख को बडौदा जरूर-जरूर आने के लिए लिखा था। 'मेरे

जनरल कैसे सावधान है !' वह बडबड़ाया और फिर जैसे कुछ हुआ हो इस प्रकार आँखे स्थिरकर देखता रहा। फिर अपनी लड़की के पालने के सामने जा खड़ा हुआ, 'कारिंदे ! सब केन्द्रो पर खबर भेज दो—गुप्तरीति से कि तारीख ३० को सवेरे सब को बंबई मे इकट्ठा होना है। ताजपोशी है।'

बोलते-बोलते एकदम जैसे अभी जागा हो इस प्रकार आँखें मलने बैठा। उसने थोड़ी देर तक अपने कमरे मे चारो ओर दृष्टि डाली। पालने की ओर देखा, फिर निरर्थक हँसी हँसकर दरबार मे गया।

अज्जुबापा के पास बड़ौदा के दीवान ऑफिस का अंग्रेजी में लिखा हुआ पत्र आया था, वह उन्होने शुक्ल को बाँचने के लिए दिया। उसमें जो कुछ था उसका उसने अर्थ बताया।

'ठीक ! मेरे बेटे ! एक सुन्दर सा पत्र लिख दे।'

'बापू , ३१वी को तो मुझे बड़ौदा जाना पड़ेगा।'

'क्यो ?' बड़ौदा जाना अज्जुबापा के लिए यह एक बहुत बड़ी बात थी।

'जरूरी काम है। साथ ही साथ दीवान साहब से भी मिलता आऊँगा।'

'अरे वाह रे मेरे बेटे ! दीवान साहब को मेरा राम-राम कहना।'

'जरूर बापू !'

पत्र शुक्ल ने अपनी जेब में रखा। इस पत्र के प्रताप से शुक्लजी को अब नया रंग चढ़ा। संध्या को हुक्के के दो कश लेने के बाद इस पत्र ने जेब मे ही पड़े-पड़े अपना रूप दिखाया। पत्र गायकवाड़ का है, इसमे महान् राज्य रहस्य है, और ३१वी का संकेत, यह पत्र उसी के लिए ही भेजा है। इसमें कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी है।

कसुम्बा पीने के बाद इसका रहस्य और भी समझ में आ गया। सारा बड़ौदा युद्ध के लिए तैयार था—एकमात्र उसकी आज्ञा की प्रतीक्षा थी।

रात को शुक्लजी घर गये, तब व्यूह-रचना की, खास संदेश-वाहक द्वारा सब जगह आज्ञाएँ भिजवायी, सेनापतियों को सूचनाएँ दी, नेपोलियन जिस प्रकार चाहे जहाँ सो जाता था इसी तरह वह भी जमीन पर पड़े-पडे ही निद्रादेवी के आधीन हो गये।

३

शुक्लजी ने तारीख २६ को दिन भर सारा पाठ दोहराया: अज्जुवापा के साथ हुक्का गुडगुडाया, अफ़ीम चढ़ायी, और रात में व्यूह अंतिम बार रचे। और सारी रात उसने कौन जाने कितने कार्य-वाहको को आज्ञापत्र दिखाये और कितने सेनापतियो को, लिखित, ज़बानी, टेलिग्राफ से और हेलिओस्कोप से हुक्म भेजे।

तारीख ३० को सवेरे रात को जागते रहने पर भी अपने मन में नवीन युक्तियाँ और नवीन व्यूह रचते हुए उसने भोजन किया; अज्जुवापा को सलाम कर आया और एक छोटी गठरी तथा सौ रुपये लेकर बैलगाडी में बैठा।

बैलगाडी के बैल चले जा रहे थे, फिर भी जैसे स्वयं घोड़े पर सवार हो ऐसा लगता था। हजारो घुड़सवार साथ चल रहे थे, और उनके पैरो की प्रतिध्वनि बैलो के पैरो की आवाज के रूप मे सुनाई दे रही थी। गाड़ी की गडगड़ाहट तोपखाने की सी आवाज़ थी—और डंके तथा धौसे की ध्वनि बैलों के घुंघरू में सुनाई दे रही थी।

उसने महेसाणे से अहमदाबाद की टिकट ली, और शाम को अहमदाबाद जा पहुँचा।

अहमदाबाद देखकर उसके अभिमान का पार न रहा। यहीं अंग्रेज राज्य करते थे। पुलिस में उसके आदमी थे—उन्हें क्या मालूम कि कल भारत स्वतन्त्र होनेवाला है। ज़रा मूँछो मे मुस्कराया।

फिर वह पुलिस के सिपाही के पीछे-पीछे चलने लगा। एकदम उसके मस्तिष्क में कुछ खटका। उसकी आँखो मे पलभर के लिए अँधेरा छा गया। उसने गठरी पटककर आंखो पर हाथ रख लिया।

उसने जब देखा तो उसका जी जलने लगा। वह पुलिस का सिपाही नही था, दुश्मनो के भयकर सेनापति की तरह उसको पहचाना। यह षड्यन्त्रो का निर्माता—सारे अन्याय का मूल है। उसके पास फ़ौजी गुप्त योजना थी। इस समय उसके पीछे जाकर उससे कागज़ पत्तर छीने बगैर छुटकारा न था। कठोर दृष्टि बना शुक्लजी उस पुलिस वेश मे फिरनेवाले षड्यन्त्रकारी के पीछे तेजी से चले।

पुलिसवाला रुका—एक बेर बेचनेवाली के साथ बात करने के लिए। बेर बेचनेवाली कोई उसकी परिचिता थी और नखरे के साथ भद्दी बाते कर रही थी। सिपाही ने उसको दो-चार बाते सुनायी और हँसकर उसके टोकरे मे हाथ डाला। वह भी चुहल करती हुई चिल्लायी और टोकरा पीछे खींच लिया। थोड़ी देर तक दोनो दिल्लगी करते हुए टोकरे की खींच-तान करते रहे, फिर पुलिसवाले ने मुट्ठीभर बेर उठा लिये। शुक्ल ने लपककर उसका हाथ थाम लिया।

उसे दु:खार्त भारतवासियो की दयनीय स्थिति का तीव्र भान था। कई बार उसने गरीबो और पराधीनता मे फँसे हुए भारतवासियो की दशा का विचार कर आँसू बहाये थे। शासन की कठोरता उसे हमेशा चुभा करती थी, गुलामी की जंजीरें उसके कान मे खटका करती थीं, अन्याय के आघात उसका हृदय सहता रहता था—अब शासन, अत्याचार और अन्याय की मूर्ति था, जैसा—यह कलमुँहा पुलिस भारत माता के अवतार के समान इस गरीब निराधार बेरवाली के बेर छीन रहा

था और वह—अगणित सेनाओं का नायक-विजय-प्रयाण पर अग्रसर नरवीर—भारत की स्वन्त्रता का विधायक पास में खड़ा था तब भी ? यह कैसे हो सकता है ?

पुलिसवाला एक क्षण के लिए घबराया। चोर के पकड़नेवाले को किसने न पकड़ा ?—जमादार, हवलदार, इन्सपेक्टर, सुपरिन्टेंडेंट! वह मुड़ा। उसने दारू पिये एक गँवार लड़के को देखा ! उसका हृदय सहम गया।

शुक्ल ने देखा कि इस दुष्ट अन्यायी ने उसको पहचाना नहीं। गुप्त वेश में फिरनेवाले उस जैसे महारथी को वह पहचाने भी कैसे ?

'खबरदार , दुष्ट !' उसने बैठी हुई आवाज़ में कहा, 'तू न्याय का प्रतिनिधि होकर इस गरीब बेचारी पर .ज़ुल्म करता है ?'

पुलिस ने एक झटके में अपना हाथ छुड़ा लिया और एक मजबूत हाथ शुक्ल को जमाया। 'तू कौन है हैवान ? मेरा हाथ पकड़ता है ! चला जा अपने रास्ते। क्या तेरी मौत आई है ?'

शुक्ल हँसा। अभी इस मूर्ख ने उसे पहचाना नहीं है।

'कौन हूँ यह अभी पता चल जायगा। रख दे इस औरत के बेर।'

'चुप रह, नहीं तो अभी हवालात में बन्द कर दूँगा।'

गॉल में से विजित होकर वापिस लौटा हुआ जूलियस सीज़र रोम का खजाना अपने क़ब्ज़े में करने के लिए गया, वहाँ चौकीदार ने द्वार खोलकर खजाना देने से इन्कार कर दिया। हज़ारों विजय प्रमत्त वीर पीछे खड़े थे, यह वह भूल गया। शांति से दैवी जूलियस ने कहा, 'युवक ! मेरे लिए कहने की उपेक्षा करना आसान है।' सीज़र के इस अमर सत्ताधीश रोब का स्वांग शुक्ल ने पलभर के लिए सजाया, 'नराधम !' उसने अपने पीछे कितनी सेना है इस विश्वास से कहा, 'बेर रख—नहीं तो रखवा दूँगा।'

'रखवा देगा, तू कौन······है ?'

पुलिस दादा ने अपनी रोबदार भाषा से संबोधन करते हुए कहा, 'तू चल गेट पर, तुझे हवालात में बन्द करता हूँ।' कहकर, बाँह पकड़कर शुक्ल को घसीटने लगा।

शुक्ल ने छूटने के लिए हाथ-पैर पटके पर पुलिसवाला उससे तिगुना जोरावर था। उसने छूटने का प्रयत्न छोड़ दिया।

'ठीक है, ले जा ! देखता हूँ।'

'देखेगा क्या अपना सिर ! तू......'

'कल सवेरे देखना।'

'देखा जायगा।'

गेट आया। पुलिस ने शुक्लजी पर जबरदस्ती बेर लेने की तोहमत लगाकर जमादार के आगे पेश किया। बेर पुलिस के हाथ में थे।

जमादार साहब ने कागज़ निकाला और मेज़ पर आ बैठे।

'नाम ?'

'शुक्ल।'

'पूरा नाम बता और बाप का नाम क्या है ?'

शुक्लजी हँसे। कल सवेरे संपूर्ण सृष्टि एकमात्र 'शुक्ल' —विद्वान् 'शुक्ल,' 'एक और अद्वितीय शुक्ल' से परिचत हो जायेगी। नेपोलियन का कोई परिचय पूछ सकता है ? गेरीबाल्डी का कोई नाम पूछ सकता है ? चाणक्य के बाप का कोई नाम पूछ सकता है ? वह खिलखिलाकर हँसा। इस मूर्ख जमादार को कुछ अक़्ल है !

उस सिपाही ने शुक्लजी को एक चपत जमाकर याददाश्त ताज़ी की।

'अरे !' शुक्लजी ने कहा और चुप हो गये।

'नाम क्या है ?' जमादार चिल्लाया।

'क्या मुँह लेकर पूछता है ?' तिरस्कार से शुक्ल ने कहा, 'कल सवेरे सब मालूम हो जायगा।'

'क्या ?'

'मेरा नाम और ठिकाना।'

'अभी बता न ?'

'जानना चाहता है ?'

'हाँ।'

'तो मूर्ख !' एक महाप्रसंग—किसी ने कहा हुआ—कुछ याद आ जाने से—एक विजेता के स्वाभाविक गौरव से उसने कहा, 'लिख ले—शक्ति और साहस हो तो। मेरा नाम शुक्ल है। मेरा स्थान राष्ट्र-स्रष्टा के मंदिर में और मेरा पता अनंत काल के इतिहास में है।'

'......पागल है। कोठरी में बंद कर दो।' जमादार ने ऊबकर हुक्म दिया।

सिपाही ने उसे पकड़कर कोठरी में बंद कर दिया।

'कल-सवेरे पता चलेगा।' शुक्लजी ने अँधेरी कोठरी में से गंभीर वाणी में उद्घोष किया।

बाहर जमादार और सिपाही सलह करने बैठे। कल क्या पता चलेगा ? कोई बड़ा आदमी तो नही है ? कौन होगा ? पुलिसवाला भी ज़रा घबराया।

'जमादार साहब ! जाने भी दो।' सिपाही ने कहा।

'यह भी ठीक है।' कहकर जमादार चला गया।

पुलिसवाले ने शुक्लजी को छोड़ दिया।

'कहाँ जाना है ?'

'बंबई।'

'स्टेशन पर छोड आऊँ ?'

'अब अक्ल ठिकाने आई।' शुक्लजी ने कहा। उन्हें लगा कि इस समय देश के ऐसे मारकाट के प्रसंग पर बहुत अधिक माथापच्ची करने से तो यही अच्छा होगा कि फ़ौज लेकर बंबई चलें।

पुलिसवाले ने उसे स्टेशन पर छोड़ दिया और जब शुक्ल ने बंबई की फर्स्ट क्लास की टिकट ली तब तो उसके होश-हवाश उड़ गये। कांपते पैरो से वह गेट पर वापिस लौटा।

४

पूरे फ़र्स्ट क्लास कंपार्टमेंट मे शुक्ल अकेले बैठा। ट्रेन चलने पर वह कंपार्टमेंट के बीच में खड़ा हो गया। उसका दाहिना हाथ कमर पर था, बायाँ बाजू में लटकी हुई तलवार की मूठ पर। बायाँ पैर आगे कर, कार्य-वाहकों तथा सेनानायको के मध्य में खड़े होकर वह कल के पूरे कार्यक्रम के विषय में हुक्म दे रहा था।

आज पहली ही बार शुक्ल फ़र्स्ट क्लास में बैठा था। चारों ओर मचा हुआ कोलाहल, उसकी चतुरंग सेना, नही, सर्वांग सेना के कूच की आवाज थी। ऊपर एक हैट रखने का सलाखदार पिंजरे की कचकच की आवाज़ द्वारा उसे प्रत्येक केन्द्र का संदेश तार द्वारा मिल रहा था। जब किसी गाँव में जलते हुए दीपक खिडकी मे से दौड़ते हुए दीख जाते तो उसको उनके चंचल प्रकाश में विभिन्न टुकड़ियाँ सूर्य-किरणो द्वारा भेजे हुए संदेशे दिखाई देते।

आखिर सब कुछ समाप्त हुआ और शुक्लजी ने ज़रा आँखें मीची। ट्रेन रुकी। नडियाद आया और एक अंग्रेज डिब्बे में घुसा। ट्रेन चली और अंग्रेज कपड़े निकालकर सो गया।

गोरे को देखकर शुक्लजी की देशभक्ति सतेज हुई। ये देश के पैसे खाते-पीते, मजा करते ऐसे सुन्दर कपड़े पहनकर फिरते हैं। इनका क्या अधिकार है ये कपड़े इनके किस लिये ?

जल्दी-जल्दी चलती हुई ट्रेन के फ़र्स्ट क्लास में केवल नाममात्र की ही जलती हुई बिजली के प्रकाश मे अंग्रेज के कपडे खूँटी पर हिल रहे थे; शुक्ल की सतेज आँखें उन पर ठहर गईं।

कठोर न्यायवृत्ति उसके दिल में सुलग रही थी। ये कपड़े इस अंग्रेज ने खरीदे; इनके पैसे इसने अपनी तनख्वाह में से दिये; इसकी तनख्वाह सरकारी तिजोरी मे से आई; तिजोरी गरीब भारतवासियों के पैसे से भरी गई। इससे ये कपड़े भारतवासियो के······प्रत्येक भारतवासी के थे।

शुक्लजी खूँटी पर से अग्रेज की पतलून उतारकर पहनने लगे।

अग्रेज जाग उठा—छलांग मारकर उसने प्रकाश जरा और अधिक किया। गोरा बोला नहीं। अपने कपड़े मजे से कोई काला आदमी पहने! वह सो तो नही रहा है उसने क्षणभर में निश्चय कर लिया।

शुक्लजी मजे में हँस रहे थे। अंग्रेज ने जाकर उनके हाथ से पतलून छीन ली और एक तमाचा मारा, 'यू सूअर।'

शुक्लजी खिलखिलाकर हँसे और अंग्रेजी में बोले; 'किसके पैसे, किसके कपड़े? हमारा देश, हमारे पैसे और हमारे कपड़े······'

अंग्रेज गुस्से से देखता रहा और फिर उसकी नजर शुक्लजी की हंसी और उनकी आँखो की ओर गई।

ट्रेन बड़ोदा स्टेशन पर पहुँची। अंग्रेज ने तुरन्त स्टेशन मास्टर को बुलाया। स्टेशन मास्टर ने शुक्लजी को पहचाना।

'शुक्ल! तुम कहाँ से? यह साहब क्या कह रहा है?'

'इसे इन कपड़ो को पहनने का अधिकार नही—हमारे देश के मालिक हम है या यह?'

'नीचे उतरो, नीचे। अच्छा ठहरो! सामान नही है क्या?'

'क्यो उतरूँ?'

'कहाँ जाना है?'

'बंबई।'

'क्यो?'

'गायकवाड सरकार की कल बंबई में ताजपोशी है।' उसने धीरे से स्टेशन मास्टर के कान में कहा।

'अच्छा, उतरो शुक्ल ! मैं तुमको दूसरे अच्छे डिब्बे मे बिठाता हूँ।'

'Alright !' कहकर गुस्से में शुक्लजी ट्रेन से उतरे। स्टेशन मास्टर शुक्लजी से बातें करने लगा और ट्रेन चल दी।

५

स्क्वायर ब्लाक के उन्नीसवें रूम के छज्जे में सुदर्शन, धीरू शास्त्री और सनत् जोशी सो रहे थे।

लगभग तीन बजे के क़रीब धीरू शास्त्री पानी पीने उठा और छज्जे के कठरे के आगे जाकर पीने से बचा हुआ पानी फेंका...

उसे एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया।

कालेज के कंपाउंड में महोत्सव के निमित्त किय्सन लाइट की बत्तियो के लिए खम्भे गाड़े गये थे। देखा, एक लड़का पासवाले खम्भे को हिलाने का महाप्रयत्न कर रहा है और उसके ज़ोर से बत्ती हिल रही है।

यह विचित्र प्रयोग देखकर धीरू घबराया, 'यह क्या ?'

उसने ध्यान से देखा और प्रयोग करनेवाले को पहचान लिया।

'शुक्ल, शुक्ल ! यह क्या कर रहा है ?'

शुक्लजी बत्ती का खम्भा हिलाते ही रहे।

'शुक्ल ! गिरजा ! यह क्या कर रहा है ? बत्ती गिर पड़ेगी !'

'क्या है, क्या है ?' करते हुए सुदर्शन और जोशी उठ बैठे।

'अरे वह शुक्ल बत्ती का खम्भा उखाड़ रहा है।' धीरू ने कहा।

'शुक्ल ! शुक्ल !' जोशी ने जोर से आवाज़ दी।

'बोलो मत। धीरू ? यहाँ आओ। जोशी ! टुकडी तैयार करो।

केरशास्प को हेलिग्रोस्कोप कर रहा हूँ।' सत्ता के रोब से शुक्लजी ने कहा और खम्भा हिलाते ही रहे।

जोशी, धीरू और सुदर्शन दौड़कर नीचे आये। जोशी ने जाकर शुक्ल का हाथ पकड़ा।

'अरे, यह क्या कर रहा है?'

'जोशी!' शुक्ल ने रोब से ऊपर देखते हुए कहा:

'क्या कर रहा हूँ? खड़े रहो, मेरा संदेश अधूरा है। मालूम नहीं, भारत स्वतन्त्र हो गया?'

'बहुत अच्छा, ऊपर चल!' धीरू ने समझाते हुए कहा।

'लेकिन केरशास्प क्या करेगा? कल सवेरे गायकवाड़ को बंबई में मुझे मुकुट पहनाना है। सुदर्शन यहाँ कैसे? मेरा······'

शुक्ल का स्वरूप, उसके शब्द और बातें—रात के तीन बजे का समय—आधी छोड़ी हुई नींद—इन सब बातों से जोशी की सहिष्णुता का अंत आ गया। उसका एक शक्तिशाली पंजा शुक्ल की गर्दन पर पड़ा; उसके स्नायुओं के जोर से शुक्लजी चींटी की तरह तड़पने लगे।

पागल! गधा! क्या बक रहा है? चल चुपचाप—नहीं तो एक दो हाथ झाड़ दूँगा। रात के तीन बजे यह क्या कर रहा है?'

'केरशास्प को हेलिग्रोस्कोप से संदेशा दे रहा हूँ।' विजेता की सत्ता और गौरव की यथाशक्ति रक्षा करते हुए बड़ी गंभीरता से शुक्ल ने कहा।

गुस्से में आकर जोशी ने भी एक घूँसा जमाया। जोशी के घूँसे में नेपोलियन, सीज़र या गेरीबाल्डी—तीनों की आँखों में पानी ला देने का गुण था।

'अरे बाप रे!' शुक्ल चीखा।

'आगे चल!' एक धक्का मारकर जोशी ने कहा। शुक्ल ऊपर

देखकर खिलखिलाकर हँसा। 'जोशी पागल, सद्दु अंधा''''''धीरू लँगड़ा।' उसने ललकारा।

'तू ऊपर चल!' धीरू ने कहा।

'जोशी पागल, सद्दु अंधा, धीरू लँगड़ा।'

किसी तरह उसे ऊपर लाये। जोशी के बल ने तथा धीरू के समझाने से किसी प्रकार शुक्ल सोया धीरे-धीरे उसके मित्र भी सो गये।

दो घंटे बाद सुदर्शन की नीद खुली। उसने शुक्ल की खाट की ओर देखा। वहाँ शुक्ल नही था।

'जोशी! शास्त्री! वह पागल भाग गया!' जोशी और शास्त्री जल्दी से उठे।

'शुक्ल! शुक्ल! गिरजा!' सबने आवाज दी, पर जवाब नहीं मिला। चारों तरफ छज्जे में उसे देखा पर उसका कही पता न था।

'बिल्कुल पागल हो गया!' धीरू ने कहा।

'अरे राम!' सुदर्शन के मुँह से निकला। उसके हृदय में इतनी भी शक्ति नही रही थी कि रो भी सकता।

'चलो डंडा और लालटेन लेकर उसे खोजा जाय।' जोशी ने प्रस्ताव किया।

तीनों ने डंडे लिये और हाथ में लालटेन और कालेज के विशाल कंपाउंड का कोना-कोना खोजा; पर शुक्ल का पता नही लगा।

दरवाजे के आगे पहरा देनेवाले पुलिसमैन से पूछने पर पता चला कि—

'एक लड़का घंटाभर हुआ बत्ती हिला रहा था मैंने उसे निकाल बाहर किया। बहुत से बहुत गया होगा तो कमाटी बाग तक।'

उषाकाल होने लगा था। तीनों मित्र कमाटी बाग मे शुक्ल को खोजने गये। अगर हाथी जैसा हो तो भी उस बाग मे दिखाई न

दे फिर एक आदमी तो कहाँ से मिले ! पर बत्ती के उजाले में उसकी खोज करने का निश्चय कर आगे बढ़े।

म्यूज़ियम के आगे की एक बत्ती हिल रही थी। वे उसी ओर लपके।

एक उत्साहयुक्त—सत्तात्मक आवाज़ आ रही थी। 'केरशास्प भारत स्वतन्त्र हो गया ! मैं बम्बई आ रहा हूँ, महान् लश्कर लेकर। कल मुझे गायकवाड़ का······'

शुक्ल बत्ती हिलाकर हेलिओस्कोप से संदेश भेज रहा था। जोशी ने कूदकर उसकी गर्दन पकड़ी।

शुक्ल ने भागने का प्रयत्न किया।

'मूर्ख ! यह क्या करता है ? 'माँ' की स्वतन्त्रता का क्या होगा ?'

जोशी की देशभक्ति जनवरी की ठंड में जम गई थी। 'चल हरामखोर ! भाग आया !'

शुक्ल ने चारो ओर देखा और बड़बड़ाया, 'जोशी पागल, सद्दु अंधा, घीरू लँगड़ा।'

'जोशी !' घीरू ने कहा, 'तू इसे ले जा, मै इसके भाई को बुला लाता हूँ। यह तो बिल्कुल ही पागल हो गया है।'

'जोशी पागल, सद्दु अंधा, घीरू लँगड़ा।' शुक्ल नें वही राग अलापा।

६

सात बजे शुक्ल का भाई जैसे-तैसे उसे गाड़ी में डालकर ले गया। पागलों के अस्पताल के सिवाय उसका और दूसरा इलाज न था।

सब हँस रहे थे, परन्तु सुदर्शन ने जब से शुक्ल को देखा, तभी से उसे रोना आ रहा था। शुक्ल के पागलपन की हास्यजनक असबद्धता में देश-भक्ति की करुण भव्यता उसे साकार दिखाई दे रही थी।

शुक्ल का प्रश्न था कि 'माँ' के स्वातन्त्र्य का क्या होगा ?' उसके कान मे मृत्यु के करुणाजनक क्रंदन की भाँति सुनाई दे रहा था।

उसने जैसे-तैसे चाय पी और अपनी योजना का बंडल लेकर वह खड़ा हो गया, 'मैं कालेज की अटारी पर पढ़ने जा रहा हूँ।' उसने मित्रो से कहा। वह नीचे सिर झुकाये हुए कालेज की ओर चल दिया।

नीचे उसे बोर्डिंग का घाटी मिला।

बाबूजी ! दियासलाई है ? मुझे दो।' कहकर उसने दियासलाई ली। बूढे बाबा ने सदुभाई की धोतियाँ धो-धोकर पाँच वर्ष तक उसकी सेवा की थी। बूढ़ा अच्छा था। 'क्या बीड़ी पीना सीख गया ?' उसने सोचा।

सुदर्शन स्टेशन के सामनेवाले कालेज के भाग की सीढ़ी से उसके ऊपर की बुर्ज की छत पर गया। यही बैठकर वह पढ़ा करता था, यही बैठकर उसने अपनी स्वप्न-सृष्टि का निर्माण किया था, यही उसने 'माँ' के अनेक बार दर्शन किए थें।

और यही आकर उसने अपनी 'योजना' खोली। इसमें उसके अंतिम तीन वर्षों के स्वप्न और आदर्श, विचार और योजनाएँ एकत्रित थीं। उसकी पोषित मानवता का यह एक सुन्दर बालक था। उसने धीरे से, ममता से, कही ऐसा न हो कि नीद से रोकर उठ बैठे, इस डर से, कोमल स्पर्श से, जैसे एक बार मुँह देखने की अंतिम लालसा शांत न हो इस प्रकार उसने पन्ने उलटे—एक दृष्टि डाली।

'भारतीय प्रजा अर्थात् भिन्न-भिन्न आदर्शों से आकर्षित जन-समूह। जब तक एक सशक्त समूह, एक प्रबल आदर्श इन सब पर न थोपे जायँ तब तक राष्ट्रीय एकता अशक्य है।

'एक प्रबल आदर्श ही राष्ट्रधर्म है।

'राष्ट्रधर्म अर्थात् आर्यसमाज का धार्मिक उत्साह नहीं। पुरातन

विचार के लोगों के पुरातन युग का फिर से सृजन करने का अलभ्य आदर्श नही।

'राष्ट्रधर्म अर्थात् ईश्वर और संप्रदाय, आत्मा और पुनर्जन्म, समाज और नीति की पर्वाह किए बिना, निश्चयात्मक, अर्वाचीनता से ओत-प्रोत, धार्मिक उत्साह से युक्त ऐसा महान् धर्म।

'उस धर्म का देव एक ही : 'माँ'।'

'उसमें मुक्ति दो तरह की : 'माँ' का उद्धार या व्यक्ति का मरण।'

'उसके साधन : जो उपयोगी लगें वह।'

* * *

उसने दो पृष्ठ पलटे।

'यह राष्ट्रधर्म एक सशक्त समूह द्वारा अपनाया जाना चाहिये।

'यह समूह सशक्त होना चाहिये। इसमें सम्पूर्ण एकनिष्ठा, शक्ति और व्यक्तित्व चाहिये।

'उसमें दो-चार—या फिर एक मनुष्य की ही सत्ता होनी चाहिये।

'इस समूह में लोक-शासन का स्पर्श न होना चाहिये।

'हजार मनुष्यों का एक पुरुष चाहिये।

* * *

'भारत अशक्त है। उसमें व्यवस्थावृत्ति नहीं।

'व्यवस्थावृत्ति अत्यन्त ऊँची शिक्षा से या स्वातन्त्र्य के उत्साह से नहीं आती। उससे पहले तो व्यवस्थावृत्ति का नाश होता है।

'वह आती है राष्ट्रीय प्रणालिका से, या एक सशक्त समूह की धाक से।

'राष्ट्रीय प्रणालिका हजार वर्ष के स्वातन्त्र्य सेवन से छोटे से देश मे आ जाती है—देखो इंग्लैंड।

'विशाल देश में, विभिन्नादर्शी समूहो में वह एक सशक्त समूह

को धाक से आती है। ब्राह्मणों ने भूतकाल में पाप-पुण्य के भय से कुछ-कुछ व्यवस्थावृत्ति का विकास किया था।'

* * *

सुदर्शन मुग्ध हो पढ़ता रहा। 'कैसे रत्न थे! ये उसके थे? नहीं! 'माँ' की प्रेरणा से मेरी क़लम ने लिखे थे……' उसकी आँखों मे आँसू आ गये। 'इन रत्नों का विनाश!'

कैसी करुण कथा!……कैसा साहसी—आशावान्—आकांक्षी युवक 'माँ' के मन्दिर की देहली पर आया!

केरशास्प—गर्विष्ठ, धनाढ्य, उत्साही, बुद्धिमान—मंडल के लिए पैसा इकट्ठा करता हुआ, भिखारी और मानहीन हुआ!

नारायणभाई—योग्य गणित-शास्त्री, एम० ए० की परीक्षा और काम-काज छोड़कर आवारा हो गया!

गिरजा शुक्ल—परीक्षा और अपने भविष्य को भुलाकर प्रतिभा की बलि दे रहा था!

और स्वयं—वर्ष गँवाये, पिता का प्रेम गँवाया, आकर्षक वधू और उज्ज्वल भविष्य छोड़कर इस समय इस दशा का अनुभव कर रहा था।

क्या करे?

'माँ! माँ! मुझे जवाब दे। मेरी अंबा! जननी! भारती! एक बार दर्शन दे। मुझे बता मैं क्या करूँ? तू मुझे मिलती और मैं प्रेरित होता! तू आज्ञा करती और मैं पालन करता! तू हँसती और मैं प्रफुल्ल होता! माँ, माँ! तेरा 'प्राण' लौटा लाने का वचन मैं भूला नहीं। मैं निकम्मा निकला, अशक्त निकला पर मैंने यथा-शक्ति उपाय किया। माँ!' उसकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। 'माँ! एक बार तो दर्शन दे? मुझे एक बार तो स्वप्न दे। मुझे सूझता नहीं, मैं अंधकार मे हूँ। तेरे बिना अंध हूँ। मुझे

बिल्कुल छोड़ दिया ! अंबा ! जननी ! एक पल के लिए मुझे दर्शन देकर बचा । माँ ! माँ ! माँ !' वह सिसक-सिसककर रोने लगा। चारो ओर उसकी अश्रु सिक्त आँखें 'माँ' को खोज रही थी ।

सूर्य का ताप बढने लगा । एक ओर गुंबज था । सामने हदबंदी के उस पार स्टेशन के पास के पेड़ दिखाई दे रहे थे । थोड़ी देर वह चुपचाप रोता रहा ।

'माँ ! मै बिल्कुल नालायक हूँ । हाँ, हूँ ही । सच बात है । केरशास्प ने द्रव्य की भेंट चढायी, शुक्ल ने प्रतिभा का उपहार दिया, मैंने कुछ किया ही नही । माँ, तुझे सर्वस्व चाहिये ? तो ले अंबा भवानी !'

क्षण भर उसने अपनी योजना को, माता की-सी प्राणवेधक ममता से निहारा । उसके हृदय के बन्ध टूट रहे थे । दाँत भींचकर उसने दियासलायी जलायी और योजना के पन्ने-पन्ने में आग लगा दी ।

जलते हुए पन्ने सलवटेदार राख बनकर बिखरने लगे । जलते-जलते जब उसकी उँगली के पास आग आ गई तो उसने राख फेंक दी ।

'हो गया, समाप्त हो गया !' उसने क्रूरता से हँसकर कहा ।

उसकी आत्मा शरीर से ऊब गई थी । उसे अब 'माँ' की गोद में जाकर विश्राम लेना था । उसने अंतिम बार 'माँ' के दर्शनों का प्रयत्न चारो ओर देखते हुए किया । निश्चेतन धूप चारो ओर प्रकाश फैला रही थी ।

उसने कँगूरे पर हाथ रक्खा ।

'सदुभाई !' जीने की कोठरी में से आवाज आई । वह मुड़ा, 'कौन है ?'

'सदुभाई कहाँ है ? छत पर ?' प्रमोदराय की आवाज आई और

दूसरे ही क्षण प्रमोदराय ने हाँफते-हाँफते आकर सुदर्शन को गोद में भर लिया।

'मेरे बच्चे ! क्या कर रहा है ?' सुदर्शन बोल न सका।

'लड़के ! गुप्त मंडल कैसे, सभाएँ कैसी, षड्यंत्र कैसे ? मेरे मुँह पर कालिख पोतने के लिए तू क्या ले बैठा है ?' रावबहादुर गुस्से होने का निश्चय कर आये थे पर इस समय वह भी आक्रंद कर रहे थे, 'बेटा ! बेटा !'

'बापू ! मैं कुछ नही करता।' रुग्ण जैसी आवाज़ में सुदर्शन ने कहा। रावबहादुर ने ध्यान से देखा तो लड़का अस्वस्थ, निर्बल और निस्तेज था।

'लड़के ! तुझे कुछ मालूम है ?'

'क्या ?'

'तेरा वारंट है।'

'वारंट !'

'हाँ, तू षड्यन्त्रकारियो का शिरोमणि है ! और मैं सरकार का नमक खाता हूँ।'

'किसने कहा कि वारंट है ?' सुदर्शन ने पूछा।

'जगमोहनलाल ने कहा कि उन्होंने रुकवा दिया है।'

'क्यों ?'

'मूर्ख ! अक़्लमदी जाने दे। चल मेरे साथ।'

'जी।' निश्चेतनता से सुदर्शन ने कहा।

'तेरे कागज़ पत्तर हो या जो कुछ सबूत हो तो जला दे।'

'जो था वह सब जला दिया।' सुदर्शन ने निराशा से योजना की राख की ओर उँगली से बताते हुए कहा।

'अच्छा किया, अब हमारा कहा मानना है, समझा ?'

'जी।' जैसे उसे अपनी कुछ भी चिन्ता न हो, इस प्रकार उसने कहा।

'मेरे साथ इसी समय बंबई चलना है।'

'जी।'

'परसो विलायत जाना होगा।'

'अच्छी बात है।' सुदर्शन में विस्मित होने की भी शक्ति नही थी।

'जगमोहनलाल ने पैसेज बुक करा दिया है और बैरिस्टर होकर आना है।'

'जी।'

'—और सुलोचना के साथ विवाह करना है।'

सुदर्शन की आँखो में तेज चमका? उसे घनी याद आयी। घनी के साथ एक दूसरे की प्रतीक्षा करने की भीष्म-प्रतिज्ञा उसने की थी। उसने गर्दन हिला दी।

'क्यों नही?' प्रमोदराय ने अकुलाकर पूछा।

सुदर्शन की आँखो में पानी आ गया।

'मैने और सुलोचना ने प्रतिज्ञा की है कि एक दूसरे से विवाह नही करेंगे।'

'देख लिया बड़े प्रतिज्ञा लेनेवालो का मुँह!' रावबहादुर ने कहा।

'सच बात है।' तिरस्कार से सुदर्शन ने कहा।

'सच क्या है?' बाप ने पूछा।

प्रतिज्ञा लेनेवालों का मुँह—प्रतिज्ञा लीं और कुछ तोड़ी।' कटुता से बेटा हँसा।

'तब एक और सही!'

'बापू !' सुदर्शन ने बाप की ओर देखकर कहा, 'मेरे साथ बहुत बीती है। इतनी बाक़ी है ?

'बहुत बीतनेवाले का मुँह कह रहा है न ! तू चल अब ! भोजन कर ट्रेन पकड़नी है।' कहकर प्रमोदराय ज़ीना उतरने लगे।

सुदर्शन चुपचाप पीछे-पीछे चला।

---

# उपसंहार

१

१६वी मार्च सन् १६११ के दिन स्वर्गीय नामदार जगमोहनलाल के घर में आनंद छाया हुआ हो ऐसा दिखाई दे रहा था।

गंगास्वरूप जमना काकी उर्फ़ गोरी बहिन पल्थी मारे बैठी हुई थीं। पास में हर्ष में डूबी हुई जमना भाभी मुस्करा रही थी। नवापुरा के दीवान साहब हर्ष से इधर-उधर फिर रहे थे। ऊँची तथा पतली-दुबली सुलोचना चाय बना रही थी। उसकी भवों और पलकों में मोहकता थी पर उसके मुख पर गांभीर्य छाया हुआ था। कभी-कभी वह जरा हँस देती थी।

उसके पास कुर्सी पर एक छोटी सी धोती, घुटा हुआ सिर, कुरूप मुख और मोटे चश्मे से विभूषित एक छोटी सी बेडौल मूर्ति विराजमान थी। प्रोफेसर कापड़िया मुस्कराते, हाथ घिसते हुए सूँघनी सूँघ रहे थे और चाय में शकर डालती हुई सुलोचना के हाथ पर नजर जमाये बैठे थे।

एक उदास, दुबला-पतला युवक मुंह कठोरता से बन्द किये हुए, पैर पर पैर रक्खे सामने कुर्सी पर बैठा था। उसकी वेश-भूषा पर से, वह विलायत से अभी-अभी आया हो, ऐसा मालूम होता था। उसके मुख से प्रतीत हो रहा था कि चारो ओर व्याप्त आनन्द ने उसे स्पर्श किया नही है।

वह सुदर्शन था। उसनें सबेरे ही स्टीमर पर से उतरकर अपनी जन्मभूमि पर पैर रक्खा था।

'मैंने नही कहा था,' रावबहादुर ने जमना भाभी से हँसते-हँसते कहा, 'कि तेरा बेटा बाप से भी सवाया होगा ?'

'तुम्हारा कहा कभी झूठ होता है !' जमना भाभी ने कहा। वृद्ध पति-पत्नी बेटे की विजय में शैशव के उत्साह का अनुभव करने लगे।

सब ने चाय पी। हँसे, बोले, बातें की और फिर अपने-अपने काम में लग गये।

सुदर्शन भी उठा। बिना कपड़े बदले ही बाहर चल दिया।

स्टीमर पर से उतरने के बाद वह उतने ही शब्द बोला था, जितने विवशतावश उसे बोलने पड़े। हँसना तो वह भूल ही गया था।

तीन वर्ष मे उसने बाप के अतिरिक्त किसी के साथ पत्र-व्यवहार नही किया था। एक बार उसने धनी को पत्र लिखा था वह 'डेड लेटर' ऑफिस से वापिस आ गया था।

२

सवेरे उसने एक ही काम किया। अपना पापी हृदय कोई स्वयं ही द्वेष से खुरच रहा हो इस प्रकार उसने अपने मित्रों का विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया। टेलिफोन की किताब में से केरशास्प का उसे तुरन्त पता मिला। वह एक छोटी-सी कोठरी में टेलिफ़ोन लगाकर सट्टा कर रहा था। पेट भर कमा ले यही उसका परम ध्येय था। उसने बहुत से लोगो का हाल बताया।

पाठक ने मद्रास छोड़कर ईडर में अध्यापक का कार्य स्वीकार कर लिया था।

मगन पंड्या अमेरिका में अभी अध्ययन कर रहा था। भारत से नई-नई चीजें मँगाकर वहाँ के प्रोफ़ेसर को भेंट देने की प्रवृत्ति के सिवाय कोई दूसरी प्रवृत्ति उसकी न थी।

धीरू शास्त्री आर्यसमाज से असंतुष्ट होकर गुजरात में किसी स्थान पर पाठशाला की स्थापना करने का प्रयास कर रहा था; अभी भी सरकार से स्वतन्त्र शिक्षा देने की आशा रखे हुए था।

सनत्कुमार जोशी शारीरिक विकास का तिरस्कार कर आबु पर

किसी महात्मा की शरण में योग-साधन कर कालभैरव की सिद्धि कर रहा था।

नारायणभाई पटेल अपने बाप-दादा की खेती करने में उलझा हुआ था।

मोहन पारेख भभूत रमाये गाँव-गाँव फिरता और जहाँ कुएँ का अभाव हो वहाँ लोगो को कुआँ बनवाने की प्रेरणा करता था।

गिरजाशंकर शुक्ल साल भर बड़ौदा मे पागलो के अस्पताल में रहकर एक दिन भाग गया। अब उसका पता न था।

शिवलाल सराफ़ बंबई में मौज करता था।

अंबालाल एक मारवाडी के यहाँ मैनेजर बन गया। उसकी स्त्री—मिस वकील घर का काम करती और बच्चों का पालन-पोषण करती थी।

'ट्री—ट्री—ट्री—' केरशास्प का टेलिफोन अधीर हो गया।

३

सुदर्शन उठा। ठंडे दिल से उसने 'साहिबजी' कहकर आज्ञा ली। उसके मुख की रेखाएँ और भी कठोर हो गईं।

सुदर्शन शिवलाल सराफ के यहाँ गया। शिवलाल रजोगुणी था; बड़ा उस्ताद और खटपटी। उसमें लोगो को समझाने की शक्ति अद्भुत थी। बहुधा उसकी व्यवस्था-शक्ति पर मुग्ध होकर उसे बाल चाणक्य कहा करते थे।

परिचित सीढ़ियो से चढ़कर वह ऊपर गया।

'शिवलाल है क्या ?'

एक आदमी गा रहा था :

'वैष्णव जन तो तेने कहिये
जे पीर पराई जाणे रे।'

'अरे शिवलाल है क्या ?'

वह मनुष्य मुड़ा। उसके माथे पर वैष्णवी तिलक शोभा दे रहा था।

'ओह, स्वयं शिवलाल ही है! कैसे हो?' सुदर्शन ने कठोर आवाज़ से कहा।

'कौन सदुभाई! तुम आ गये?' सराफ़ ने नमस्कार किया। दोनों बैठे। थोड़ी-सी बातचीत की फिर अंबालाल का पता पूछा। सुदर्शन की नजर सोफ़े पर रखी एक पोथी और रुई पर गई। उसने पूछा—

'यह क्या है?'

'यह विष्णु सहस्रनाम है। मैं उसका रोज ग्यारह बार जप करता हूँ।'

'और यह क्या है?'

'अपने ठाकुरजी के लिए मैं अपने ही हाथों बनाई हुई बत्ती से आरती करता हूँ। जो हाथ में वह साथ में।'

'अच्छा, मैं जा रहा हूँ।' कहकर सुदर्शन उठा। उसका गला रुँधने लगा था।

'हाँ भाई, आना!' कहकर शिवलाल उसे सीढ़ी तक पहुँचाने आया।

सुदर्शन उतर रहा था कि उसके कान में आवाज़ आई:

'वैष्णव जन तो तेने—'

४

वह सुलोचना के घर गया और भोजन किया।

वह और सदुभाई अकेले मिलें ऐसा षड्यन्त्र घर के बड़े-बूढ़ों ने छः बार रचा था—पर या तो सुदर्शन या सुलोचना के उठ जाने से वह सफल नहीं हुआ था। आखिर सुदर्शन बहुत ऊब गया। मृत्यु आने से पहले ही उसके सामने जाना बुरा है?

भोजन करने के बाद सब बड़े-बूढ़े तो इधर-उधर चले गये; वह बैठा रहा। सुलोचना उठकर जाने लगी।

'सुलोचना !' उसने शांति से कहा।

'क्यों ?' सुलोचना मुड़ी।

'जरा बैठो न !'

'क्यों ?'

'जब तक हम अकेले नहीं बैठ लेंगे तब तक ये सब भाग-दौड़ करते ही रहेंगे।'

सलोचना भी शांति से नीचे दृष्टि किये खड़ी रही फिर तुरन्त ही ऊपर देखकर बोली, 'बोलो, क्या कहना है ?'

'मेरे साथ विवाह करना है ?' वैसे ही तिरस्कार से सुदर्शन ने कहा।

'तुम क्या सोचते हो ?' शांति से सुलोचना ने पूछा।

'देखो,' सुदर्शन ने अत्यन्त कटुता से आरंभ किया और उँगली के पोरुओं पर गिनने लगा, 'कन्या विवाह-योग्य है; सुन्दर है; पैसे-वाली है। वर भी विवाह योग्य है, कुरूप नहीं है; पढ़ा-लिखा है—भगवान करे हाईकोर्ट का जज भी हो सकता है।'

'फिर ?'

'दोनो एक जाति के है।'

'फिर ?'

'माता-पिता ने बचपन से ही दोनों की जोड़ी मिला दी थी।'

'फिर ?' जरा हँसकर सुलोचना ने पूछा।

'आज माता-पिता हम लोगो के विवाह के लिए पागल हो रहे है।'

'फिर ?'

'फिर अब तुम कहो वह। समाज ने बहुत आकर्षक लग्न ठहराया है। पशु-शास्त्र के अनुसार अब तुम्हारे पसंद करने का अधिकार रह गया है।'

'सदुभाई !' जरा गुस्से से सुलोचना ने कहा।

'नाराज़ मत हो। मैं तुम्हारा अपमान नहीं करता; पर एक समय था जब मैं स्वप्नों में ही जीवित रहता था। आज सपने देख नहीं सकता। मुझे जो ठीक बात लगती है, वह तुम्हारे आगे रखे देता हूँ। ...ज को खुश करने के लिए विवाह करना है? यह प्रश्न माता-पिता के लिए था, उसका तो निराकरण हो गया। मैं कहता हूँ कि पशु-शास्त्र के अनुसार तुम्हारा ही निर्णय करना शेष रह गया है। Sex Selection ही अंतिम समस्या है।' उसने कटुता से कहा।

'इसके सिवाय तुम्हारी दूसरी समस्या नहीं?' सुलोचना ने तिरस्कार से कहा।

'यदि स्वप्न आते होते तो अवश्य होती। आज स्वप्न भी नहीं है और न समस्या ही है।'

'तब मैं भी कहूँ......'

'कह डालो।'

'एक समय था जब मैं पुरुष को चाहती थी। वह कृतघ्न पशु पशु निकला, आज तुम भी पशु हो—तुम स्वयं स्वीकार कर रहे हो। दो पशुओं के सिवाय मुझे किसी दूसरे को पसंद करने का समय नहीं मिला।'

'तब इन्कार कर रही हो?'

'मैं 'हाँ' कह दूं, तो तुम क्या करो?' सुलोचना ने पूछा।

'मैं हाँ कहने से पहले विचार करूँगा।' धीरे से सुदर्शन ने कहा।

'तब अभी कर लो न! मैं उससे पहले विचार करने का कष्ट क्यों उठाऊँ?' सुलोचना ने उपेक्षा से कहा।

'विचार करने के लिए साधन नहीं।' कठोरता ज़रा कम हुई।

'साधन प्राप्त करो।'

'कब प्राप्त हों यह कैसे कहा जा सकता है?'

'तो तब तक हमारा कुछ बनता-बिगड़ता थोड़े ही है?'

'सुलोचना ! तुम भी बहुत कठोर हो।'

'तुम भी तो वैसे ही हो, लेकिन हममें स्वप्नो को अपनाने की तथा उनकी रक्षा करने की शक्ति नही।' उसने खड़े होकर द्वार की ओर जाते हुए कहा।

'अपनाने की तो है ही नही; रक्षा करने की तो कौन जाने—' सुदर्शन बड़बड़ाया।

५

सुदर्शन अंबालाल के घर—परेल—गया। उसके मुँह पर कठोरता छाई हुई थी।

थोड़ी देर में उसको एक बड़े सेठ के बंगले के कंपाउंड में एक छोटी सी बंगलिया के दरवाजे पर अंबालाल का साइनबोर्ड मिला। उसने दरवाजा खटखटाया।

एक घाटी ने दरवाजा खोला।

'सेठ हैं ?'

'बाहर गये हैं।'

'उनकी पत्नी है ?'

'बाहर गई है।'

कुछ देर तक सुदर्शन खड़ा रहा। वापिस लौट जाने का विचार किया पर पैर उठे नहीं। उसने गला खँखारकर धीरे से पूछा, 'धनी बहिन है ?'

'है।' घाटी ने कहा।

'ज़रा बुलाओ तो। कहना कि एक सेठ मिलने आया है।' सुदर्शन दरवाजे के अंदर घुसा। उसकी आवाज मे जो स्वाभाविक कठोरता थी वह जाती रही। और उसकी जगह प्रसन्नता समा गई। वह अंदर आकर दीवानखाने में खड़ा हो गया। ध्यान से देखने की उसमें शक्ति नही रही थी।

घाटी आकर टेबल पर डिटमार का लैप रख गया। क्षणभर

के लिए सुदर्शन को कांदावाड़ी की कोठरी याद आई। वहाँ के दीपक के प्रकाश जैसा ही यह भी मोहक हो ऐसा कुछ-कुछ दिखाई दिया। इस प्रकाश में एक विचित्र उल्लास का प्रोत्साहन था। तीन वर्ष की अशक्ति नष्ट हो गई। स्वप्नद्रष्टा की दृष्टि में एक लड़का और एक लड़की भीष्म-प्रतिज्ञा लेते हुए दिखाई दिये! सुदर्शन के रक्त में अपरिचित प्रफुल्लता······

'कौन हो भाई! किससे काम है?' एक असंस्कारी आवाज़ ने पूछा।

सुदर्शन ने ऊपर देखा।

एक लड़की—एक स्त्री दरवाज़े में खड़ी थी।

उसके बाल बिखरे हुए थे। निर्बलता के काले दाग़ उसकी विशाल आंखों के आस-पास फैले हुए थे। उसका मुँह मुरझाया हुआ तथा निस्तेज था। वह किसी खाई हुई चीज़ को अभी तक चबा रही थी और अच्छी खासी गन्ध उसके मुँह से आ रही थी। उसके आँचल के नीचे एक बच्चा था और वह गर्भवती भी दिखाई दी।

वह सुदर्शन को पहचानती हो ऐसा न लगता था।

सदर्शन ने देखा—वह उठा, 'देसाई से कह देना कि मैं कल आऊँगा।' उसने कहा।

दो लंबे क़दम रखता हुआ वह दरवाजे से बाहर निकल गया।

* * *

एक असभ्य, क्रूर विडंबनापूर्ण हास्य ने वातावरणको अमानुषी कर दिया!

---